CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

3620

पण्डित प्रवर श्री विश्वेश्वर पाण्डेय विरचिता

मन्दारमञ्जरी

[विश्वर्णन से देवीगुणवर्णन पर्यन्त]

—कृष्णकुमार अवस्थी

साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पण्डितप्रवर-श्रीविश्वेश्वरपाण्डेय-विरचिता

मन्दारमञ्जरी

(आदितः कुमारशिक्षावर्णनपर्यन्ताः)

अनुवादक :

श्री कृष्णकुमार अवस्थी
संस्कृत विभागाध्यक्ष
केन सोसायटीज नेहरू
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हरदोई
(भूमिका तथा पृष्ठ १ से ६६ तक)

'उप्रेतीत्युपाख्यः'
डॉ० जयदत्त शास्त्री
व्याकरण-दर्शनाचार्यः,
एम. ए. (लब्धस्वर्णपदकः), डी. फिल्.।
प्राध्यापकः, संस्कृत विभागे
कुमायूँ विश्वविद्यालय परिसरः,
अलमोड़ा (उ० प्र०)
(पृष्ठ २५ से ३४ तक तथा
पृष्ठ ६७ से १८६ तक)

प्रकाशक :

साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार
मेरठ-२५०००२

मूल्य — ९-००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक :

रतिराम शास्त्री

अध्यक्ष,

साहित्य भण्डार,

सुभाष बाजार, मेरठ।

दूरभाष : ७७९५४

© प्रकाशकाधीन

मूल्य : आठ रुपये मात्र (८·००)

मुद्रक :

राजकिशोर शर्मा

सर्वोदय प्रैस,

जत्तीवाड़ा, मेरठ।

दूरभाष : ७४३५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

आचार्य विश्वेशर पण्डित का परिचय

संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ विचक्षण तथा माँ सरस्वती के चरणों की सेवा में अपने जीवन को समर्पित करने वाले मनीषी वैदिक युग से निरीह एवं निस्पृह रहे। वे अपने नाम स्थान आदि की कोई चिन्ता न करते हुए "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्-भवेत्" की कामना किया करते थे साथ ही स्व कामना से निर्लिप्त रहते हुये समाज तथा राष्ट्र की समुन्नति के लिये अपने जीवन की आहुति देने में निरन्तर निरत रहा करते थे। उनकी सतत यही उद्घोषणा रहती थी कि "न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःख तप्तानां केवलमार्ति-नाशनम्"।

इसी भद्रं पश्येम की भावनात्मक सरणि का आश्रयण करने के कारण प्राचीन तथा मध्य-युगीन यहाँ तक कि आधुनिक ऋषियों, विचारों तथा लेखकों ने अपना परिचय कहीं भी नहीं दिया। उनको केवल यही अभिलाषा थी कि यदि मेरे द्वारा दिये गये ज्ञान से विश्व को कुछ भी लाभ मिल सका तो मैं अपना जीवन सार्थक समझूँगा। इस प्रकार अपनी सूक्ष्म दृष्टि एवं ज्ञान-राशि के अनुसार सभी अपनी योग्यता एवम् अनुभवों से समाज तथा राष्ट्र का कल्याण किया करते थे। उनकी इसी सर्वतोन्मुखी भावना का प्रतिफलन वेदों, पुराणों दर्शनशास्त्रों तथा काव्य एवं नाटकों में देखने को मिलता है। यह सभी ग्रन्थ उपदेशात्मक तथा मनोरञ्जनात्मक होने के साथ ही साथ ज्ञान एवं सन्मार्ग का भी दिग्दर्शन कराते हैं।

प्राचीन काल से अजस्र प्रवाहित रहने वाली इसी परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय की भी गणना हो जाती है। आचार्य जी ने भी अपने ग्रन्थों में अपना कोई विशेष परिचय नहीं दिया हैं। मन्दार-मञ्जरी की प्रस्तावना में लिखित "जयति यथाजोतानां वाग्जातसुजातपारिजातश्रीः। श्रीलक्ष्मीधरविबुधावंतस-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरणाब्जरेणुकणः" पद्य के द्वारा केवल इतना प्रतीत होता है कि इनके श्री पितृचरण का नाम श्री लक्ष्मीधर पाण्डेय था। इन्हीं से सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन भी किया था इस प्रकार यह विद्यागुरु भी थे।

पर्वतीय परम्परा के अनुसार यह कहा जाता है कि श्री लक्ष्मीधर पाण्डेय अल्मोड़ा के अन्तर्गत पाटिया नामक गाँव के रहने वाले भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। वृद्धावस्था तक इन्हें सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई थी अतः सन्तान प्राप्ति की कामना से वाराणसी जाकर भगवान् आशुतोष की आराधना करने लगे। इनकी अत्यधिक श्रद्धा भक्ति से सन्तुष्ट होकर भगवान शिव ने इनको स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि तुम्हारे भाग्य में सन्तान लाभ का योग नहीं है परन्तु तुम्हारी तपस्या एवं साधना से वृद्ध होने के कारण मैं स्वयं तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न होऊँगा। इस किंवदन्ती के आधार पर वृद्धावस्था में साक्षात् शिव ही पुत्र रूप में उत्पन्न हुए इसी कारण इनका नाम विश्वेश्वर रखा गया।

अवतारी पुरुष होने के कारण यह बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली एवं कुशाग्र बुद्धि थे। अतः अल्पकाल में समस्त शास्त्रों का विधिवत् ज्ञान प्राप्त कर लिया। मेधावी व्यक्तियों के लिये यह कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं। पिता सरस्वती के अनन्य उपासक और स्वयं शिव के साक्षात् रूप यह संयोग बड़े ही सौभाग्य से मिला था। अतः सरस्वती के अवदात् कण्ठ से जो भी वाणी प्रस्फुटित हुई उसके अङ्कुर शिव के अन्तस्तल में पल्लवित हो उठे जिसका शास्त्र रूपी फल हमारे समक्ष है। इनकी प्रतिभा का परिचय इसी से मिल जाता है कि जिस शास्त्र को एक बार पढ़कर समाप्त कर लेते थे उस पर स्वतः अपनी बुद्धि से एक नवीन ग्रन्थ की रचना कर डालते थे।

स्थिति काल—ऐसे प्रतिभाशाली विलक्षण विचक्षण का जन्म किस शताब्दी में हुआ यह पर्वतीय विद्वान् भी निश्चयात्मक रूप से कहने में असमर्थ हैं। केवल अनुमान और परम्परा के आधार पर पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय ने इनका जन्म काल १७८० के लगभग माना है अन्य बहुत से आलोचक एवम् संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने इनकी चर्चा भी नहीं की है। केवल आचार्य बलदेव उपाध्याय जी ने अपने ग्रन्थों में भी पाण्डेय का साधारण परिचय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देते हुए आलोचनाशास्त्र के मान्य आचार्यों में अन्तिम आलङ्कारिक माना है और इनके सम्बन्ध में विचार किया है साथ ही आपकी कुछ पुस्तकों के विषय में भी परिचय दिया है।

आचार्य विश्वेश्वर के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ वैयाकरण सिद्धान्त सुधानिधि तथा अलङ्कार के प्रसिद्ध ग्रन्थ अलङ्कार कौस्तुभ का पर्यालोचन करने पर इनके जन्म-काल के विषय में कुछ आभास सा मिलता है। इन्होंने अपने उक्त दोनों ग्रन्थों में क्रमशः महावैयाकरण भट्टोजिदीक्षित, अप्ययदीक्षित तथा रसगङ्गाधर-कार पण्डितराज जगन्नाथ के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित हो जाता है कि यह उपर्युक्त तीनों विद्वानों के परवर्ती हैं। श्री पाण्डेय ने अपने व्याकरण के ग्रन्थ में दीक्षित जी का तो उल्लेख किया है परन्तु दीक्षित जी के पौत्र हरिदीक्षित कृत ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया है। इससे यह प्रतीत होता है यह भट्टोजिदीक्षित के परवर्ती और उनके पौत्र हरिदीक्षित के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती रहे होंगे। विद्वत्परंम्परा से यह सुनने को मिला है कि यह हरि-दीक्षित के समकालीन थे और दीक्षित जी ने पण्डित जी के दर्शन भी किये थे। भट्टोजिदीक्षित का समय १७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। फलस्वरूप इनका समय १८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।

पण्डित जी ने अलङ्कार कौस्तुभ नामक ग्रन्थ में आचार्य दीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ का खण्डन भी यत्र-तत्र किया है। पण्डितराज का समय निश्चित है क्योंकि इन्होंने भामिनी विलास में लिखा है कि दिल्लीवल्लभपाणि पल्लवतले नीतं नवीनं वयः" इसके साथ ही आसफविलास में सार्वभौम श्री शाहजहाँ का नाम निर्देश भी किया है। शाहजहाँ का समय १६२८ माना जाता है। यही पण्डितराज का भी समय है। अप्ययदीक्षित तथा भट्टोजिदीक्षित इनके समकालिक थे इसका उल्लेख नीलकण्ठ ने नलचरित में किया है। पण्डितराज को भट्टोजिदीक्षित का सहपाठी भी बताया जाता है इन्होंने श्री दीक्षित की आलोचना खूब जमकर की है इन सब तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है श्री भट्टोजिदीक्षित अप्ययदीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ के समकालिक थे। हाँ कुछ वर्षों का अन्तर हो सकता है। इन तीनों का उल्लेख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी विश्वेश्वर ने किया है अतः निश्चित रूप से पण्डित जी इन सबसे परवर्ती हैं। इन सभी का समय १७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इस मान्यता से प्रायः सभी आलोचक एकमत हैं। केवल कुछ वर्षों का अन्तर हो सकता है जैसे अप्पयदीक्षित की वृद्धावस्था में पण्डितराज युवक रहे होंगे।

व्याकरण शास्त्र के अद्वितीय व्याख्याता नागेशभट्ट अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के माने जाते हैं। इनकी लिखित पुस्तकों में पण्डित जी का उल्लेख नहीं मिलता और न पण्डित जी के ग्रन्थों में नागेश भट्ट का उल्लेख मिलता है अतः यह दोनों समकालिक प्रतीत होते हैं अथवा नागेश भट्ट के पूर्ववर्ती रहे होंगे क्योंकि भट्ट जी हरिदीक्षित के शिष्य थे इस आधार पर पण्डित जी का समय सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्पष्ट होता है भानुदत्त की रसमञ्जरी टीका में नागेश भट्ट का समय १७१२ लिखा हुआ है यही समय पण्डित जी का भी होना चाहिये।

इस कथन की पुष्टि पण्डित जी की रसमञ्जरी से भी होती है इसकी टीका में लिखा है कि "ग्रन्थकृत पुत्र जयकृष्णो विलिलेख इदं पुस्तकमिति' यहीं पर एक श्लोक मिलता है कि—दिग्गुर्णतुशशलाञ्छनयुक्ते शालवाहन शके जयकृष्णः। श्रावणीय सितपक्ष दशभ्यां निर्मित्तं पितुरिमाम् विलिलेख।" इस श्लोक के आधार पर यह प्रतीत होता है जयकृष्ण ने अपने पिता की इस कृति को शक सम्वत् १६३८ तदनुसार ई० सन् १७१६ में लिखा है अतः इससे पूर्व पण्डित जी का समय निश्चित होता है। मेरे विचार से पण्डित जी का समय १६८० से लेकर १७५० ई० के मध्य माना जाना चाहिये आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने भारतीय साहित्य शास्त्र में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का समय अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है और यही उचित भी प्रतीत होता है। पण्डित जी अपनी स्वल्पावस्था में ही चतुर्दिक् में अपनी कीर्ति को प्रख्यापित करने के अनन्तर चालीस वर्ष की अवस्था में ही कैलासवासी हो गये थे।

पाण्डित्य—"नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा प्रज्ञा" इस पंक्ति का सांगोपांग विवेचन करने पर यह प्रतीत होता है कि प्रतिपल नूतन भावों को प्रकट करने वाली प्रज्ञा ही प्रतिभा है यह प्रज्ञा जिसमें रहती है उसे प्रतिभाशाली माना जाता है। इसी से काव्य-जगत् की नव सृष्टि होती है और यह सृष्टि विधाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की सृष्टि से अपूर्व होती है। इसी विलक्षण प्रतिभा के कारण "अपारे काव्य-संसारे कविरेकः प्रजापतिः" कहा जाता है यह प्रजापति वैसी रचना करता है जो क्षण-क्षण पर नवीन प्रतीत हो तभी वह सुन्दर सृष्टि कहलाती है जैसा कि माघ के "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" इस कथन से स्पष्ट होता है। अभिप्राय यह है कि जिस किसी भी वस्तु का सूक्ष्मता से मन्थन किया जाय उसमें प्रतिपल जो नवीन अनुभूति हो वही रमणीय एवम् आह्लाद-कारी है वह चाहे काव्यजगत की वस्तु हो अथवा अन्य। यही कारण है कि कालिदास के काव्य और नाटक जिस चाव से पहले पढ़े जाते थे उससे कहीं अधिक चाव से अब भी पढ़े जाते हैं इसी प्रवृत्ति से कवि की प्रतिभा और पाण्डि-त्य का परिचय मिलता है।

कवि विश्वेश्वर संस्कृत साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा वाले विद्वान् हैं सभी शास्त्रों पर रचे गये ग्रन्थ इनके पाण्डित्य के साक्षी हैं जिस किसी भी विषय पर आपकी लेखनी उठी उसकी कोई भी ग्रन्थि ग्रन्थित न रह सकी। व्याकरण, न्याय, साहित्य, अलङ्कार तथा मुक्तक आदि सभी भिन्न विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं। गद्यकाव्य में भी बाणभट्ट के अनन्तर आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'मन्दारमञ्जरी' गद्यकाव्य की अलौकिक निधि है जिसमें सभी प्रकार से रत्न भरे हुये हैं। वेद से प्रारम्भकर स्मृति, पुराण तथा दर्शन और व्याकरण के अद्भुत प्रयोग इसमें देखने को मिलते हैं इसमें कवि ने व्यापक रूप से अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं यद्यपि "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' यह आभाणक महाकवि बाण के लिये विद्वन्मण्डली में प्रसिद्ध है फिर भी विश्वेश्वर इससे अछूते नहीं रह सकते। इसमें शास्त्रीय विषयों से अनेक उदाहरण उपमान के रूप में श्लेषात्मक पद्धति से प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें आगे के उदाहरणों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

शास्त्रीय ज्ञान—मन्दारमञ्जरी में प्रयुक्त उदाहरणों और उपमानों को देखकर ऐसा पूर्णरूपेण ज्ञान हो जाता है कि लेखक सभी शास्त्रों का ज्ञाता ही नहीं मर्मज्ञ है सभी शास्त्रों को उसने आत्मसात कर लिया है तभी उनका अपने गद्यकाव्य में समुचित प्रयोग कर सका है। जैसे पुष्पपुर की अप्सराओं का वर्णन करते हुये ऋग्भिरिव प्रशस्त स्वराभिः' के द्वारा वैदिक उदात्त अनुदात्तादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरों की ओर संकेत किया है। वैतानिकवीतिहोत्र पद के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि स्वयम् अग्निहोत्र करने वाला था जिसका उसे पूर्ण ज्ञान है। नगर-वर्णन में 'अपरेण चयन स्थलेनेवेष्टकामयेन' शासन-वर्णन में अनुदातत्वं स्वरभेदे मन्त्रि-वर्णन में उद्गातेव सामप्रयोगाभिज्ञः" आदि पद वैदिक ज्ञान की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रयोग भी प्रायः सर्वत्र देखे जा सकते हैं। स्मृतियों के साथ पुराणों के भी बहुशः प्रयोग कवि ने किया है। महाभारत रामायण आदि से सम्बन्धित पुरुषों का प्रयोग श्लेष रूप में निखर उठा है जो कवि के विलक्षण पाण्डित्य का दर्शन कराते हैं।

सबसे अधिक उदाहरण व्याकरण तथा न्याय आदि दर्शनशास्त्रों से लिये गेय प्रतीत होते हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह शास्त्र कवि के मस्तिष्क में पूर्ण रूपेण छाये हुये हैं। व्याकरण के ऐसे प्रयोग कवि ने किये हैं जिन्हें शायद ही किसी कवि ने स्पर्श किया हो जैसे—'शब्दशास्त्रेणेव सम्पन्न बहुव्रीहिणा, वैयाकरण इव सम्प्रसारितवलरयोः, रचितगुणवृद्धिः, निपातित सुहृद् स्वान्तध्वान्तः सुवंशभाक् सन्निष्ठा सहितश्च, रेफस्योर्ध्वगमनं शब्दसाधने, प्रत्ययलोपो व्याकरणे पाणिनीयेषु मध्यम पुरुष दर्शनम्, पदार्थहरण समासादिवृत्तौ, पदाभावो भसञ्ज्ञायाम्, आदि ऐसे प्रयोग हैं जिन्हें कोई विचक्षण ही कर सकता है जिसने व्याकरणशास्त्र को अपने में समाहित कर लिया हो वही ऐसे प्रयोग करने में सक्षम हो सकता है। यह पारिभाषिक प्रयोग प्रखर वैयाकरण और साहित्य मर्मज्ञ ही कर सकता है। जिन्हें कवि ने उपमान के रूप में ग्रहण किया है। कहीं कहीं पर यह उपमान इतने सुदृढ एवम् अपूर्व हैं कि जिनका प्रयोग साहित्य ग्रन्थों में एक दो कवियों ने अति सूक्ष्म रूप में किया है परन्तु आचार्य जी ने व्याकरणशास्त्र से भिन्न-भिन्न पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग श्लेष के आधार पर इतनी सूझ के साथ किया है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकते। जिसको व्याकरण कोश और साहित्य का पूर्ण ज्ञान हो वही ऐसे प्रयोग करने में समर्थ हो सकता है।

दर्शन शास्त्रों में कवि का प्रिय दर्शन न्याय प्रतीत होता है क्योंकि इसी दर्शन के सर्वाधिक उदाहरण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य दर्शनों के भी उदाहरण हैं परन्तु वे स्वल्प मात्रा में प्रयुक्त हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्याय दर्शन—कवि विश्वेश्वर सूरि व्याकरण शास्त्र के अतिरिक्त न्याय आदि दर्शनों के भी प्रकाण्ड पण्डित थे सभी दर्शनों में आपका अव्याहृत प्रवेश था। जिसका प्रभाव मन्दारमञ्जरी पर भी व्यापक रूप से पड़ा है। इसे पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह गद्यकाव्य नहीं अपितु दार्शनिक ग्रन्थों का पारिभाषिक कोश है। सर्वत्र न्याय आदि दर्शनों को पारिभाषिक पदावलियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। ऐसा आभास होता है कि कवि दार्शनिक सिद्धान्तों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना चाह रहा है। जैसे पुष्पपुर का वर्णन करते समय गौतम प्रणीत न्यायसूत्र के सोलह पदार्थों को उपमान रूप में प्रस्तुत किया है इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र साहित्य ग्रन्थों में दुष्प्राप्य है।

दर्शन के पदों को श्लेष के माध्यम से सर्वत्र बहुलता के साथ कवि ने प्रस्तुत किया है जैसे—साक्षादकारणेनेव द्वारभाजा, ज्ञानमिव नित्यविषय संसंगि, द्व्यणुकमिवनित्य पार्थिव समवेतम्, प्रमेयत्वमिवासम्भवद्विपक्षवाधम्, सत्प्रतिपक्षत्वं बाधितत्वं च हेत्वाभासविशेषे, यह तो स्थाली पुलाकन्यायेन उदाहरण दिये हैं ऐसे अनेक उदाहरण सम्पूर्ण गद्यकाव्य में बिखरे हुये हैं। उक्त उदाहरणों का वृहद् विवेचन व्याख्या में किया गया है। न्याय के समान वैशेषिक दर्शन के भी प्रयोग देखने को मिलते हैं जैसे न्यून्मनस्कत्वं वैशेषिकेषु, इसी प्रकार के अन्य उदाहरण न्याय और वैशेषिक दर्शनों से कवि ने दिये हैं।

उक्त दर्शनों के अतिरिक्त सांख्य मीमांसा तथा बौद्ध दर्शनों के ज्ञान का परिचय भी मन्दारमञ्जरी में उपलब्ध होता है। वस्तुः इस गद्यकाव्य का वही अवगाहन कर सकता है जिसका सभी शास्त्रों पर समान अधिकार हो। मीमांसा आदि के उदाहरणों में श्लेष का प्रयोग अतीव हृदयावर्जक बन गया है। जैसे सांख्य दर्शन के कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं जैसे—सांख्य इवाभ्युपगतसत्कार्यवादः, प्रकृत्यनाथाभावो निष्क्रिय चेतनपुरुषत्वं च सांख्येषु बुद्धितत्वविरोधादेव सांख्यविदो नाश्रयति, आदि। इसी प्रकार ईश्वर द्वेषो मीमांसकेषु, उपनयत्यागः जैमिनीयेषु, आदि। ऐसे ही वेदान्त और बौद्धदर्शनों के भी प्रयोग देखने को मिलते हैं। यह सभी प्रकार के प्रयोग साहित्य के परिवेश में किये गये हैं जो कवि की विलक्षण प्रतिभा एवं पाण्डित्य के बोधक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपरिनिर्दिष्ट शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, पुराण एवम् इतिहास आदि के उदाहरण कवि ने सहज रूप में दिये हैं। इन सभी में श्लेष, उपमा तथा विरोधाभास आदि अलङ्कारों का सहयोग लिया गया है जैसे अङ्क प्रचारो गणितागमेषु, ज्योतिस्तन्त्रेणेव सविष्कम्भेन, आदि उदाहरण तथा पृथुरिव आदि से लेकर शिशुपाल इवानर्घजनितमन्युः तक पुराण तथा महाभारत के सम्यक् ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। यह सभी प्रयोग आलङ्कारिक शैली में दिये गये हैं।

अलङ्कार—साहित्य शास्त्र के धुरन्धर विद्वान् होने के कारण अलङ्कारों तथा रसों का प्रयोग कुशलता पूर्वक किया है। मन्दारमञ्जरी शृङ्गारिक गद्य-काव्य है। इस कारण इसका अङ्गीरस शृङ्गार है तथा अङ्ग रूप में करुण आदि रसों का भी प्रयोग मन्दारमञ्जरी वर्णन में देखा जा सकता है। अद्भुत दर्शनम् भयानक रस द्रष्टव्य है। गुणों की दृष्टि से प्रसाद तथा माधुर्य गुणों का परिपाक हुआ है। यद्यपि कादम्बरी के समान अत्यधिक लम्बे सामासिक पदों का अभाव सा है फिर भी समास बहुल है अतः "ओजः समासभूयस्त्वमेतदनद्यस्य जीवितम्" का पालन कवि ने पूर्ण रूप से किया है।

अलङ्कारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास तथा परिसंख्या का बाहुल्य है। ये सभी अलङ्कार अपनी विशिष्ट विशेषता लिये हुए हैं। प्राची दिग् वर्णन में उपमा का सुन्दर प्रयोग किया गया है। इसके नगर-वर्णन, नायक-वर्णन तथा देवी गुण-वर्णन में भी उपमा दर्शनीय है हरलीलेवकिराताश्रिता, रिपुपुरमिव विशालम्, शकुन्तलेव सदाशुभरता आदि उदाहरण रमणीय हैं। कवि की उत्प्रेक्षा ने नवीन रूप धारण किये हुए है। गौतम के सोलह पदार्थों के आधार पर की गई विभिन्न प्रकार की उत्प्रेक्षायें सहृदय पाठक को हठात् आकर्षित करती हैं। पुष्पपुर की गणिकाओं का वर्णन करते समय कवि ने श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षालङ्कार का प्रयोग किया है जैसे प्रसन्नकविवाणीभिरिव सर्वग्राह्यरसाभिः अथवा जातिभिरिवैकवृत्तित्व रहिताभिः" इस प्रकार की उत्प्रेक्षायें कवि की मौलिकता का सङ्केत करती है। विरोधाभास बाणभट्ट के विरोधाभास को भी पीछे रखने वाला है जैसे—चतुराननोऽप्यनष्टभुजः, नयजित कुवलयोऽपि नयनजितकुवलयः, नीतिकारकोऽप्यनीतिकारकः आदि। इस सम्पूर्ण खण्ड में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपक, उपमा, श्लेष, तथा विरोध अलङ्कारों का समीचीन प्रयोग किया गया है। शासन सौभाग्य वर्णन में श्लेषानुप्राणित परिसंख्या अलङ्कार का बाहुल्य है। जैसे गौणार्थपरिग्रहः शब्देषु न क्रियासु, पृष्ठदर्शनं सामप्रयोगेषु न सगेरेषु। इसी प्रकार मालोपमा का प्रयोग अतीव हृदयहारी है जैसे हिरण्यकशिपुरिवजनित प्रहलाद, प्रहलाद इव प्रसूत विरोचनः, विरोचन इव प्रयत्नरक्षितवलिः आदि। अलङ्कारों की दृष्टि से कवि ने अपने नैपुण्य का प्रदर्शन किया है। यद्यपि समस्त गद्य-काव्य में अलङ्कारों का प्रयोग किया है परन्तु सीमित रूप में फिर भी श्लेष कवि का प्रिय अलङ्कार प्रतीत होता है इसी के उपमा को भी स्थान दिया जा सकता है।

श्लेष का बाहुल्य होने का कारण यह भी हो सकता है कि इनके पूर्व गद्यकारों ने श्लेष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सुबन्धु, बाण तथा दण्डी आदि ने इसे अपनाया है। कवि के आदर्श बाणभट्ट तथा सुबन्धु रहे हैं क्योंकि गद्यकारों के रूप में इन्हीं दोनों कवियों का उल्लेख आचार्य विश्वेश्वर ने किया है। इन दोनों में भी सुबन्धु से यह अधिक प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं। सुबन्धु ने प्रत्यक्षर श्लेष युक्त होने की प्रतिज्ञा सी कर लिया था उसी का अनुसरण एवम् अनुकरण पण्डित जी ने भी कर लिया है। इसी कारण जैसा भी वर्णन हो उस में श्लेष अवश्य मिलता है। लगता है कि बिना श्लेष के गद्य में आनन्द ही नहीं। श्लेष का आश्रयण बाणभट्ट ने भी लिया है परन्तु बाण का श्लेष स्वाभाविकता को लिये हुए है और इन दोनों के श्लेष में कृत्रिमता का समावेश है।

वर्णन-शैली—पण्डित जी की वर्णन-शैली मौलिक होने के साथ ही अपने पूर्ववर्ती कवियों का पूर्ण रूपेण अनुकरण करती हुई प्रतीत होती है। विशेषतः सुबन्धु का अनुकरण अधिक मात्रा में किया गया है। कथावस्तु कादम्बरी के समान है परन्तु वर्णन सुबन्धु के समान है। इसी कारण कलापक्ष का प्राधान्य हो गया हैं और भावपक्ष गौण। पाण्डित्य प्रदर्शन की लालसा ने भावपक्ष को तिरस्कृत कर दिया है। यदि बाण का ही अनुकरण कवि करता तो मन्दारमञ्जरी कादम्बरी से कहीं अधिक प्रसिद्धि पा सकती थी। इस प्रकार कवित्व की दृष्टि से यह गद्यकाव्य उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता। सफल कवि तो वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है जो भाव तथा कलापक्ष को अपने काव्य में समान रूप से स्थान देने में समर्थ हो।

मन्दारमञ्जरी को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि व्यापक दृष्टि रखता है और उसकी अनुभूति अति तीव्र है। बाण, सुबन्धु के अनुसार मन्दारमञ्जरी की भूमिका में पण्डित जी ने भी सूक्ष्म पद्धति से सज्जन और दुर्जन प्रशंसा की है। पण्डित जी के वर्णनों में शास्त्रीय पुट निश्चित रूप से आ गया है इस कारण वास्तविक वर्णन तिरोभूत सा हो गया है। पुष्पपुर का वर्णन करते समय जिन न्याय सूत्र के सोलह पदार्थों को उपमान रूप में ग्रहण किया है वे तब तक नहीं समझ में आ सकते जब तक न्यायदर्शन का ज्ञान न हो। इसी प्रकार अन्यत्र भी देखा जा सकता है। प्रायः सभी वर्णनों में शास्त्रीय पक्ष का प्राधान्य है चाहे वह नगर-वर्णन हो अथवा नायक, नायिका, प्रकृति-वर्णन, सर्वत्र शास्त्रीय पक्ष को जोड़ दिया गया है।

सुबन्धु के समान आचार्य विश्वेश्वर ने भी सर्वत्र क्लिष्ट और श्लिष्ट वर्णनों के प्रयोग में अपने पाण्डित्य को प्रकट करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इस पर भी कवित्व को व्यञ्जित करने वाले प्रसङ्गों की न्यूनता नहीं है चित्रभानु और मदयन्ती संवाद आदि इसमें प्रमाण हैं। मन्दारमञ्जरी का वर्णन करते समय यद्यपि शास्त्रीय उपमानों को लिया गया है तथापि विरोधाभास में रमणीयता है जैसे—श्यामामप्यत्युज्ज्वलाम्, अवरसंमुक्तामपि संवृताम्, सुगतानुगतामपि मन्मथायन्तरम्, वृहन्नितम्बामपि नाहार्यशोभाम्, उन्नतपयोधरामपि विलसन्नयनखञ्जनाम्, मृगाक्षीमपि पुण्डरीकेक्षणाम्, आदि उदाहरण रसपेशल हो गये हैं। इतना होते हुए भी शृङ्गारवर्णन में कवित्व का अभाव है संक्षेप में यदि कहीं शृङ्गार का स्पर्श किया भी है तो वह अश्लील सा हो गया है जैसे 'नीविमोक्षः सुरतोत्सवेषु न वणिक्षु, करपीडासुन्दरीस्तनकोरकेषु न प्रजासु अश्लीलभाषणमश्वमेधविधिषु रतप्रयोगेषु च न सद्गोष्ठीषु।'

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं पण्डित जी श्लेष के धनी हैं। काव्य में व्यापक रूप से शाब्दीक्रीडा की है। वर्णन-नगर की वारवधूटियों का है फिर भी उसमें उपमान शास्त्रीय हैं जो बुद्धिविलास के कारण सुन्दरता को ले डूबे जो विविध शास्त्र का ज्ञाता नहीं वह उनका आनन्द नहीं ले सकता जैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋग्भिरिव प्रशस्त स्वराभिः, मतान्तरानुरागाभिरिव द्रव्याभिन्नगुणाभिमानिनीभिः, न्यायानुयायिनीभिरिवानेकसमवायाभिः, आख्यातपरम्पराभिरिवानेकमध्यमपुरुषप्रचारयोग्याभिः, जातिभिरिवैकवृत्तित्वरहिताभिः, आदि शास्त्रीय ज्ञान के विना दुर्बोध वने रहते हैं।

आचार्य विश्वेश्वर ने अपने गद्यकाव्य में कथावस्तु तथा रस-योजना पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने अपने वर्ण्य विषय को विभिन्न वर्णनों के द्वारा दुरूह बना दिया है इस कारण स्वाभाविकता क्षीण हो गई है। यह अपने वर्णन में विषयवस्तु का चित्रण करने की अपेक्षा नई नई कल्पनायें करने में तत्पर दिखाई पड़ते हैं जिस पर उनके पाण्डित्य की छाप बराबर लगी रहती है अप्रासङ्गिक विस्तृत वर्णनों की बहुलता है, पुष्पपुर के बाजार का वर्णन वस्तुतः वर्णन न होकर कृत्रिम प्रतीत होने लगता है यद्यपि श्लेष का प्रयोग सामञ्जस्य बनाये रखने में समर्थ है तथापि वह शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा रखता है जिसके कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं यथा शब्दशास्त्रेणेव सम्पन्नबहुव्रीहिणा, पार्थिवद्रव्येण विजातीयगन्धवता, नीललोहित तटेनेव ज्वलदग्निशिखेन, आदि।

नायक-वर्णन में इतनी दुरूहता हैं कि उसे साधारण कवि हृदय समझने में असमर्थ है। इन सबका एकमात्र कारण नूतनशास्त्रीय उपमानों का श्लेष रूप में प्रयोग करना। इसे समझने के लिये कठिन परिश्रम करना पड़ता है जैसे व्याकरण इव सम्प्रसारितवलरयोः, रचितगुणवृद्धिः निपातित सुहृद्स्वान्त ध्वान्तः, सुवंशभाक् सन्निष्ठासहितश्च, सांख्य इवाभ्युपगतसत्कार्यवादः, प्रभाकर इव संख्यातीतगुणोनित्यवर्णश्च, विपक्ष इवाऽसाध्यः।" यहाँ के विरोधाभास बाणभट्ट का अनुकरण करते हैं जैसे महादोषोऽप्यदोषः, सदलीकोऽप्यनलीकः, दुर्योधनोऽप्यजनितलक्ष्मणः, धनदोऽप्यकुवेरः। इनके साथ आगे के विरोधों में बड़ी खींचातानी करनी पड़ती है जैसे व्याजरहितोऽपि न व्याजरहितः, नत्याहितोऽपनन्याहितः, आदि प्रयोग पाण्डित्य पूर्ण हैं जो स्वाभाविकता से प्रतीत होते हैं। इस क्लिष्टता के साथ साधारण एवं सरल पदों का प्रयोग देखने को मिलता है जैसे अग्रणीर्गुणशालिनां, ललामकलावतां, धुरीणो धीराणां, मान्योवदान्यानां तृष्णक् धर्मे, मूढो दुर्नये आदि लघु प्रयोग कवि के कवित्व को प्रकट करते हैं परन्तु इस प्रकार के प्रयोग स्वल्प मात्रा में ही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त उद्धरणों एवं विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपने अगाध पाण्डित्य की शक्ति से कवि ने गद्यकाव्य का निर्माण किया है जिस में अपनी पाण्डित्यपूर्ण प्रतिभा का प्रयोग खुलकर किया है। इसी कारण क्लिष्टता आ गई है और कथावस्तु की प्रवाहमयता विलीन हो गई है यद्यपि कथानक अतीव सुन्दर है जिसे कवि ने अपने श्लिष्ट एवं क्लिष्ट शास्त्रीय प्रयोगों के द्वारा बोझिल बना दिया है। यह वैसे ही प्रतीत होता हैं जैसे किसी अतिशय सुन्दर कोमलाङ्गी को अनेक आभूषणों से आवृत कर दिया जाय जिससे उसका वास्तविक सौन्दर्य ही ढक जाय। यही दशा कवि की मन्दार-मञ्जरी में प्रतीत होती है। यदि कवि श्लेष और शास्त्रीय पक्षों की ओर अधिक उन्मुख न होता तो यह गद्यकाव्य सर्वश्रेष्ठ हो सकता था।

कृतित्व—लेखक की कृतियाँ ही उसके वैदुष्य, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व की परिचायक होती है क्योंकि उसका सम्पूर्ण बिम्ब ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिभा का स्फुटन सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इसके साथ उसके युग का भी आभास मिलता है। इसीलिये काव्य को समाज का दर्पण माना जाता है। लेखक की प्रतिभा विशालकाय ग्रन्थों के आधार पर नहीं अपितु पाण्डित्य पूर्ण किसी एकमात्र ग्रन्थ से ही आँकी जा सकती है और यदि सभी ग्रन्थों में पाण्डित्यपूर्ण मौलिक विवेचन मिलता है तो उसे सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न माना जाता है। इस कसौटी पर जब हम आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय को परखते हैं तो वह विद्वानों में अग्रगण्य सिद्ध होते हैं। अपनी प्रतिभा को दिग्दिगन्त तथा विस्तार करने वाले, सारस्वत वैभव के रत्नों को चतुर्दिक् विकीर्ण करने वाले तथा संस्कृतवाङ्मय कल्पतरु की अनन्त शाखाओं वाले आचार्य विश्वेश्वर ने अनेक ग्रन्थ प्रसूनों का निर्माण किया। कवि ने प्रायः संस्कृत वाङ्मय की सभी विधाओं का आलोडन करके उस पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। उनके ज्ञान सरोवर में व्याकरण न्याय साहित्य सभी शास्त्र अभिषिक्त हो उठे हैं। जिस किसी भी शास्त्र को उठाया उस पर मौलिकता पूर्ण स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् सरस्वती ने स्वयं उन्हें सजाया है।

आचार्य विश्वेश्वर सर्वतामुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। इन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यधिक ग्रन्थों की रचना की जिनमें से कुछ प्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का विवेचन निम्न प्रकार है।

१. वैयाकरण सिद्धान्त सुधानिधि—यह व्याकरण शास्त्र का आकर ग्रन्थ है इसकी रचना पण्डित जी ने अष्टाध्यायी के क्रम से महाभाष्य की पद्धति के अनुसार किया है। इसमें महाभाष्यकार तथा वार्तिककार के मतों का आलोकन करते हुए अपने मौलिक विचारों का प्रतिपादन ग्रन्थकार ने किया है। अपने इस महाग्रन्थ में लेखक ने वेद न्याय-मीमांसा तथा साहित्यविषयक प्रकाण्ड एवं मान्य ग्रन्थों को प्रमाण रूप में उपस्थित किया है। इसमें भट्टोजिदीक्षित प्रभृति व्याकरण के धुरन्धर विद्वानों के विचारों का भी उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ-राज के केवल तीन ही अध्याय सम्भवतः प्रकाशित हो पाये हैं शेष अप्रकाशित हैं। इसकी विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसके तीन अध्याय ही १५०९ पृष्ठों में है।

२. तर्क कुतूहल तथा दीधित प्रवेश इनके न्यायशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। इग ग्रन्थों के अतिरिक्त शेष ग्रन्थ साहित्यशास्त्र तथा प्रकीर्ण, शतक, सट्टक तथा नाटिका आदि हैं।

३. अलङ्कार कौस्तुभ—यह काव्यशास्त्र का लाक्षणिक ग्रन्थ है पण्डित जी का यह मूर्धन्य ग्रन्थ है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार "अलङ्कार कौस्तुभ पण्डितराज जगन्नाथ की शैली में निबद्ध साहित्यशास्त्र का अन्तिम प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसकी महती विशेषता है अलङ्कारों के स्वरूप का प्रामाणिक विवेचन जिसमें स्थान-स्थान पर अप्पयदीक्षित तथा पण्डितराज के मत का खण्डन बड़ी युक्तिमत्ता के साथ किया है, उपमा के रूप तथा प्रभेदों का विवेचन डेढ़ सौ पृष्ठों में किया गया है।" वह ग्रन्थ नव्यन्याय की शैली में लिखा गया है। इसमें रस-रीति-गुण-दोष तथा अलङ्कार आदि का विवेचन कारिकाओं में किया है और इन कारिकाओं की वृत्ति भी स्वयं लिखी है। इसे आचार्य मम्मटकृत काव्यप्रकाश तथा पण्डितराजकृत रसगङ्गाधर से भी विशिष्ट बताया जाता है। परम्परा से ज्ञात होता है कि मूल लेखक ने इसकी टीका भी लिखी थी परन्तु वह सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं।

लेखक के समय तक अलङ्कारों की संख्या बढ़कर १२८ से भी अधिक हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चुकी थी सम्भवतः इस वृद्धि पर रोक लगाना भी लेखक को अभिष्ट था। इसी कारण काव्यप्रकाश में वर्णित केवल '६१ अलङ्कारों का ही विवेचन इस ग्रन्थ में किया है शेष अलङ्कारों का अन्तर्भाव इन्हीं में कर दिया है। अलङ्कारों के लक्षण का परिष्कार इनकी मौलिक विचारधारा का प्रदर्शक है। इस ग्रन्थ में लेखक ने अपने बड़े भाई उमापति के मत का भी निर्देश किया है। अलङ्कार मुक्तावली—यह ग्रन्थ बालबोधा के लिये लिखा गया प्रतीत होता है इसमें अलङ्कार कौस्तुभ की ही कारिकाओं का साधारण वृत्ति के साथ विवेचन किया गया है। इसमें विवेचन की महत्ता अधिक नहीं है अपितु लक्षण तथा उदाहरण का निर्देश मुख्य है। इसके सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने स्वयं ने लिखा है—

नाना पक्षविभावनकुतुकमलङ्काररकौस्तुभं कृत्वा।
सुख बोधाय शिशूनां क्रियते मुक्तावली तेषाम् ॥

अलङ्कार प्रदीप—यह अप्पयदीक्षित कृत कुवलयानन्द के समान केवल अलङ्कारों का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है इस ग्रन्थ में लेखक ने बहुत ही सरल तथा संक्षेप में अर्थालङ्कारों का लक्षण किया है और उनके स्वनिर्मित उदाहरण दिये हैं। सुकुमार बुद्धि वाले छात्रों के लिये क्लेशकारक अव्याप्ति तथा अतिव्याप्ति, बाध्यबाधक आदि गहन शास्त्रीय विचार इस ग्रन्थ में नहीं हैं यही इसकी विशेषता है।

कवीन्द्र कण्ठाभरण—इसमें चार परिच्छेद हैं और यह चित्रकाव्य का अनुपम ग्रन्थ है। यह विदग्ध मुखमण्डन की शैली पर लिखा गया है परन्तु विवेचन में उससे कहीं अधिक रोचक और प्रामाणिक है इसके सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है—

'यदभिहितं बहुमहितं पूर्वाचार्यैर्विचार्यैव।
अनुकुर्वन् किञ्चिद् बहुविदिर्भनाहमुपहासस्यः ॥

प्रहेलिका तथा अनेक प्रकार की चित्रजातियों के ज्ञान के लिये यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है।

रसचन्द्रिका—इस प्रबन्ध में लेखक ने नायक-नायिकाओं के परिष्कृत लक्षण लिखकर स्वनिर्मित पद्यों में प्रायः नवीन उदाहरण दिये हैं।

आर्यासप्तशती—यह विभिन्न विषयों को लेकर लिखा गया मुक्तक काव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें प्रथमतः देवता-गुरु-कवि-तथा नृप आदि की प्रशंसा की गई है इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अकारादि क्रम से शकार पर्यन्त अक्षरों के आधार पर आर्या छन्द में ७६४ श्लोकों की रचना की गई है। यह ग्रन्थ गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती से सर्वथा भिन्न है।

शृङ्गार मञ्जरी—यह लेखक की सट्टक रचना है। काव्य की दृष्टि से यह सट्टक अतीव सुन्दर तथा आवर्जक है। इसमें कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर नवीन तथ्यों की उद्भावना की है यद्यपि यह इस सम्बन्ध में कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर के ऋणी हैं तथापि प्राकृत भाषा की प्रवाहमयी सरसक विता लिखने में उनका प्रभुत्व अक्षुण्ण प्रतीत होता है। नवमालिका:-कविकृत नाटिका है।

रोमावलीसतकम्—यह कवि का शृङ्गारिक काव्य है। इसमें नायिका की केवल रोमावली का ही वर्णन १०० पद्यों में किया गया है। यहाँ कवि ने जमकर अपनी प्रतिभा का मधुर विलास दिखलाया है। इसमें कवि की अभूत उत्प्रेक्षायें मनोहारी एवं हृदयावर्जक हैं जिसे एक उदाहरण में देखा जा सकता है—

> आवासधाग्निहृदये तवमन्मथस्य
> कुम्भौ सुवर्ण घटितौ निहितौ स्तनौ किम्।
> मन्ये तयोर्निपतन-प्रतिकार हेतो-
> रोमालिरक्रियत मारकतीव यष्टिः ॥

इस पद्य में नायिका के हृदय को कामदेव का आवासगृह तथा स्तनों को कनक निर्मित कुम्भ बतलाया गया है इन दोनों को गिरने से बचाने के लिये रोमावली मरकत मणि की बनी हुई आधार यष्टि है।

इन उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य बहुत से ग्रन्थ कवि ने लिखे हैं जिनमें से अधिकांश अप्रकाशित और अप्राप्य हैं। कवि ने नैषध महाकाव्य की कोई टीका भी लिखी थी परन्तु वह अभी तक अप्रकाशित है। इनके लक्ष्मी विलास, षड्ऋतुवर्णनम्, वक्षोजशतकम्, होलिकाशतकम् ग्रन्थ गङ्गा को समर्पित कर दिया ऐसा कहा जाता है।

मन्दारमञ्जरी—मन्दारमञ्जरी सुबन्धु तथा बाणभट्ट की शैली पर लिखा गया है गद्यकाव्य का प्रौढ ग्रन्थ है। इसमें प्रथमतः ब्रह्म की प्रार्थना तदनन्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिवगौरी गणेश विष्णु तथा सरस्वती की वन्दना की गई है। इसके पश्चात् छः श्लोकों में क्रमशः वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति सुबन्धु और बाणभट्ट सदृश महाकवियों का वर्णन किया है पुनः पिता एवं गुरु की वन्दना करते हुये खलनिन्दा आदि की गई हैं। कथा का प्रारम्भ प्राचीदिग् का वर्णन करते हुये इसी दिशा में स्थित पुष्पपुर तथा उसके साथ एक राजा राजशेखर और उनकी महारानी मलयवती का वर्णन किया है। राजा के कोई सन्तान न होने के कारण वह दुखी थे इसी समय एक ब्रह्मचारी की रक्षा करने के कारण उससे प्राप्त वरदान स्वरूप चित्रभानु नामक पुत्र को प्राप्त किया जिसकी शिक्षा आदि की व्यवस्था राजाओं के अनुकूल सम्पन्न हुई। एक दिन पुत्र सहित राजा सिंहासन पर बैठे थे तभी इन्द्र का रथ आया जिस पर आरूढ होकर पिता पुत्र आकाशमार्ग का दर्शन करते हुये एक तपोवन में इन्द्र सहित गृत्समद ऋषि के दर्शन किये। वही रात्रि व्यतीत करने के अनन्तर प्रातः चित्रभानु भ्रमण करते हुये बिन्दुसरोवर के निकट चित्रसेन नामक गन्धर्व की कन्या मदयन्ती को देखा। उसी मन्दारमञ्जरी का वर्णन किया। मदयन्ती के कारण चित्रभानु को मन्दार मञ्जरी के दर्शन हुए और दोनों का परस्पर गाढ अनुराग हो गया। इतनी कथा पूर्वार्द्ध में वर्णित है।

कथा के मध्यभाग में अन्य प्रातः सन्ध्या, यमुना, सहागोदावरी विजय ध्वज आदि अनेक प्रकार के वर्णन भरे हुये हैं यह कथा सरल तथा सरस है कादम्बरी के समान इसे जन्म जन्मान्तर की कथाओं से उलझाया नहीं गया फिर भी कथा में प्रवाह का अभाव है इसका एकमात्र कारण कवि का वैदुष्य है कवि किसी वस्तु का वर्णन करते समय वर्ण्यवस्तु पर विशेष ध्यान न देकर उसके विशिष्ट विशेषणों पर ही ध्यान देने लगता है इस कारण मन्थर गति आगे बढ़ पाती है। पाठक केवल शब्दीक्रीडा में ही व्यस्त रह जाता है उसे वास्तविक काव्यानन्दानुभूति नहीं हो पाती। घटना क्रम का वर्णन भी संक्षिप्त कर दिया है केवल इधर उधर के वर्णनों में श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या आदि अलङ्कार के प्रयोग में व्यस्त रहता है यह देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि चमत्कारपूर्ण उक्तियों तथा जटिल श्लेषों द्वारा अपने शास्त्रीय ज्ञान का ही प्रदर्शन करना चाहता है मूल कथानक से उसे कोई विशेष अनुराग नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गद्य काव्य सम्बन्धी प्रचलित मान्यताओं के आधार पर ही विश्वेश्वर ने मन्दारमञ्जरी की रचना की है इनके आदर्श सुवन्धु और वाणभट्ट दोनों रहे हैं परन्तु सुवन्धु इन्हें अधिक प्रिय थे ऐसा मन्दारमञ्जरी के गद्य को देखकर प्रतीत होता है क्योंकि इन्होंने सुवन्धु के कलापक्ष का तो बखूबी अनुकरण किया परन्तु वाण के भावपक्ष को ग्रहण करने में असमर्थ रहे। इसी कारण कवित्व की दृष्टि से यह उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता, उत्तम तो वही है जो कला के साथ अभिव्यञ्जना को भी ग्रहण करता है। इस काव्य में भाव पक्ष के किसी भी अङ्ग के पालन में कवि ने रुचि नहीं दिखलाई।

कवि के समक्ष सुन्दर और सरस कथावस्तु थी; परन्तु प्रेम कथा का चुनाव करके भी कवि, नायक नायिका की भावनाओं को निखारने में असफल रहा। जो गद्य काव्य की नायिका है उसके दर्शन अन्त में होते हैं और वह भी थोड़े वर्णन के साथ हो सकता है कि उसका व्यापक वर्णन कवि उत्तर भाग में करता; परन्तु अपूर्ण होने के कारण इतने अंश पर ही वैशिष्ट्य का निर्धारण करना पड़ता है। इतने अंश में भी कवि की रागात्मक दृष्टि का परिचय नहीं मिल पाता बल्कि पाण्डित्य प्रदर्णन के प्रति अधिक आग्रह मिलता है वस्तुतः सुवन्धु के सम्बन्ध में कही गई यह उक्ति कि "कवि का शास्त्रीय ज्ञान प्रदर्शित करने तथा अलङ्कारों की प्रयत्न पूर्वक योजना करने की यह प्रवृत्ति उसने कल्पना तत्त्व की चारुता में विशेष रूप से बाधक होती है। कल्पना तत्त्व जो कि काव्य को साधरण उक्ति से ऊपर उठाकर सच्चे अर्थों में उसे काव्य बनाने में विशेप सहायक होता है, सुवन्धु की कृति में अधिकांश स्थलों पर पाठक के हृदय पर वर्ण्य विषय का संश्लिष्ट तथा प्रभावपूर्ण चित्राङ्कन करने के स्थान पर पाठक की बुद्धिमात्र को ही चमत्कृत करने में समर्थ हो पाता है" पूर्ण रूप से आचार्य विश्वेश्वर के गद्यकाव्य के लिये भी लागू होती है।

कलापक्ष का प्राधान्य होने पर भी कुछ स्थलों पर भावपक्ष के भी दर्शन होते हैं जैसे मदयन्ती का वर्णन करते समय तथा मन्दार मञ्जरी के वर्णन प्रवसर पर इस भावपक्ष को देखा जा सकता है इसके साथ ही राजा की निरपत्यता का वर्णन भी हृदय स्पर्शी है। इसी प्रकार मदयन्ती द्वारा वर्णित

Ganesh Varni,Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य कल्पनाओं के विषय भी तल स्पर्शी हैं इन सबके उदाहरण मन्दारमञ्जरी में प्रायः देखे णा सकते हैं।

राजा राजशेखर अपनी पुत्रहीनता के दुख को व्यक्त करता हुआ कहता है "...तत्र चोत्पत्ति समय एव ऋणत्रयमनुबध्नाति। तत्र च यागस्वाध्यायादिकमसाध्यऋणद्वयापनोद इति धर्मशास्त्रविदोऽभ्युपगच्छन्ति, स तु ममापि प्रायेण सञ्जात एव, यत्तु पित्र्यं तृतीयमृणं तत्पुत्रमात्रपरिहार्यमिति तद्वद्धोऽहं सकलातिशायिनीमपि सम्पदमिमां न वहमन्ये, सम्पदो हि चलप्रायाः कालक्रमेणाविर्भवन्ति च, तासां हि सद्भावे सुखविशेषोऽभावे तु न कश्चिदप्यनिष्टलेशः, उत्तरोत्तरोत्कर्षग्रस्ता एव हि संसारे सर्वोत्कर्षाः..." यहाँ पर कवि ने शास्त्रीय ज्ञान तथा क्लिष्ट श्लिष्टादि प्रयोग नहीं किये हैं। इस कारण सरलता तथा सरसता के साथ हृदयग्राही भावपक्ष का दर्शन अनायासेन हो जाता है।

रसों का परिपाक भी मन्दारमञ्जरी में पुष्ट नहीं हो पाया है। केवल कुछ एक स्थानों पर शृंङ्गार रस का वर्णन किया है। इसका भी पाण्डित्य प्रदर्शन ही कारण है। इसका कथानक प्रेमरस परक है फलस्वरूप रसों का परिपाक समुचित रीति से हो सकता था परन्तु कवि ने उस पर विशेष ध्यान देना उचित नहीं समझा फिर भी इसका पूर्णतया अभाव नहीं है। कामदशा वर्णन में पूर्णतया रसानुभूति होती है "तथाहि तस्यापि...मलयानिला इव चन्दनाभोदिनो मुखमारुताः समुदीयुः रसोद्रेहृदि दीप्यमानस्य मदनजातवेतसो धूमवीरुधइव तत्सौरभानुसारिण्यो मधुकरततयः समलक्ष्यन्त, मलयमारुताहतः सहकारतरुरिव कुसुम सुकुमारः कायः कम्पमाकलयाञ्चकार, मार्गणगणनिचितगात्राभ्यन्तरेऽनवकाशतया बहिरेव लग्ना नतिरमणप्रहिताः कुन्दकलिका इव स्वेदबिन्दवः—प्रादुर्बभूवुः।" इसमें साधारण उपमानों द्वारा काम की अवस्था का वर्णन किया गया है जो सहृदयग्राही है।

इसी प्रकार मन्दारमञ्जरी के अनुराग वर्णन में कवि ने शिष्ट शृङ्गार रस का प्रयोग किया है यह अतीव हृदयहारी तथा सरस है मन्दारमञ्जरी का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि "रतिनाटिका प्रस्तावनोपयुक्तां कुसुमाञ्जलिघटनामिव कान्तिर्नतव्याः, अभिनवयौवनां करिकपोलपालीमिव मदलेखानां,... कुवलयमालाकोमलां कालिन्दीमिव कटाक्षकल्लोलकेलीनां, यथावदुपपन्नाङ्गां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगद्विजयविद्यासिद्धमिव प्रसूनवाणस्य, अद्भुतपारदारसायननिष्पत्तिमिव लावण्यस्य, विजयघोषणामिव रमणीयतायाः, काञ्चनमयीं सञ्चारिणी पाञ्चालिकामिव लीलायां मन्दारमञ्जरीं ददर्श" ।

कवि विश्वेश्वर ने सुबन्धु का अन्धानुकरण किया है अतएव उन्हीं के समान गौणी रीति का प्रयोग किया गया है लम्बे समासों की योजना, प्रसङ्ग तथा भावार्थ का ध्यान दिये विना शब्दों का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थों में प्रयोग, अस्वाभाविक अत्युक्तियाँ और उक्तियों का विशिष्ट भंगिमाओं में प्रयोग, कर्णकटु शब्दों का ध्यान दिये विना अप्राकृतिक योजना के साथ श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या अलङ्कारों का प्रयोग करके दूसरे अर्थों की अभिव्यक्ति करना आदि इस शैली की विशेषतायें हैं इनके कारण कलापक्ष का ही प्राधान्य हो पाता है भावपक्ष गौण हो जाता है। पण्डित जी के गद्य में इसी शैली के दर्शन सर्वत्र होते हैं । इन सबके बावजूद संक्षिप्त वाक्यों की न्यूनता मन्दार मञ्जरी में नहीं है प्रायः सरल वाक्यों का प्रयोग कवि ने यत्र तत्र किया है— जैसे कुमार शिक्षण वर्णन में बुद्धिनिधि के उपदेश के अवसर पर देखा जा सकता है :—

...दानवेभ्यइव मायां, ग्राहेभ्य इव निर्दयत्वं, भुजङ्गेभ्य इव जिह्मगामित्वं, शङ्खेभ्यइवान्तः कौटिल्यं शुक्तिभ्य इव पृष्ठतोऽनच्छत्वं, नदीभ्य इव नीचाभिमुखत्वम् स्वाश्रये प्रकटयति । किञ्चेयं तुषारवृष्टिर्बुद्धिकमलिनीनां, कुलविद्याकौटिल्यस्य, वसन्तवेला कामस्य, करिकुम्भस्थली मदाविर्भावस्य, विभावरी विवेकविवश्वतः, अमावस्या विनय सुधाकरस्य । ऐसे स्थलों पर कवि ने स्वाभाविकता का निर्वाह करने का पूर्ण प्रयास किया है ।

कवि को विरोधाभास तथा परिसंख्या अलङ्कार अधिक प्रिय हैं इनमें भी श्लेष का पुट अवश्य दे दिया है जैसे इससे सम्बन्धित दो एक उदाहरण नमूने के तौर पर देखे जा सकते हैं—महादोषोप्यदोषः, सदलीकोऽप्यनलीकः, सालङ्कारोप्यनुपमः, दुर्योधनोऽप्यजनितलक्ष्मणः, सलक्षणोऽपि विलक्षणः, मदनोऽप्यक्षत शरीरः, धनदोऽप्यकुवेरः, । इन उदाहरणों के अतिरिक्त कुछ बुद्धिव्यायाम वाले भी उदाहरण देखना आवश्यक हैः—"नयजितकुवलयोऽपि नयनजितकुवलयः, स्वजनप्रियोऽपि, निःस्वजनप्रियः, व्याज रहितोऽपि न व्याजरहित् यशोभी रुचिरोऽपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अयशोभी रुचिरः, नत्याहितोऽप्यनत्याहितः, नीतिकारकोऽप्यनीतिकारकः" । यह विरोधाभास राजा का वर्णन करते हुये कवि ने दिखलाया है । इन सभी का अर्थ बुद्धि आभास गम्य है जब तक कोश व्याकरण आदि का पूर्ण ज्ञान न हो तब तक ऐसे प्रयोगों की संगति लगाना असाध्य प्रतीत होता है इसी प्रकार के असंख्य प्रयोग कविकृत मन्दारमञ्जरी में देखे जा सकते हैं ।

परिसंख्या अलङ्कार का प्रयोग प्रायः किया गया है इस प्रयोग में कवि ने अपने शास्त्रीय ज्ञान का पूर्ण उपयोग किया । व्याकरण, न्याय, मीमांसा तथा बौद्धदर्शनादि के सिद्धान्तों का समावेश किया है, जिन्हें शासन-सौभाग्य-वर्णन में देखा जा सकता है । मालोपमा में कवि ने पौराणिक ज्ञान के साथ ऐतिहासिक वंशावली का भी परिचय कराया है । इस मन्दारमञ्जरी में एक विशेषता यह है कि कवि ने जिस भौगोलिक ज्ञान का परिचय दिया वह अन्यत्र दुर्लभ है यद्यपि पूर्णतया उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है फिर भी मान्यता अनेक आधार पर वर्णन स्पृहणीय है । सौन्दर्यचित्रण में भी कवि की दृष्टि तीक्ष्ण है उपमाओं का प्रयोग अनुकूल है जैसा कि मन्दारमञ्जरी के वर्णन अवसर पर कवि कहता है "श्रीगोरी द्वयीमिव गृहीतकेशवेशां, अहल्यामिव प्रसूत शतानन्दां, तारामिव ललिताङ्गदा, पञ्चालमिवानेकवरलभ्यां, मन्दोदरीमिव जनितेन्द्रजिदङ्गजां मैथिली-मिवाभिरामाम्" इन उपमाओं में सौन्दर्य तो माना जा सकता है परन्तु ये उपमायें शाब्दिक समानता के आधार पर ही दी गई हैं भावों का भी सामान्य आधार है । इसी प्रकार अनुप्रासादि भी सर्वत्र देखे जा सकते हैं ।

अन्त में मन्दारमञ्जरी के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि कवि की शास्त्रीय पक्षनिष्ठ गद्य रचना है जिसमें अलङ्कारों की प्रचुरता के साथ साथ शास्त्रीय उद्धरणों का बाहुल्य है जिस पर पाण्डित्य की पूर्णतया छाप है । वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, व्याकरण, दर्शन तथा काव्यशास्त्र आदि से अनभिज्ञ पाठक मन्दारमञ्जरी का आनन्द लेने में असमर्थ रहेगा । इसके शास्त्रीय उद्धरणों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है यह रचना केवल पण्डितवर्ग को ध्यान में रखकर की गई है, साधारण काव्य रसिक के लिये नहीं । इसके शास्त्रीय संकेत विस्तृत ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं । इतना सब होते हुये भी मन्दारमञ्जरी कवि की उदात्त तथा प्रौढ रचना है । गद्य काव्य के प्रख्यात समस्त गुणों से मण्डित यह रचना विशेष लोकप्रिय होने की योग्यता रखती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। कादम्बरी तथा वासवदत्ता से प्रभावित होने के कारण कवि ने सर्वत्र नवीनता लाने का सफल प्रयास किया है प्रकृति चित्रण आदि की न्यूनता नहीं है। सर्वतोभावेन यह कादम्बरी के समान शृङ्गारिक गद्यकाव्य है जिसकी महत्ता कादम्बरी तथा वासवदत्ता से कम नहीं। कादम्बरी के पश्चात् उसी श्रेणी की इसे अन्तिम रचना माना जा सकता है।

संस्कृत वाङ्मय का विशाल गद्य साहित्य प्रधान रूप से दो भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम भेद में कथा तथा द्वितीय भेद में आख्यायिका साहित्य आता है। इन द्विविध रूपों का वर्गीकरण संस्कृत साहित्य के आलोचनात्मक ग्रन्थों में किया गया है। सैद्धान्तिक रूप से दोनों के पार्थक्य तथा वैशिष्ट्य का प्रदर्शन आलङ्कारिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। सर्वप्रथम आचार्य भामह ने अपने काव्यालङ्कार ग्रन्थ में इन दोनों का भेद स्पष्ट किया है। इनके अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु वास्तविक होती है जिसे कवि स्वयं वक्ता रूप में प्रकट करता है यह उच्छ्वासों में विभक्त होती है इसके आदि और अन्त में भावी घटनाओं की सूचना वक्त्र या अपरवक्त्र छन्दों में दे दी जाती है अमरकोश के 'आख्यायिकोपलब्धार्था' उपलब्धो ज्ञातोऽर्थोयस्याः सा आख्यायिका इस वचन के अनुसार ऐतिहासिक इति वृत्ति पर आधारित रहती है।

कथा की विषय वस्तु कवि की निजी कल्पना होती है जैसा कि अमरकोश-कार के 'प्रबन्ध कल्पना कथा' इस कथन से ज्ञात होता है। कथा का वक्ता नायक या अन्य कोई भी हो सकता है इसमें उच्छ्वासों का वर्गीकरण तथा वक्त्र आदि छन्दों का अभाव रहता है तथा सूर्योदय, कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, चन्द्रोदय, तथा सन्ध्या प्रातः आदि का वर्णन रहता है। यही दोनों में संक्षिप्त अन्तर है। यह अन्तर रेखा इतनी सूक्ष्म है कि साधारण बुद्धिगम्य नहीं। अतएव दण्डी ने भेद आदि बताने के पश्चात् यह कह दिया कि—"तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा द्वयात्मिका। अत्रैवान्तर् भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यात जातयः"। आचार्य रुद्रट ने भी इसके भेद का वर्णन किया है परन्तु वह भी इसी प्रकार का है वामन ने इस पर कुछ निर्णय नहीं दिया, केवल नाम लेकर आगे बढ़ गये।

इस प्रकार आलङ्कारिकों के लक्षणों की मीमांसा कर यही निष्कर्ष निकलता है कि इससे सम्बन्धित कोई विशिष्ट लक्ष्य ग्रन्थ नहीं था अतएव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्त रूप से इनके भेदों को बताया गया। वस्तुतः बाणभट्ट की कृतियाँ हर्षचरित तथा कादम्बरी इस भेद के कारण हैं क्योंकि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित को "करोभ्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लावन चापलम्" के द्वारा आख्यायिका तथा "अतिद्वयी कथा" कहकर कादम्बरी को कथा संज्ञा से अभिहित किया। मुख्य अन्तर केवल इतना माना जा सकता है कि आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आधारित रहती है और कथा कवि के उर्वरमस्तिष्क की उपज होती है इसमें कल्पना का पूर्ण साम्राज्य अपने वैभव के साथ विराजमान रहता है। कथा में सरस वस्तु गद्य के द्वारा ही व्यक्त की जाती है जैसा कि कहा गया है—

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या तथा वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्त कीर्तनम्॥ सा० द० ६

इस लक्षण तथा उपर्युक्त विवेचन के आधार पर मन्दार-मञ्जरी कथा है क्योंकि कवि ने अपनी कल्पना से कथावस्तु की उद्भावना की है। इसमें सन्ध्या प्रातः विप्रलम्भ तथा कन्यकाहरण आदि का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही प्रारम्भिक श्लोकों में खलों के चरित्र का भी विश्लेषण किया गया है। यथा—

नैसर्गिकी खलस्य ब्रह्मण इव दुर्गमात्मनो माया।
जीव हृदयस्य पुनः साऽनुच्छेत्तव्या च तत्त्वधिया॥

दण्डी—गद्यकारों में महाकवि दण्डी का प्रमुख स्थान माना जाता है। इनकी शैली सरल तथा प्रसाद युक्त है। इसमें पञ्चतन्त्री गुण तथा कादम्बरीय गुणों का समावेश है इसी कारण दशकुमारचरित जहाँ कथा के प्रवाह एवं सरलता की दृष्टि से महत्त्व रखता है वहाँ काव्योचित सरलता में भी सुबन्धु बाणभट्ट से पीछे नहीं है। दण्डी वैदर्भी रीति के आचार्य हैं। समास शैली की न्यूनता तथा माधुर्य व्यञ्जक वर्णों का प्रयोग इनकी विशेषता है। इन्होंने समासों तथा अलङ्कारों के साथ शास्त्रीय उद्धरणों से काव्य को बोझिल नहीं बनाया है यह अपने छोटे वाक्यों में ही अतिशय प्रभावोत्पादकता रखते हैं। इनके समास भी दुरूह नहीं है इसी कारण अर्थ की स्पष्टता और अभिव्यक्ति की यथार्थता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनके काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है। दण्डी के काव्य में हास्य व्यंग्य का भी पुट संजोया हुआ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कथा का उचित सन्तुलन, श्लिष्ट हास्य व्यंग्य, यथार्थ और आदर्श का अद्भुत समन्वय तथा अकृत्रिम शैली आदि दण्डी के काव्य की विशेषतायें है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जब हम विश्वेश्वर के काव्य की परीक्षा करते हैं तो मन्दारमञ्जरी उसकी समानता नहीं कर पाती सम्भवतः आचार्य को उच्चकोटि का गद्यकार नहीं स्वीकार करते, इसीलिये इनका स्मरण सुबन्धु और दण्डी के साथ नहीं किया। जो लालित्य और प्रसादगुण की मधुरिमा दण्डी के काव्य में है वह विश्वेश्वर के काव्य में नहीं है इनके काव्य में दुरुहता तथा पाण्डित्य प्रदर्शन की बहुलता है दण्डी भावपक्ष के कवि हैं और यह कलापक्ष के पक्षधर हैं।

सुबन्धु – सुबन्धु गद्य-साहित्य में कलापक्ष के निर्माता कहे जा सकते हैं जिसका प्रभाव परवर्ती गद्य साहित्य पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इनका पूर्ण प्रभाव मन्दार-मञ्जरी पर पड़ा है यह भी सुबन्धु के समान श्लेष तथा पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं दोनों के काव्यों में शास्त्रीय उद्धरणों की भरमार है दोनों ने सम्भवतः अपने काव्य का निर्माण पण्डित वर्ग के लिये किया है साधारण काव्यरसिक के लिये नहीं। यद्यपि वृहत्समासों का प्रयोग विश्वेश्वर ने नहीं किया है फिर भी इसकी न्यूनता नहीं है बड़े एवं क्लिष्ट श्लिष्ट समस्त पदों का बाहुल्य है। वासवदत्ता के समान मन्दार-मञ्जरी की भी कथावस्तु दुर्बल है इन्होंने अपने काव्य में सरसता का निर्वाह पूर्णरूपेण नहीं किया है कृत्रिमता अधिक है।

बाणभट्ट—कवि विश्वेश्वर के आदर्श कवि यद्यपि सुबन्धु माने जा सकते हैं फिर भी इन्होंने बाणभट्ट का अनुकरण किया है। दोनों का कथानक समान है पुष्पपुर का वर्णन उज्जयिनी के समान है राजा राजशेखर तथा मलयवती का वर्णन तारापीड तथा विलासवती के वर्णन से सादृश्य रखता है। शुकनास के उपदेश के समान बुद्धि निधि का उपदेश माना जा सकता है, चन्द्रापीड की शिक्षण विधि के समान ही चित्रभानु की शिक्षण व्यवस्था का वर्णन कवि ने किया है। मदयन्ती की काम दशा का वर्णन महाश्वेता तथा मन्दार-मञ्जरी का वर्णन कादम्बरी के समान किया गया है : पद्मसर की समानता को ध्यान में रखकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विन्दुसार का वर्णन तथा जावालि के तपोवन के समान भृत्समद के तपोवन तथा ऋषियों का वर्णन है। इसी प्रकार अन्य वर्णनों में समानता है। कादम्बरी के समान यह भी पूर्वार्द्ध ही कवि प्रणीत है।

कथावस्तु की साम्यता के साथ-साथ कहीं-कहीं भावों की भी साम्यता मिलती है विरोधाभासों के प्रसङ्ग में वाणभट्ट की स्मृति मुखर हो उठती है जहाँ वाणभट्ट ने एक दो शास्त्रीय उदाहरण देकर शान्त हो जाते हैं वहीं पण्डित जी अनेक शास्त्रीय उदाहरणों की पंक्तियाँ उपस्थित कर देते हैं बाण के श्लेष जहाँ बुद्धिसाम्य हैं वहीं इनके श्लेष बुद्धि आयास प्रधान हैं। आचार्य विश्वेश्वर श्लेष विरोधाभास, परिसंख्या उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का आवश्यकता से अधिक तथा शास्त्रीय संकेतों का अनवसर प्रयोग करते हैं जिनके कारण उनका काव्य दुरुह बन गया है। जब कि वाणभट्ट के अलङ्कारों में स्वाभाविकता के रमणीय कल्पनाओं का अकृत्रिम सौन्दर्य है। आचार्य जहाँ भाव पक्ष को उपेक्षित सा बनाकर शब्द व्यूह की रचना करते हुये आगे बढ़ जाते हैं वहीं वाणभट्ट काव्योचित तरलता तथा रसिकता के साथ दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुये चलते हैं। इसी कारण वाण का गद्य मन पर स्थायी प्रभाव डालता है।

वस्तु वर्णन में भी भिन्नता देखी जा सकती है वर्णन में कवि की दृष्टि शब्दाडम्बर तथा पाण्डित्य प्रदर्शन की ओर अधिक रहती है यह उसके उपयुक्त कल्पनाओं का निर्माण करते हैं जिससे जटिलता आ जाने के कारण रमणीयता तिरोहित हो जाती है इसके विपरीत वाणभट्ट संश्लिष्ट वर्णन के पश्चात् कल्पना को मुखर करते हैं और अप्रसिद्ध तथा शास्त्रीय सन्दर्भों से बचने का प्रयास करते है। इस प्रकार पण्डित जी के काव्य में केवल कला पक्ष ही उभर कर आया है वाण में दोनों का प्राधान्य सम है। यद्यपि बाणभट्ट के समान ही इन्होंने भी अपने काव्य को सजाने एवं सँवारने का प्रयास किया है फिर भी पूर्णरूपेण सफलता नहीं मिल पायी है। इन सब दोषों के होते हुये भी विश्वेश्वर की मन्दार-मञ्जरी गद्यकाव्य सर्वोत्कृष्ट काव्य है और अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है। अन्त में इस गद्यकाव्य को विशेषता कवि के शब्दों में ही हम व्यक्त करते हैं—

विशकलितैः परकीयैः पदार्थजातैः स्वकाव्यविन्यस्तैः।
याचितकमण्डनैरिव न भवति शोभा विजातीया॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

मन्दारमञ्जरी

जयति जगज्जननादिकृद्‌शेषसत्त्वप्रतीत्यनुस्यूतम् ।
बाधावधानविधुरं किमपि ब्रह्म प्रतीचीनम् ॥१॥

'मन्दारमञ्जरी' नामक गद्य काव्य के रचयिता महाकवि श्रीविश्वेश्वर-पाण्डेय 'पर्वतीय' ग्रन्थारम्भ की निर्विघ्नसमाप्ति तथा सफलता की कामना से परमात्मा तथा अन्य देवों को नमस्कारपूर्वक काव्यप्रयोजनादि के द्योतक मङ्गल श्लोकों की रचना करते हैं।

कमलाव्याख्या—जगज्जननादिकृत्=जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को करने वाला, अशेषसत्त्वप्रतीत्यनुस्यूतम्=सम्पूर्ण प्राणियों की प्रतीति (प्रत्यक् अनुभूति) में जो विद्यमान है, बाधावधानविधुरम्=अनुभव के बाध अर्थात् विरुद्धता के अवधान=निश्चय से जो विधुर-रहित है। अर्थात् सर्वथा जो योगियों के अनुभवगम्य है। किमपि प्रतीचीनम्=वाणी और मन से अगोचर होते हुये प्रत्यम्-दृष्टिगम्य तथा प्रत्येक सत्त्व और पदार्थ में व्याप्त है, ऐसा वह ब्रह्म=परमात्मा, जयति=सर्वोत्कृष्ट है; सर्वोपरि होने से नमस्करणीय है। (संस्कृतटीकाकार पं० तारादत्त पन्त का मत है कि इस आर्या छन्दोयुक्त श्लोक में "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्, तदैक्षत, बहुस्यां प्रजायेय" (छा० उ० ६/२/२-३) इस श्रुति का अर्थ प्रदर्शित है।) ॥१॥

जयति स्वेदपृषत्सु प्रत्येकं प्रतिफलितभुवनकोषः ।
धूर्जटिरूर्जितनृत्त्यो ब्रह्माण्डानामिवोद्‌गिरन् काण्डान् ॥२॥

अब शिव की स्तुति करते हुये लिखते हैं। धूर्जटिरूर्जितनृत्यः=धूः अर्थात् भारभूत जटा, अथवा धुरि=मस्तकोपरि जटा यस्य=शिर के ऊपर जिसकी जटा है, ऐसे शिव के पराक्रमरूप ताण्डव नृत्य, जिसके 'स्वेदपृषत्सु प्रत्येकम्'=पसीने की प्रत्येक बूंद में, प्रतिफलितभुवनकोषः=विभिन्न लोक पृथक्-पृथक् प्रतिबिम्बित होकर अभिव्यक्त हो रहे हैं, और जो ब्रह्माण्डानाम्=नाना ब्रह्माण्डों, लोकों, ग्रह, नक्षत्रादि के, काण्डान्=समूहों को, उद्‌गिरन् इव=मानो मुख से बाहर निकाल रहा है, वह जयति=उत्कर्षता से विद्यमान है, अर्थात् नमस्करणीय है ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बृहदिन्द्रनीलगुलिकातुन्दिलमरविन्दसुन्दरं जयति ।
कुचकुम्भयुगं गौरीगणेशयोर्लब्धमधुकरच्छायम् ॥३॥

तृतीय श्लोक में पार्वती और गणेश की स्तुति, क्रमप्राप्त होने से करते हैं, जैसा कि कहा गया है—

उमासहायं परमेश्वरं गुरुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥

शिव की स्तुति पार्वती के सहित होती है और पार्वती की स्तुति उसके पुत्र गणेश के सहित होती है । अतः गौरीगणेशयोः=पार्वती और गणेश के, कुचकुम्भयुगम्=क्रमशः स्तनयुगल तथा गण्डयुगल (यहाँ पर द्वन्द्वगर्भतत्पुरुष समास है और "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणां पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते" इस नियम से युग शब्द कुच और कुम्भ शब्द से जुड़कर अर्थ देता है), जो कि बृहदिन्द्रनीलगुलिकातुन्दिलम्=बड़े इन्द्रनीलमणि की गोली के समान गोल-मटोल हैं, तथा अरविन्दसुन्दरम्=नील कमल की शोभा तुल्य हैं, और लब्धमधुकरच्छायम्=भ्रमर की छाया अर्थात् शोभा के समान शोभा जिन्होंने प्राप्त की हुई हैं, वे जयति=उत्कर्ष को प्राप्त हैं, अत एव नमस्करणीय हैं ।३॥

अङ्कगतं कमलाया जयति स्वपतः पदं परमपुंसः ।
रोमलतिकाकिसलयं नाभीकमलाकरैककोकनदम् ॥४॥

चतुर्थ श्लोक में विष्णु की स्तुति करते हुये लिखते हैं—स्वपतः=सोये हुये, परमपुंसः=परम पुरुष अर्थात् विष्णु के, कमलायाः अंकगतम्=लक्ष्मी के गोद में विद्यमान, रोमलतिकाकिसलयम्=रोमों वालों की पंक्ति रूपी पंखुड़ियों से समन्वित, नाभीकमलाकरैककोकनदम्=लक्ष्मी की ही नाभि रूप जो कमलों का भण्डार है, उसमें सुशोभित रक्तोत्पल के समान, पदम्=चरणयुगल, जयति=उत्कर्षतया अवस्थित हैं, अतः वन्दनीय है ॥४॥

रविमयनयनमयूखज्वलितस्फटिकाक्षपावकप्रभया ।
जयति सरस्वत्यखिलं वाङ्मयमुद्दीपयन्तीव ॥५॥

पञ्चम श्लोक में सरस्वती की वन्दना में कहा गया है—रविमय..... पावकप्रभया=सूर्यरूपनेत्र की किरणों से प्रकाशित स्फटिकाक्ष (सूर्यकान्तमणि) की अग्नि छवि से, अखिलम्=सम्पूर्ण, वाङ्मयम्=साहित्य को, उद्दीपयन्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इव=प्रकाशित करती हुई सी, सरस्वती=वाणी नामक देवी, जयति=उत्कृष्ट है, अतः उसकी वन्दना करता हूं—यह भाव है ॥५॥

आदिभवाय कवीनामनुपक्षीणप्रबोधविभवाय ।
प्राचेतसाय विहितः स्वचेतसाऽयं नमस्कारः ॥६॥

षष्ठ श्लोक में आदिकवि बाल्मीकि को प्रणाम करते हुये कहा गया है—कवीनाम्=कवियों के मध्य में, आदिभवाय=सबसे प्रथम हुये कवि, अनुपक्षीणप्रबोधाय=उत्तम एवं सुन्दर ज्ञान के कारण, जिनका प्रकृष्ट ज्ञान रूप ऐश्वर्य नष्ट नहीं हुआ है। ऐसे प्राचेतसाय=प्रचेता अर्थात् ब्रह्म के पुत्र बाल्मीकि के लिये, स्वचेतसा=स्वस्थ अर्थात् समाहित मन से, अयं नमस्कारः=यह सादर अभिवादन है ॥६॥

भारतनिर्माणेन व्यञ्जितनिजमुञ्जकेशिभावाय ।
पाराशर्याय नमो मुनये कुनयेन हीनाय ॥७॥

सप्तम श्लोक में भगवान् पराशरात्मज व्यास को प्रणाम करते हुये कहा गया है—भारतनिर्माणेन=(दुष्यन्त के पुत्र भरत के वंश में उत्पन्न क्षत्रियों का युद्ध भारत कहलाया। बड़ा भारी वह युद्ध होने से महाभारत कहलाया। उस महाभारत का वर्णन जिस ग्रन्थ में प्रथम बार लिखा गया, वह भी लक्षणा से महाभारत नाम से प्रसिद्ध हुआ।)[1] महाभारत ग्रन्थ के निर्माण से व्यञ्जितनिजमुञ्जकेशिभावाय=प्रकट कर दिया है अपना मुञ्ज के पुष्पों की तरह श्वेत केश होने का भाव (अर्थात् अतीव वृद्धत्व) जिसने, ऐसे पाराशर्याय=वसिष्ठ के प्रपौत्र बादरायण कृष्णद्वैपायन व्यास के लिये, जो कि कुनयेन हीनाय मुनये=कुत्सित नीति से रहित मुनि थे, उनके लिये नमः=सादर नमस्कार हो ॥७॥

नेत्रीकृताग्निमित्रा कुमारसूर्जनितमेघरघुभावा ।
कवितामिषेण काली वंश गता कालिदासस्य ॥८॥

---

१. नामैकदेशे नामग्रहणम् इस न्याय से भारत इस पूर्णनाम के एक अंश के कथन से पूर्णनाम महाभारत का ग्रहण हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टम श्लोक में महाकवि कालिदास की स्तुति करते हुये कहा गया है—नेत्रीकृताग्निमित्रा=अग्निमित्र को जिसमें नेता अर्थात् नायक बनाया गया है,[1] कुमारसूः=कुमारसम्भव नामक ग्रन्थ वाली, जनितमेघरघुभावा=उत्पन्न किया है मेघदूत और रघुवंश नामक काव्यों को जिसने, ऐसी काली=ईश्वरी काव्यशक्ति, कवितामिषेण=कविता के निमित्त से, कालिदासस्य=महाकवि कालिदास के वशं गता=अधीन हो गई। श्लेषालंकार द्वारा दूसरा अर्थ यह है कि काली अर्थात् पार्वती नेत्रीकृताग्निमित्रा जिसके अग्नि और मित्र (=सूर्य) नेत्र रूप हैं, कुमारसूः=कुमार अर्थात् कार्तिकेय को जन्म देने वाली है, और जनितमेघरघुभावा=कर लिया है मेघ में रघुभाव अर्थात् लघुत्व का भाव, (रलयोरेकत्वस्मरणात्) पार्वती की अपेक्षा कम कृष्ण होने से, जिसने ऐसी पार्वती कालिदासस्य=काली अर्थात् पार्वती के दास अर्थात् भक्त के वशम्=अधीन। गता=हो गई। इस प्रकार काली को भी अपनी भक्ति से वश में करने वाला महाकवि कालिदास स्तुत्य है ॥८॥

भवभूतेर्विच्छित्तिव्यभिचारमुचो गिरां गुम्फाः।
विधिनापि दुर्निवारं तेषां खलु भावभूतत्वम् ॥९॥

कालिदास की स्तुति के अनन्तर प्रसिद्ध नाटककार भवभूति की स्तुति करते हुये लिखते हैं:—भवभूतेः=महाकवि भवभूति के, विच्छित्तिव्यभिचारमुचः=चमत्कार से अविहीन, गिरां गुम्फाः=वाणी के सुन्दर विन्यास जिस प्रकार के हैं, तेषाम्=उनका, भावभूतत्वम्=भाव अर्थात् तात्पर्यार्थ का भूतत्व सत्यत्व, यथार्थत्व, विधिनापि=प्रजापति के द्वारा भी, खलु दुर्निवारम्=यत्न से भी अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार महाकवि भवभूति भी श्रेष्ठ और वन्दनीय हैं ॥९॥

यः शब्दराशिशेवधिरवभाति सुवंशलक्षणान्वयतः।
गुणमात्रग्राह्यरसः स सुबन्धुर्बन्धुरनिबन्धः ॥१०॥

भवभूति के पश्चात् प्रसिद्ध गद्यकार सुबन्धु की स्तुति करते हुये लिखते

---

१. अनेता नेता सम्पद्यमानः कृतः, इति नेत्रीकृतः। 'अभूततद्भावे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः' इति च्विप्रत्यये कृते: 'रीङ्ऋतः' (७/४/२७) इति नेतृशब्दस्य ऋकारस्य रीङादेशः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं—यः=जो (सुबन्धु कवि) सुवंशलक्षणान्वयतः=सुन्दर विद्ववंश में उत्पन्न होने से, शब्दराशिशेवधिः=व्याकरणशास्त्रादि सम्मत शब्दों के प्रयोग करने में कुशल होने से शब्दों के कोषस्वरूप हैं, और उससे अवभाति=सुशोभित होते हैं, तथा गुणमात्रग्राह्यरसः=केवल गुणों के कारण जिनके काव्य का रस ग्राह्य है, सः सुबन्धुः=वह सुबन्धु नामक कवि बन्धुरनिबन्धः=रमणीय निबन्ध (गद्य काव्य) के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं। अतएव स्तुत्य हैं ॥१०॥

परिशीलितैव सरसं कविराजैर्बहुभिरत्र वाग्देवी।
बाणेन तु वैजात्यात् कथयति नामैव वाणीति ॥११॥

सुबन्धु के पश्चात् बाण कवि की प्रशंसा में लिखते हैं—अत्र=इस संसार में, बहुभिः कविराजैः=अनेक श्रेष्ठ कवियों के द्वारा, सरसम्=समस्त काव्य-रसों के सहित, वाग्देवी=वाणी रूपी देवी अर्थात् सरस्वती, संस्कृतभाषा, परिशीलिता एव=प्रचुरतया सेवित और अभ्यस्त की है। तु=किन्तु, बाणेन=महाकवि बाणभट्ट ने तो, उसका परिशीलन ही नहीं किया, अपितु वाणी को इस प्रकार आत्मसात् किया कि, वैजात्यात्=विजातीयता अर्थात् स्त्रीत्वजाति से (वाणी शब्द से) पुंस्त्वजाति (बाण) को प्राप्त होने से, वाणी इति नाम एव कथयति=वाणी इस नाम को ही उसने अपना नाम (पुल्लिंग) प्रसिद्ध कर दिया ॥११॥

जयति यथाजातानां वाग्जातसुजातपारिजातश्रीः।
श्रीलक्ष्मीधरविबुधावतंसचरणाब्जरेणुकणः ॥१२॥

ब्रह्म से आरम्भ कर प्रमुख देवों तथा कविवरों की स्तुति करने के पश्चात् अपने गुरु तथा जनक श्री लक्ष्मीधर सूरि की स्तुति करते हुये लिखते हैं—यथाजातानाम्=बालकों की, (अज्ञे मूर्खयथाजातमूढवैधेयबालिशाः, इत्यादि अमरकोश के प्रमाण से यथाजात शब्द मूर्ख अर्थ का भी वाचक है और जातं जन्मकालमनतिक्रम्य वर्त्तते इति यथाजातम् (अव्ययीभाव समासः)' यथाजातं येषां ते यथाजाताः 'अर्श आदिभ्योऽच्' (पा० अष्टा० ५/२/१२७) से अच् प्रत्यय करने पर भी यथाजाताः शब्द निष्पन्न होता है।) वाग्जात-सुजात-पारिजातश्रीः=वाणी से उत्पन्न, सुन्दर रूप से उत्पन्न हुये और पारि-जात अर्थात् कल्पवृक्ष की जो शोभा है, उनके समान शोभा वाला जो, श्री-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मीधरविबुधावतंसचरणाब्जरेणुकणः=ग्रन्थकार के पिता तथा विद्या-गुरु विद्वानों के कुलभूषण श्री लक्ष्मीधर के चरण कमलों की जो धूलि है, वह जयति=श्रेष्ठ उत्कर्ष से युक्त है। अर्थात् वे मेरे लिये सदा श्रद्धातिशयेन वन्दनीय और स्मरणीय है ॥१२॥

नैसर्गिकी खलस्य ब्रह्मण इव दुर्गमात्मनो माया।
जीवहृदयस्य पुनः साऽनुच्छेत्तव्या च तत्त्वधिया ॥१३॥

इस विषय में यह प्रसिद्धि है कि जनपद अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम के निवासी, भारद्वाज गोत्रीय 'पाण्डेय' उपनामक पण्डितों में अग्रणी श्री लक्ष्मीधर सूरि ने वृद्धावस्था में सन्तान प्राप्ति हेतु विश्वेश्वर भगवान् की परम भक्ति से स्तुति की। तब एक बार स्वप्न में विश्वेश्वर ने उनसे कहा कि तुम्हारे भाग्य में सन्तान तो नहीं है, किन्तु मैं ही आज तुम्हारी भक्ति के वशीभूत होकर तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न होऊँगा। तब उसकी पत्नी गर्भवती हुई और उससे जो सन्तान उत्पन्न हुई, उसका नाम पिता लक्ष्मीधर ने विश्वेश्वर का प्रसाद मानकर विश्वेश्वर ही रख दिया। उसने फिर सम्पूर्ण शास्त्रों को अपने पिता से पढ़कर मन्दारमञ्जरी आदि अनेक संस्कृत गद्य-पद्य ग्रन्थों की रचना की ॥१३॥

आरोपितत्वनियमं सत्तायाः पिशुनसंसदि विलोक्य।
प्रतिपन्नमौपनिषदैर्नूनं भावान्तरेऽपि तथा ॥१४॥

अब ब्रह्म की माया और दुर्जन की माया का भेद दर्शाते हुये लिखते हैं—ब्रह्मण इव=ब्रह्म के समान, नैसर्गिकी=स्वाभाविक और दुर्गमा=कठिनाई से जानने योग्य, खलस्य=दुष्ट व्यक्ति की, आत्मनः=अपनी, माया=ब्रह्मपक्ष में अज्ञान और दुष्टपक्ष में छल-कपट हुआ करती है। किन्तु जीव के हृदय में विद्यमान, सा पुनः=यह माया अर्थात् अविद्या या अज्ञान, तत्त्वधिया=तत्त्वज्ञान, यथार्थ ज्ञान से नष्ट हो जाती है, परन्तु वही जीव छली है तो वह माया, अनुच्छेत्तव्या=नष्ट नहीं की जा सकती। अर्थात् दुर्जन जब तक अपनी दुर्जनता को नहीं छोड़ता तब तक वह सज्जन या मोक्ष गामी नहीं हो सकता, यह भाव है ॥१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तादात्म्येन जगत्स्वपि जनकास्तेषामुपादेयाः ।
सत्तास्फूर्त्यैकपदं ब्रह्मानन्दात्मका विबुधाः ॥१५॥

माया का निरूपण करने के पश्चात् सत्ता का निरूपण करते हुये लिखते हैं— पिशुनसंसदि=दूसरों की निन्दा करने में प्रवीण लोगों की गोष्ठी में, सत्तायाः=सत्ता का, अर्थात् सज्जनता का, आरोपितत्वनियमम्=झूठा आरोप करने की रीति को, विलोक्य=देखकर, नूनम्=निश्चय ही, औपनिषदैः= उपनिषदों को प्रमाण मानने वाले (वेदान्तियों) के द्वारा, भावान्तरेऽपि:= अन्य पदार्थों (ब्रह्म से भिन्न) में भी तथा, उसी प्रकार का सत्ता का प्रातिभासिक आरोप, प्रतिपन्नम्=स्वीकृत किया गया ॥ (इस कथन से ग्रन्थकार का शांकरमतानुयायित्व प्रकट होता है ।) ॥१५॥

मिथ्याभावविहीना वहन्त्यनिर्वाच्यतामनिशम् ।
अज्ञानानुपधेया महाकवीनां जयति सृष्टिः ॥१६॥

अब वेदान्तियों के मत से कार्यकारण भाव का तादात्म्य सम्बन्ध दर्शाते हुये लिखते हैं— ब्रह्मानन्दात्मका विबुधाः=हे ब्रह्म के आनन्द (अथवा परमानन्द) के स्वभाव वाले, अथवा उसकी प्राप्ति में मन या बुद्धि रखने वाले विद्वानो ! सत्तास्फूर्त्या=वस्तु की सत्ता, अथवा 'मैं हूं'—इस प्रकार की सत्ता के स्वयमेव स्फुरण होने से, एकपदम्=तत्काल में ही, तेषाम्=उन पिशुनों के, जनकाः अपि=उत्पादक लोग भी, जगत्सु=संसार में, तादात्म्येन= तदात्मक रूप से ही, पिशुन रूप में ही, उपादेयाः=ग्रहण करने योग्य हैं। क्योंकि कार्यकारण गुणपूर्वक होता है, यह एक प्रसिद्ध नियम है ॥१६॥

न निरूपयितुं शक्यः केवलमध्याससम्बद्धः ।
शुद्धं सच्चैतन्यं खलप्रपञ्चो न मलिनयति ॥१७॥

तदनन्तर प्रपञ्च के अज्ञानजन्य होने से मिथ्या भाव को प्रदर्शित करते हुये महाकवियों की रचनाओं की प्रशस्ति में लिखते हैं— महाकवीनाम्=बड़े कवियों की, सृष्टिः=रचनायें अथवा कृतियाँ, अनिशम्=सदा, अनिर्वाच्यताम् =अवर्णनीयता को, वहन्ती=धारण करती हुई (भी), मिथ्याभावविहीना= असत्यता से रहित अर्थात् सत्य-यथार्थ होती हैं, कहा भी गया है—'भवन्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नोद्दामगिरां कवीनामुच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः ।' ब्रह्म की सृष्टि, अनिर्वचनीय माया से रचित होने से, अनिर्वाच्य कही जाती है और मिथ्याभाव सहित होती है क्योंकि वेदान्तियों के मत से जगत् मिथ्या माना जाता है। परन्तु कवियों की सृष्टि में अनिर्वाच्यत्व तथा मिथ्यात्व का दोष नहीं है—यह भाव है, अज्ञानानुपधेया=अज्ञान अर्थात् अबोध माया से उपधेय आरम्भणीय ब्रह्म की सृष्टि है, किन्तु कवियों की सृष्टि तो अज्ञान से उपधेय नहीं है, प्रत्युत ज्ञानपूर्वक ही आरम्भ होती है। इसलिये ऐसी कवि रचना, जयति=ब्रह्म सृष्टि से भी बढ़कर है। इस प्रकार ब्रह्म सृष्टि से महाकवि सृष्टि को बढ़कर बताकर ग्रन्थकार ने इस श्लोक में व्यतिरेकालकार का प्रयोग किया है ॥१७॥

विषमदृशो विबुधानां यातु चिदिष्टावनुपयुक्तम् ।
कुकवय उग्रनिसर्गा दुर्वर्णमुदीरयन्त्यपि रुदित्वा ॥१८॥

प्रपञ्च के मिथ्यात्व, इत्यादि को वर्णित करने के अनन्तर यह प्रतिपादित करते हैं कि नित्य-शुद्ध-बुद्ध-चैतन्य ब्रह्म को मायामय संसार अथवा दुष्ट व्यक्ति भी दूषित नहीं कर सकता। जो, निरूपयितुं न शक्यः=वर्णित नहीं किया जा सकता, और, केवलमध्याससम्बद्धः=केवल अध्यास (किसी पदार्थ में उससे भिन्न पदार्थ की प्रतीति होना, जैसे कि अंधेरे में, रस्सी में साँप की प्रतीति होना अध्यास है।) से सम्बन्धित है, ऐसी खलप्रपञ्चः=दुष्ट की माया (छल-कपट) अथवा, दुर्जन के समान माया से उत्पन्न संसार, शुद्धं सत् चैतन्यम्=शुद्ध, सत्य चेतनतत्त्व, को, न मलिनयति=मलिन अर्थात् दूषित नहीं कर सकता। पक्षान्तर में, खल प्रपञ्चः=दुष्ट की प्रवृत्ति, शुद्धम्=शब्दार्थ दोनों दृष्टियों से शुद्ध, सत्=कर्त्तव्य की प्रवृत्ति से सहित, और अकर्त्तव्य की निवृत्ति से युक्त, चैतन्यम्=चेतन आत्मा को आनन्द रसानुभूति प्रदान करने वाले काव्य को, न मलिनयति=दूषित नहीं कर सकती ॥ (यहाँ पर शुद्ध चैतन्यात्मक ब्रह्म का शुद्ध रसात्मक सत्काव्य में प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्तालंकार है।)।

अब महाकवियों की प्रशस्ति करने के पश्चात् कुकवियों को उग्रश्लेष के द्वारा वर्णित करते हैं—उग्रनिसर्गाः=उग्र=शिव के समान है निसर्ग=स्वभाव जिनका, अथवा उग्र=कठोर स्वभाव वाले जो हैं (बहुव्रीहि), और उसी कारण जो विषमदृशः=विषम दृष्टि वाले हैं; (शिवपक्ष में विषम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् तीन नेत्र वाले जो हैं, और कुकविपक्ष में दोषों को देखने वाली दृष्टि जिनकी है), कुकवयः=कुत्सित तुच्छ कवि, विबुधानाम्=देवों और विशिष्ट विद्वानों की, चिदिष्टौ—देवयाग में अथवा बुद्धिगत विचारों के संगतिकरण रूप कवितायज्ञ में, अनुपयुक्तम्=उपयोग केअयोग्य, यातु=यज्ञ पक्ष में रजत (चाँदी) और कविता पक्ष में कविता के सौन्दर्य से बहिर्गत नीरस वर्ण और अक्षर को, जो कि दुर्वर्णम्=अश्रेष्ठ वर्ण वाले (यज्ञ में वर्जित होने से), अथवा दुष्ट या नीरस वर्ण को, रुदित्वा अपि=रोकर के भी, उदीरयन्ति=पृथक् कर देते हैं, कुकवि लोग उस नीरस वर्ण का ही उच्चारण करते हैं। इस श्लोक में एक ओर रुद्र 'यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इत्यादि श्रुति से रोदन स्वभाव वाले रुद्र (या रुद्रों का वर्णन है, जिसके (या जिनके) विषय में यह कथा है कि रोने में उसकी (या उनकी) आँखों से जो आँसू भूमि पर गिरे वे ही चाँदी की खान बन गये, चाँदी को यज्ञीय दक्षिणा में वर्जित होने से अनुपयुक्त कहा गया है, इसी प्रकार यातु अर्थात् यातुधान राक्षस भी हिंसक वृत्तिक होने से यज्ञ में अनुपयुक्त होता है। कुकवि पक्ष में स्पष्ट है कि वे उग्र स्वभाव वाले तथा दुर्दृष्टियुक्त होने से रोने के प्रसंग (अर्थात् करुण रस के प्रसंग) में भी सत्काव्य के लिये अनुपयुक्त दुष्ट नीरस वर्णों का उच्चारण या प्रयोग करते हैं) ॥१८॥

विशकलितैः परकीयैः पदार्थजातैः स्वकाव्यविन्यस्तैः ।
याचितकमण्डनैरिव न भवति शोभा विजातीया ॥१९॥

काव्य शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से दूसरे की छाया से रहित और विलक्षण शोभा युक्त होता है, इस बात को प्रतिपादित करते हुये लिखते हैं—विशकलितैः=विशेष रूप से खण्डित किये गये अर्थात् दूसरों के काव्य से अपहृत किये गये, याचितकमण्डनैः इव=माँगे गये हों मानो जो आभूषण, उनके समान, परकीयैः=दूसरों के, पदार्थजातैः=शब्दों और अर्थों अथवा उनके ही प्रकारों से, जो कि स्वकाव्यविन्यस्तैः=अपने द्वारा रचे गये काव्यों में अपनाकर प्रस्तुत किये गये हों, उनसे ऐसे निज काव्य की, विजातीया=विशेष प्रकार की अथवा विशिष्ट भेद को दर्शाने वाली, शोभा न भवति=शोभा नहीं हुआ करती है। (तात्पर्य यह है कि जो लोग दूसरों के सद्ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्द और अर्थों से ही अपने काव्य को निर्मित करने या सजाने में लगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहते हैं, और अपनी निज प्रतिभा से रहित होते हैं, उनके काव्य में कोई सौन्दर्य नहीं हुआ करता। अतः यह मन्दारमञ्जरी काव्य इस दोष से रहित है। ऐसा विद्वान् लोग समझें—यह आश्रय है) ॥१९॥

खलहृदयदर्पणतले मालिन्यं जायते विजातीयम्।
गुणसंक्रमणविरुद्धं दोषोद्ग्राहानुकूलं च ॥२०॥

पुनः दुष्ट के हृदय रूपी दर्पणतल के सदोष होने की बात को कहते हैं—खलहृदयदर्पणतले=दुर्जन के हृदय रूपी दर्पण के तल में, विजातीयम्=विरुद्ध प्रकार की, मालिन्यम्=मलिनता, जायते=उत्पन्न होती है। जैसे कि सामान्य दर्पण का तला जब धूल आदि से मलिन हो जाता है और वस्तु के प्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण कर पाता उसी प्रकार वह दुष्ट हृदय रूपी दर्पण, गुणसंक्रमण-विरुद्धम्=गुणों के सक्रमण अर्थात् प्रतिबिम्बन अथवा स्फुरण के विरुद्ध होता है, च=और, दोषोद्ग्राहकानुकूलम्=दोषों, झूठे आक्षेपों को उठाने की क्षमता वाला होता है। यहाँ वस्तुतः दर्पणतल की मलिनता तथा दुर्जन के हृदय की मलिनता की तुलना करते हुये यह दर्शाया गया है कि दर्पण तो मलिन होने पर किसी प्रकार के प्रतिबिम्ब को नहीं ग्रहण पाता, परन्तु दुष्ट का हृदय गुणों को तो बिल्कुल नहीं किन्तु दोषों को अवश्य उद्भावित करने की योग्यता रखता है। यही इन दो प्रकार के दर्पणों की विलक्षणता या भिन्नता है ॥२०॥

काव्यमयी विबुधानामन्तःकरणस्य वृत्तिरमलेयम्।
अर्थश्चैतन्यमपि प्रतिफलति यथार्थतो यत्र ॥२१॥

सत्काव्य रचने वालों की चित्तवृत्ति निर्मल होती है—इस बात को दर्शाते हुये कहते हैं—विबुधानाम्=विशिष्ट कविहृदययुक्त विद्वानों की, अन्तःकरणस्य=मन की, चित्तवृत्तिः=प्रवृत्ति, मननाध्यवसाय रूप व्यापार, इयम्=यह, अमला=दोष रहित स्वच्छ होती है, यत्र=जिसमें, अर्थः=इतिवृत्त और पदार्थ, अपि=तथा, चैतन्यम्=चेतन आत्मा की प्रतीति अनुभव, यथार्थतः=तात्त्विक रूप से, प्रतिफलति=प्रकट होती है॥ इस कथन द्वारा कवि का स्वकाव्यनिर्माणवैदग्ध्य तथा रचयिष्यमाण काव्य की मौलिकता तथा सर्वगुणसम्पन्नता का प्राक् संकेत मिलता है ॥२१॥

—:०:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्वर्णनम्

अस्ति भगवतोऽनेकज्वलननिर्दग्धमहान्धकारकान्तारस्य, त्रिभुवनभुवनान्तरकप्रदीपस्य, समस्तचेतनचैतन्यागमनिदानस्य, श्रौतस्मार्त्ताशेषक्रियाविशेषप्रवृत्तिजनकस्य, भास्वतोऽभ्युदय-भूमिः, भागीरथीप्रवाहमयबालव्यजनवीज्यमाना, राकार-जनिकरमण्डलसितातपत्रचिह्निता, सर्वासां दिशामाधिपत्य-मिवानुभवन्ती, ईश्वरीव स्वाभिमुखानां, सर्वकर्मफलप्रदायिनी, तपस्विनीव स्थितैकपदा, हरिमूर्तिरिव वाजिमुखान्विता, सेनेव वर्द्धमानसूर्पकर्णोपेता, कैलासभूमिरिव वृषभध्वजाश्रिता, लङ्केव पुरुषादपूर्णोत्कटा, पलाशकुसुमसम्पदिव सलौहित्या, हरलीलेव किराताश्रिता, रात्रिरिवप्राग्ज्योतिषोल्लसिता, मुमुक्षुरिवाश्रितकाशिः, नर्मदेव मेकलाश्रिता, युवतिदृगिव साञ्जना, नृसिंहतनुरिव व्याघ्रमुखाधिगता, सीतेव मिथिलोत्पत्तिभूः अमरावतीव पुरन्दराधिष्ठिता, प्राची दिक ॥१॥

अनुवाद—अत्यधिक अग्निस्वरूप किरणों के द्वारा महद् अन्धकाररूपी अरण्य को दग्ध कर देने वाले, तीनों लोकरूपी भवनों के मध्य एकमात्र प्रकाश-शाली दीपक के समान, समस्त चेतन प्राणियों को चेतनता प्रदान करने वाले, वेद तथा स्मृति विहित सम्पूर्ण कार्यों के भेदों को प्रवृत्त कराने वाले, भगवान् सूर्य की उदयभूमि (प्राची दिशा है) गङ्गा प्रवाहरूप बाल व्यञ्जन द्वारा सेवित, पूर्णमासी के चन्द्रमण्डल श्वेत छत्र से चिह्नित, सभी दिशाओं के स्वामिनीत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अनुभव करती हुई, अपनी ओर अभिमुख लोगों को समस्त कर्मफल प्रदान करने वाली हैमवती (काली देवी) के समान पूर्वदिशा की ओर मुख करके सभी अनुष्ठेय कर्मों को सम्पादित कराने वाली, एक ही पैर पर स्थित रहने वाली तपस्विनी के समान एकपद नाम वाले देश में स्थित, हयग्रीव रूप में अवतरित भगवान् विष्णु की मूर्ति के समान, वाजिमुख नामक देश से युक्त, सूर्य के समान बढ़े हुये कानों वाले हाथियों की सेना के समान, बर्दवान और सूपकर नामक देशों से युक्त, वृषभ की ध्वजा वाले शंकर से आश्रित कैलास भूमि के समान, वृषभध्वज नाम वाले देश अथवा शिवलिङ्ग से विभूषित, पुरुषों का भक्षण करने वाले राक्षसों से भरी हुई, लालिमा से पलाश नामक फूलों की शोभा से युक्त, लोहिनी नदी से सुशोभित, भीलों के द्वारा आश्रयण की गई शिवलीला के समान, नीम के वृक्षों अथवा कुनैन को उत्पन्न करने वाले वृक्षों से पूर्ण, सर्वप्रथम प्रकाश के द्वारा विलास को दूर करने वाली रात्रि के समान, कामरूप देश से सुशोभित, कर्मबन्धन से मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों द्वारा आश्रित काशी के समान, काशी नगरी का आश्रायण करने वाली, मेकल पर्वत (अमरकण्टक) का आश्रय लेने वाली नर्मदा के समान, अमरकण्टक पर्वताश्रित, युवतियों के काजल लगे हुये नेत्रों के समान, अङ्गार पर्वत से अलंकृत, व्याघ्रमुख वाली नृसिंह की मूर्ति के समान, व्याघ्रमुख नाम वाले देश से युक्त, मिथिला है जन्मभूमि जिसकी ऐसी सीता के समान, जनक आदि क्षत्रियों का उत्पत्ति स्थान, इन्द्र से अधिष्ठित अमरावती के समान पूर्व दिशा है ॥१॥

टिप्पणी - उक्त सम्पूर्ण पदच्छेद का मुख्य वाक्य "भगवतो भास्वतोऽभ्युदयभूमिः प्राची दिक् अस्ति" है। जिसमें भास्वतः पूर्ववर्त्ती पद सूर्य के विशेषण हैं तथा इसके अनन्तर के शेष स्त्री प्रत्ययान्त शब्द प्राची दिशा के विशेषण हैं। अनेकेति—अनेक च ते कराः त एव ज्वलनाः तैः निश्शेष दग्धः, महाश्चासौऽन्धकारः एव कान्तारः येन सः तस्य। यहाँ किरणों पर ज्वलन अग्नि का आरोप किया गया है "ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्" इति। अन्धकार की गहनता प्रकट करने के लिये उस पर कान्तार का आरोप किया गया है। समस्तेति—समस्ताः ये चेतनाः तेषां यत् चैतन्य तस्य यदागमः प्राप्तिः तस्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निदानस्य। रात्रि के स्वभाव के कारण उत्पन्न निद्रा का सूर्योदय होने पर विनाश हो जाता है यही चैतन्यागम का अभिप्राय है। श्रुतियों में भी सूर्य को चेनता प्रदान करने वाला बताया गया है "सूर्यः आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"। आगमः—आप्तिः, निदानं—कारणम्। श्रौतस्मार्तेतिः—श्रौताः स्मार्ताः क्रियाणां ये भेदाः तेषां या प्रवृत्तिः तस्याः जनकस्य। वेदोक्त अग्निहोत्रादि तथा स्मृत्युक्त चान्द्रायणव्रत तथा सन्ध्योपासनादि जितनी भी क्रियायें हैं वे सभी सूर्योदय होने पर होती हैं अतएव सूर्य को इन सभी क्रियाओं का प्रवर्तक कहा जाता है। भास्वतः—भूयसी प्रशस्ता नित्या अतिशायिनी वा भाः कान्तिः यस्य सः भास्वान् तस्य भास्वतः। भागीरथीति—भागीरथ्याः प्रवाहमयं यत् व लव्यजनं तेन वीज्यमाना (विशेषेण इज्यमाना सेव्यमाना इत्यर्थः। पर्वदिशा में गङ्गा की धारा वक्रगति से प्रवाहित है अतएव उस पर बाल व्यजन का आरोप किया गया है। राकेति—राकायाः यः राजनिकरः तस्य मण्डलमेव सितमातपत्रं तेन चिह्निता सम्पूर्णेन्दुमण्डलरूपश्वेतच्छत्रवतीत्यर्थः। ईश्वरीव—जिस प्रकार भगवती काली देवी अपनी ओर आकर्षित भक्त की समस्त कामनायें पूर्ण करती हैं उसी प्रकार पूर्वाभिमुख होकर सभी श्रौत स्मार्त क्रियाकलाप सम्पन्न होते हैं। "काली हैमवतीश्वरी" इति। 'तपस्विनीव से लेकर आश्रितकाशिः' तक पूर्व दिशा में स्थित भिन्न देशों का वर्णन किया गया है जो उपमान के रूप में प्रयुक्त हुये हैं। वाजिमुखेति—वाजः अश्वः तस्य मुखेन अन्विता हरिमूर्तिरिव। वाजिमुख का प्रयोग हयग्रीवावतार तथा वाजिमुख नामक देश के लिये किया गया है। वर्द्धमानेति—वर्द्धमानाः सूर्य इव कर्णाः येषां ते तैः उपेता। वर्द्धमान पद का प्रयोग वर्दवान देश के लिये भी हुआ है। साथ ही वृद्धि प्राप्नुवन्तः के आधार पर वृद्धि को प्राप्त करने वाले प्रौढ़ हाथियों से अभिप्राय है क्योंकि वृद्ध और अर्भकों का प्रयोग सेना में नहीं किया जाता। कैलासेति—वृषभः ध्वजः चिह्नं यस्य तेन आश्रिता अथवा वृषभध्वजनामा देशः आश्रितः यस्याम् सा। लङ्केव—पुरुषान् अदन्ति ते पुरुषादः तैः पूर्णा अतएव उत्कटा उग्रा। पुरुषाद नाम्ना देशेन पूर्णा उद-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भवन्ति कटाः यस्यां सा । कटकर्म में वेतस् युस्ता तथा सम्भवतः वांस आदि का ग्रहण होता है कुसुमा व्याख्याकार ने पूर्व दिशा में वेतस् की अत्यधिक उत्पत्ति बतलाई है । आपका कथन है कि प्राची दिशा में जहाँ का वर्णन कवि कर रहा है वहाँ वेतस् लतायें अधिक मात्रा में उत्पन्न होती हैं और यही वेत वहाँ के निवासियों की जीविका के प्रमुख साधन हैं जैसा कि कालिदास ने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघुदिग्विजय वर्णन के अवसर पर कहा है कि "आत्मासंरक्षित सुह्यं वृत्तिमास्थाय वैतसीम् ॥४।३५॥ परन्तु यहाँ पर संयोगवश अर्थ लगाया गया है वस्तुतः प्रसंगवश उक्त स्थल पर मल्लिनाथ ने वेंतसीम् का अर्थ प्रणीतिम् किया है अर्थात् नदी वेग के कारण नम्र हुये वेंत झुककर जैसे अपनी रक्षा करते हैं उसी प्रकार सुह्य देशवासियों ने रघु के समक्ष झुककर अपने जीवन की रक्षा की । मेरे विचार से यदि यहाँ कट का अर्थ बांस कर लिया जाय तो भी कोई अर्थहानि नहीं क्योंकि कोशानुसार कट वांस को भी कहते है "कट किलिञ्जकौ" । इसके अतिरिक्त उत्कट का अर्थ मदयुक्त हाथियों से भी लिया जा सकता है । किरातेति—किरातैः आश्रिता अवलम्बिता हरस्यलीला इव किरातैः भिल्लैः परिपूर्णा । पूर्व देश में आज भी भीलों की जातियाँ पाई जाती हैं । इसके अतिरिक्त किरात का अर्थ नीम अथवा चिरायता भी होता है "किराततिक्तोभूनिम्ब" सम्भवतः अतिकटु होने के कारण चिरायता को ही कुनैन कहते हों । प्राग्ज्योतिषोल्लसिता—प्राचः ज्योतिः प्राग्ज्योतिः तेन उन्मूलितं विलासः लसितं यस्या सा । अभिप्राय यह है कि पूर्वदिशा में सर्व प्रथम प्रकाश होता है और उसके द्वारा रात्रि विलास का अन्त हो जाता है । प्राग्ज्योतिष कामरूप देश को भी कहते हैं प्राग्ज्योतिषेण देशेन उल्लसिता शोभिता इत्यर्थः । मेकल पर्वत से उत्पन्न होने के कारण नर्मदा को मेकलसुता भी कहा जाता है यह पूर्वदिशा में स्थित है । साञ्जना—प्रङ्गार पर्वतेन सहिता ।। उक्त पदच्छेद में प्राची दिशा के ईश्वरी आदि से लेकर पन्द्रह उपमान बताये गये हैं जिसमें साधर्म्यवाचक पद तथा साधारण धर्म बताये गये हैं अतः पूर्णोपमा अलङ्कार है श्लेष भी स्पष्ट होता है ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नगर वर्णनम्

तस्यां च मगधेषु चार्वाकमतमिवाद्वितीयं प्रमाणं, पुष्करद्वीपमिव स्वादूदकमध्यगतं, रिपुपुरमिव विशालं, साहित्यशास्त्रमिव बहुविधिध्वनि-विचारसहितम्, अरण्यमिवाष्टापदशालान्वित, पुण्डरीकाक्षवक्षस्तटमिव लक्ष्मीनिवासस्थानं, ज्योतिस्तन्त्रेणेव सविष्कम्भेन, यमुनाह्रदेनेव वलभी-व्याकुलेन, सज्जनमनसेव महोन्नतेन, साक्षादकारणेनेव द्वारभाजा, कामुं-केणेव धृतोत्तमाङ्गेन, केनचिद् बुधवाक्यनेव सुवर्णघटितेन, केनापि वह्निविशेषेणेव ससूर्यकान्तेन, अन्येनाङ्गदेनेव तारोत्पन्नेन, अपरेण चयन-स्थलेनेवेष्टकामयेन, परेणासन्निकृष्टेनेव वैदूर्यसमवायिना, इतरेण प्रातः-कालेनेव पद्मरागमयेन, केनचन वीरेणेवोल्लसितमारकतेन, गृहगणेन राजमानं—कुशद्वीपेनेव विद्रुमोच्चयवता, हरेणेव शङ्खमालायुता, नभसेव चन्द्रयुजा, ब्रह्मलोकेनेव मुक्तावलिभृता, राशिगणेनेव सतुलेन, शब्दशास्त्रे-णेव सम्पन्नबहुव्रीहिणा, पार्थिवद्रव्येणेव विजातीयगन्धवता, अग्न्याधान-समुद्यतेनेव घृतक्षौमेण, नीललोहितललाटेनेव ज्वलदग्निशिखेन, वानरबले-नेव श्रेष्ठचन्दनेन रागिणेवातिवेलस्नेहेन, दुर्जनेनेवातिलघुना यमुनाह्रदेनेव संभृतकालीयकेन, राज्ञेव सन्ततचामरेण वैद्यकेनेवानेकभेषजशालिना, जलधिनेव लोकावलिकल्लोलकृतकोलाहलेन, आपणपथेन भूषितं—द्व्य-णुकमिव नित्यपार्थिवसमवेतं, प्रमेयत्वमिवासम्भवद्विपक्षबाधं, जीवन्मुक्त-हृदयमिव संसरणसंकटरहितं ज्ञानमिव नित्यविषयसंसर्गि, जलमिव सर्वतोमुखम्, विष्णुपदमिव व्याप्तभूतल—पुष्पपुर नाम नगरमासीत् ॥२॥

अनुवाद—उस प्राची दिशा में स्थित मगध देश में अद्वितीय (प्रत्यक्ष) प्रमाण को मानने वाले चार्वाक के समान अद्वितीय विस्तार वाला, स्वादूदक सिन्धु के मध्य में स्थित पुष्कर द्वीप के समान मधुर जल से परिपूर्ण, नष्ट हुये भवनों वाले शत्रुनगर के समान अतिशय विस्तीर्ण अथवा विशिष्ट शालाओं से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलङ्कृत, अनेक प्रकार के ध्वनिभेदों की चर्चा करने वाले साहित्यशास्त्र के समान अनेक प्रकार की ध्वनि करने वाले पक्षियों के विचरण से मण्डित, शरभ-मृग और शाल वृक्षों के समूहों से युक्त अरण्य के समान सुवर्ण से अलङ्कृत महलों वाला, लक्ष्मी के निवास स्थान विष्णु के वक्षस्थल के समान धनधान्य से परिपूर्ण, विष्कम्भ सहित ज्योतिष् शास्त्र के समान सुदृढ़ अर्गला अथवा कपाटों वाले, बलराम के भय से व्याकुल यमुनाकुण्ड के समान वलभियों अर्थात् कपोत पालिकाओं वाले, अत्यन्त उन्नत एवं विनीत सज्जन मन के समान अत्यन्त ऊँचे प्रासादों वाले, द्वारभाक् (अर्थात् परम्परया) वाले साक्षात् अकारण के समान द्वारपालों वाले, उत्तमाङ्ग को धारण किया गया है जिसके द्वारा ऐसे धनुष के समान उत्तमाङ्ग अर्थात् तोरणों को धारण करने वाले, सरस एवं सुन्दर वर्णों से रचित, किसी विद्वान् के वाक्य के समान सुन्दर वर्णों अर्थात् रंगों से रचे हुए, सूर्यकान्त मणि सहित किसी विशेष अग्नि के समान सूर्यकान्त मणियों से प्रकाशमान्, वालिपत्नी तारा से उत्पन्न हुये अन्य अङ्गद के तारा अर्थात् चाँदी से बने हुये (अथवा चाँदी के समान चमकने वाली सफेदी से पुता हुआ), ईंटों से बने हुये दूसरे चयन स्थल के समान ईंटों से निर्मित अथवा अभिलषित भक्ष्य भोज्य भोग्य आदि पदार्थों से परिपूर्ण; वैदूर्य मणि को उत्पन्न करने वाले निकटस्थ विदूर पर्वत के समान वैदूर्य मणियों के समूहों वाले, कमलों की लालिमा से रञ्जित दूसरे प्रातःकाल के समान पद्मराग मणियों से परिपूर्ण, शत्रु-संहार करने वाले अद्भुत पराक्रमी किसी अद्वितीय वीर के समान मरकत मणियों से सुशोभित गृह समूहों से शोभायमान्, मूंगों के उत्पत्ति स्थान कुशद्वीप के समान मूंगों के समूह अर्थात् राशियों से भरे हुये, शंख रूपी नरकपाल की माला को धारण करने वाले भगवान् आशुतोष 'शिव के समान शंखराशियों से व्याप्त, चन्द्रमा से आकाश के समान कर्पूर समूहों से भरे हुये कर्मबन्धन रहित मुक्त आत्माओं की पंक्तियों को धारण करने वाले ब्रह्मलोक के समान मोतियों की पंक्तियों से अलङ्कृत (विक्रय के लिये लाई गई मोतियों से पूर्ण) तुला राशि से युक्त द्वादश राशि समूह के समान तराजुओं से युक्त अर्थात् तौलने के लिये रखी हुई तराजुओं वाले, बहुव्रीहि समास से युक्त शब्दशास्त्र (व्याकरण शास्त्र) के समान बहुव्रीहि अर्थात् अत्यधिक धान्य आदि से सम्पन्न, विजातीय गन्ध वाले पार्थिव द्रव्यों के समान, अनेक प्रकार के गन्धों अथवा गन्धक नामक पदार्थ से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्त क्षौमवस्त्र अर्थात् रेशमी वस्त्र को धारण किये हुये, अग्निहोत्र करने के लिये उद्यत विप्र के समान रेशमी वस्त्रों से भरे हुये, जलती हुई अग्नि की लपटों वाले शङ्कर के ललाट तट के समान अथवा कलियारी (वर्रे) नामक औषधियों से भरे हुये, चन्दन नाम वाले श्रेष्ठ सेनापति से युक्त, वानरों की सेना के समान मलय पर्वत पर उत्पन्न होने वाले उत्तम कोटि के चन्दन से व्याप्त, अत्यधिक स्नेह में लिप्त रागी व्यक्ति के समान सभी प्रकार के स्नेह अर्थात् तैल पदार्थों से युक्त, अत्यन्त तुच्छ दुष्ट व्यक्ति के समान अत्यधिक छोटी सवारियों अर्थात् एक ही अश्व के वेग से चलने वाले एक्का से युक्त, कालिया नाम को धारण करने वाले यमुनाकुण्ड के समान कृष्ण गुरु से परिपूर्ण, चारों तरफ निरन्तर चलते हुये चामरों वाले राजा के समान चामरों अर्थात् बाल-व्यञ्जनों से युक्त, अनेक प्रकार की औषधियों वाले आयुर्वेदशास्त्र के समान, अनेक औषधियों वाले, जन समूहों की पंक्ति रूपी तरङ्गों से उत्पन्न किये गये कोलाहल वाले, समुद्र के क्रय-विक्रय करने आने वाले लोगों के समूहों द्वारा उत्पन्न किये गये कोलाहल से भरे हुये बाजार मार्गों से सुशोभित, नित्यपार्थिव पदार्थों से युक्त द्व्यणुक के समान राजाओं के निरन्तर आगमन से भरा हुआ, विपक्ष न होने के कारण बाध रहित प्रमेय के समान शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई विघ्न बाधाओं से रहित, जन्म मृत्यु के कष्टों से रहित जीवन्मुक्त ज्ञानियों के हृदयों के समान, आवागमन की सङ्कीर्णता से रहित अर्थात् विस्तीर्ण जनपथों वाला, नित्य विषयों से संसर्ग रखने वाले, ज्ञान के समान अनेक विषयों की रचना वाला, सभी ओर प्रवाहित होने वाले जल के समान निकलने और आने के अनेक द्वारों वाला, आकाश के समान भूतल को भी आच्छादित करने वाले विष्णुपद अर्थात् आकाश के समान अतिशय विस्तीर्ण पुष्पपुर नामक नगर था ॥२॥

टिप्पणी—'तस्यां मगधेषु पुष्पपुरं नाम नगरमासीत्' यह मुख्य वाक्य है। सम्पूर्ण पदच्छेद में प्रथमान्त पद पुष्पपुरं के विशेषण हैं। इसके अतिरिक्त दो उपप्रधान वाक्य हैं। 'गृहगणेन विराजमानं तथा आपणपथेन भूषितम्' इनमें तृतीयान्त पद कृष्ण गृहगणेन और आपणपथेन के विशेषण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार्वाकेति—भारतीय दर्शनशास्त्र की परम्परा में दर्शनशास्त्रों के अनेक भेद हैं जिनमें प्रमाणों से सम्बन्धित मान्यतायें भिन्न-भिन्न हैं। केवल चार्वाक दर्शन ही ऐसा है जो प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों को स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार न विद्यते प्रत्यक्षातिरिक्तं द्वितीयं प्रमाण तदद्वितीयम् इसी प्रकार पुष्पपुर भी अद्वितीय है क्योंकि नास्ति द्वितीयं प्रमाण यस्य तत्' अर्थात् ऐसा कोई नगर है ही नहीं जिसके साथ इसकी उपमा दी जा सके, इस कारण अद्वितीय है। पुष्कर द्वीपमिव—सप्तद्वीप और सप्तसागरों का वर्णन पुराणों में किया गया है यह सभी द्वीप भिन्न-भिन्न सागरों के मध्य में स्थित है इनमें क्रमशः सप्तद्वीपों के नाम इस प्रकार हैं। १ जम्बूद्वीप, २. प्लक्षद्वीप, ३. शाल्मल द्वीप, ४. कुश द्वीप, ५. क्रौञ्च द्वीप, ६. शाकद्वीप और ७. पुष्कर द्वीप यह सभी द्वीप क्रमशः लवणोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, दध्योद, दुग्धोद, और स्वादूदक सागरों से घिरे हुये हैं। पुष्पपुर भी स्वादुजल वाले कूप सरोवर आदि से घिरा हुआ है।

विशालमिति—विमल शालं विभग्नसदनमित्यर्थः। वि से शालच् प्रत्यय होने पर विशाल का अर्थ विस्तीर्ण भी होता है "पृथु वृहद् विशालं पृथुलं महत्' इत्यमरः। अथवा विशिष्टा शाला यस्मिन् नगरे तत् विशालं नगरम्। साहित्य-शास्त्रमिव—बहुविधि ध्वनि-विचारेण सहितम्। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार साहित्यशास्त्र में अनेक प्रकार के ध्वनिभेदों की चर्चा अथवा विचार होता है उसी प्रकार पुष्पपुर भी बहुविधाः ध्वनयः कूजनानि येषां वीनां पक्षिणां तेषां चारैः विचरणैः सहितम्। वि का अर्थ पक्षी भी होता है वाति इति विः और 'विविष्किर पतत्रयः" इति। इस वि-चार में श्लेष होने पर अनेक प्रकार कूजक पक्षि संचार सहितमित्यर्थः। अरण्यमिव—अष्टापदस्य शालया निवास-स्थानेन अन्वितम्। यहाँ अष्टापद और शाला दोनों में श्लेष है। अष्टापद का प्रयोग शरभमृग और वानर के साथ ही सुवर्ण के लिये भी प्रयुक्त होता है "अष्टापदो चन्द्रमल्ल्यां शरभे वानरे पुमान्" इति मेदिनी और कार्त्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियमिति। अमरः। इस प्रकार उक्त पंक्ति के विभिन्न अर्थ हो सकते हैं जैसे अष्टापद मृगों का निवास स्थान अथवा अष्टापद मृग और शाल नामक वृक्षों से युक्त अरण्य। नगर पक्ष में सुवर्ण की शालाओं से युक्त अथवा अष्टधातुओं का स्थान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सविष्कम्भेन—यह ज्योतिष शास्त्र का शब्द है परन्तु यहाँ पर श्लिष्ट होने के कारण अन्य अर्थ भी होता है वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र में प्रीति आयुष्मान धृति सिद्धि आदि २८ योगों का उल्लेख किया गया है। जिसमें सर्वप्रथम विष्कम्भ का स्थान है। इनका उदय सूर्य और चन्द्रमा के योग से होता है। इसका दूसरा अर्थ कपाट अथवा अर्गला होता है "कपाटमग्गरं तुल्ये तद्विष्कम्भोऽर्गलं न ना"।

द्वारभाजा—साक्षात् अव्यवधाने यद्वस्तु कारणं न भवति तद् केनापि द्वारा परम्परया कारणं भवति अतस्तद् द्वारभाक् भवति यथाहि घटं प्रति दण्डजन्यभ्रमिजन्यभ्रमिः साक्षात्कारणं दण्डस्तु परम्परया। तात्पर्य यह है कि जो वस्तु विना व्यवधान के साक्षात् कारण नहीं होती वह वस्तु किसी के द्वारा अर्थात् परम्परा से कार्य के प्रति कारण होती है जैसे घट कार्य के प्रति दण्ड से उत्पन्न होने वाली भ्रमि आगे उत्पन्न होने वाली भ्रमि का साक्षात्कारण है और दण्ड परम्परा से कारण है अतः वह द्वारभाक् होता है। श्लिष्ट होने के कारण द्वारं भजति सेवते इति द्वारभाक् द्वारपाल इत्यर्थः।

अग्रिम पंक्तियों में केनचित् आदि सर्वनाम पदों के द्वारा अद्वितीय अर्थ बोध होता है शेष पद श्लिष्ट हैं। उत्तमाङ्ग—शिरः, तोरणरूपम्। सुवर्ण—सुष्ठु सरसाः ये वर्णाः तैः घटितेन। सु वर्णाः पीत हरितादय :तैः घटितेन। वह्नि-विशेषेण—न च सर्वोवह्निः सूर्यकान्तसहितः सम्भवति। तारोत्पन्नेन—तारा-गर्भोत्पन्नेन, तारेण—रजतेन। इष्टकामयेन—चयन स्थल का विधान यजुर्वेद में वर्णित है वह ईंटों का बना हुआ होता है। घर भी ईटों से बने हुये हैं। इस साधर्म्य में कोई विशेष वैशिष्ट्य नहीं। अतः इष्टाः ये काम्यन्ते पदार्थाः भक्ष्य भोग्यादयः तान् याति इष्ट-काम-यः तेन। इस व्युत्पत्ति के आधार पर इच्छित सभी भक्ष्य भोज्य भोग्य आदि पदार्थों को प्रदान करने वाले। समवाय—समुदायः समुदायश्च यहाँ से 'आपणपथेन' की विशेषता प्रकट की गई है। कुशद्वीपेन से आपणपथेन तक सभी तृतीयान्त पद आपणपथ के विशेषण हैं। भिन्न-भिन्न पदों के द्वारा आपणपथ के साथ उपमा दी गई है। जैसे कुशद्वीपेन—मूंगों का उत्पत्तिस्थान कुश द्वीप है यहाँ भी बाजार में विक्रय के लिये असंख्य मूंगों के ढेर हैं। शङ्खमालायुजा शिव शङ्खों की माला के समान नरमुण्डों की माला धारण करते हैं बाजार में भी शङ्खों की पक्तियाँ हैं। चन्द्रेण युज्यते इति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रयुग् । चन्द्रेण कर्पूरेण युज्यते इति चन्द्र युक् (घनसारः चन्द्रसंज्ञः) । मुक्तावलि—कर्मवन्धनरहितानाम् अवलिं विभर्ति तेन इव—मुक्ताफलानां पंक्तिं विभर्ति इति ।

सम्पन्नेति—बहुव्रीहि समास करने वाले अनेक मन्य पदार्थ से आगे के पाँच सूत्रों का उल्लेख शब्दशास्त्र में किया गया है । आपणपथस्तु अनेक प्रकार कधान्यवत्तया सम्पन्न बहुव्रीहि है । पार्थिव द्रव्येण—पार्थिव द्रव्यों में गन्ध अन्य द्रव्यों के मिलने से सुगन्धि-दुर्गन्ध-करम्भ-विस्र आदि कई प्रकार की हो जाती है यहाँ भी विशिष्ट जाति वाले अशुद्ध शुद्ध भस्मीकृत औषधियों से मिश्रित गन्ध वाला है अथवा विशेष प्रकार के गन्धक नामक द्रव्य से युक्त है "गन्धः गन्धक आमोदे" । ज्वलदग्निशिखेन—ज्वलन्तीः दीप्यमाना अग्नेः शिखा ज्वाला यस्मिन् सः तेन । अथवा ज्वलन् अग्निशिखः नामक औषधिः यस्मिन् सः तेन । अग्निशिख—वर्रे जिसे कहीं कहीं कटीला या कुसुम भी कहते हैं । जैसे अग्निशिखमुद्दिष्टं कुसुम्भे कुङ्कुमे च" । इसे केसर भी कहते हैं जैसे 'कश्मीरजन्या अग्निशिखम्' इत्यमरः । इस प्रकार अग्निः इव शिखा केसरो यस्य तत् अग्निशिखम् । श्रेष्ठः नामकः वानरः यस्मिन् तेन । श्रेष्ठ चन्दनं यस्मिन् तेन ।

अतिवेलस्नेहेन—रञ्जनं रागः अस्य अस्तीति रागी ते अतिवेलमत्यन्तम् यः स्नेहः अस्ति यस्य सः तेन । अतिवेलमत्यर्थं स्नेहः यस्मिन् तेन । अतिक्रान्तां वेलां मर्यादामिति अतिवेलम् 'अतिवेल भृशात्यर्थम्'' स्नेह—प्रेम और तेल आदि को भी कहते हैं "स्नेहः प्रेम्णिघृतादिकं" इस प्रकार सीमा का उल्लंघन करने वाले प्रेमी के समान अत्यधिक स्नेह धृत तैल वसा मज्जा आदि से परिपूर्ण । सम्भृतेति—सम्यक् घृतः कालीयः येन तेन इव । सम्भृतः सञ्चितः कालीयकः कृष्णागुरः यत्र तेन । लोकावलि—लोकानामवलयः इव ये कल्लोलाः तैः कृतः कोलाहलः यस्मिन् तेन, तत्तुल्यं कलकलः यस्मिन् तेन भूषितम् ।

नित्येति—पृथिव्या इदं पार्थिवं नित्यं च तत् पार्थिवं नित्यपार्थिवम् परमाणुः तत्र समवाय समवाय सम्बन्धेन समवेतम् । नित्यपार्थिव समवेतं द्व्यणुकम् । नित्य पार्थिवपरमाणु को कहते हैं । वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणु का विभाजन नहीं होता । यह परमाणु समवाय सम्बन्ध से द्व्यणुक में रहता है । नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं । परमाणु की परिभाषा करते हुए कहा गया है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि "जालान्तरमतेभानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यतेरजः। तस्य षष्ठितमो भागः परमाणु रभिधीयते"। नगरं तु पृथिव्याः ईश्वरः पार्थिवः तेन संयुक्तम्। विपक्षबाधम्—जो यथार्थ ज्ञान का विषय होता है उसे प्रमेय कहते हैं अतः संसार की जितनी वस्तुयें हैं वह सभी प्रमेय हैं जिसका विपक्ष हो ही नहीं सकता। अतः जैसे प्रमेय विपक्ष की बाधा से रहित है उसी प्रकार पुष्पपुर भी विपक्षेण शत्रुदलेन बाधः व्याघातादिरहितः।

संसरणेति—ज्ञानियों का चित्त पुनः पुनः गर्भवासादि के संकटों से रहित हो जाता है। वे संसरण के हेतुओं को ज्ञानाग्नि में भस्म कर देते हैं फलस्वरूप वे पुनः फल देने वाले नहीं होते "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।" संसरण हेतुओं के भस्म हो जाने पर उनमें कार्योत्पादन की क्षमता नहीं रहती। इसी प्रकार पुष्पपुर भी नगर मार्गों के विस्तीर्ण होने के कारण आवागमन की संकीर्णता से रहित है। नित्यविषयेति—नित्यविषयेण संसर्गः अस्ति अस्येति। ज्ञान सविषय होता है 'ज्ञानेच्छा कृतीनां सविषयकत्वनियमात्। नहिनिर्विषयं ज्ञानं सम्भवति। यह घट है घट को मैं जानता हूँ ऐसी प्रतीति सभी को होती है। केवल 'जानामि' यह प्रतीति नहीं होती। अतः ज्ञानं नित्यं विषय सम्बद्धम् पुष्प'पुर भी पुष्प पुर भी घ्रातक विषय, रसनीयफल, दर्शनीय सदन आदि के द्वारा सभी विषयों की रचना करने वाला है। विषयाणां सम्यक् सर्गः रचना यस्मिन् इति। इस प्रकार समस्त इन्द्रियों के ग्राह्य विषयों की रचना करने वाला है ॥२॥

यत्किल प्रमाण काव्यविशेषाणां, प्रमेयमुत्प्रेक्षाविशेषाणां, संशयात्मक चाक्षुषद्रव्यपरिमाणपरिच्छेदस्य प्रयोजनं नानाकार्यार्थिनां, दृष्टान्तो महा-परिमाणशालिनां, सिद्धान्तः समृद्धिकाष्ठायाः, अवयवः सुरलोकस्य, तर्क-समूहविषयः कविबुद्धीनां, निर्णयगोचरः परमोत्कर्षस्य, वादो महेन्द्रभवनस्य, जल्पपर्यवसानहेतुरुत्प्रेक्षकाणां, वितण्डात्मकं परपुराणां, हेत्वाभासत्वकरं स्वोपरोधोपायानां, छलहेतुः पाखण्डानां जातिबाधकसंग्रहरूपमासुरमार्गस्य, निग्रहस्थानं विपक्षाणां चाभूत् ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवाद—जो पुष्पपुर मानो काव्य के (दृश्य श्रव्य, गद्य पद्य ध्वनि आदि) विशेष भेदों के यथार्थ ज्ञान का साधन अर्थात् स्पष्ट रूप से बतलाने वाला, परात्मसम्भावना के वाच्य प्रतीयमान आदि विशेष भेदों का प्रमेय अर्थात् प्रमिति का विषय, नेत्रों द्वारा ग्रहण करने के योग्य समस्त द्रव्यों (रत्न, धातु, धान्य, पट आदि) की इयत्ता अर्थात् सीमा निर्धारण करने वाला, अनेक कार्यों की इच्छा रखने वाले लोगों के फल (प्रयोजन) को प्रदान करने वाला, महत्परिमाण वाले (काल आकाश आत्मा आदि का) अर्थात् विशाल ग्राम नगर भवन आदि का मानो दृष्टान्त, धनधान्य की चरमसीमा निर्धारण करने वाला, देवलोक अर्थात् स्वर्गलोक के अवयव (खण्ड) की प्रतीति कराने वाला, कवियों की बुद्धि का तर्क समूह अर्थात् विषय, परमोत्कर्ष अर्थात् उन्नति की चरम सीमा का निर्णय करने वाला, सुन्दरता के कारण मानो इन्द्र के भवन का प्रतिवाद करने वाला, उत्प्रेक्षकों की कथा का मानो पर्यवसान रूप, शत्रु नगरों के लिये वितण्डा अर्थात् विध्वंस करने वाला, कुसुमपुर का उपरोध करने की कामना रखने वाले लोगों की बुद्धि को दूषित करने वाला, धर्मध्वंसी पाखण्डियों के पाखण्ड का निवारण करने वाला, आसुरी सृष्टि के अवरोधक उपायों का मानो सञ्चय रूप और शत्रुओं की पराजय का मानो स्थान था ॥३॥

टिप्पणी—इस पदच्छेद में गौतम प्रणीत न्यायदर्शन के प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त आदि सोलह पदार्थों की पुष्पपुर में सम्भावना की गई है। सर्वत्र उत्प्रेक्षालङ्कार का प्राधान्य है जिसे किल शब्द से व्यक्त किया गया है जो प्रत्येक पद के साथ सम्बद्ध होता है। किल शब्द निश्चयात्मबोधक भी होता है यथा "वार्ता सम्भाव्ययोः किल' विश्वकोषः। 'किलशब्दस्तुवार्तायां संभाव्यानुनयार्थयोः"। प्रमाणमिति—प्रमाकरणं प्रमाणम्। इस प्रकार प्रमाकरण को प्रमाण कहते हैं और यथार्थ ज्ञान को प्रमा। जो यथार्थबोध का कारण अर्थात् साधन होता है उसे प्रमाण कहते हैं। काव्यविशेषाणाम्—कवितायाः ये भेदाः तेषां प्रमाणं किल। कविता के दृश्य श्रव्य गद्य पद्य आदि तथा ध्वनि, गुणीभूत आदि भेद होते हैं इन सभी भेदों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला पुष्पपुर नगर है। प्रमेयम्—परात्मसम्भावनायाः ये विशेषाः भेदाः वाच्य प्रतीयमानादयः तेषाम् प्रमेयम्। उत्प्रेक्षा के जितने भी भेद हैं उनकी सम्भावना नगर में की जा सकती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है न्यायदर्शन में आत्मा-शरीर-इन्द्रिय-अर्थ-मन-प्रवृत्ति-दोष प्रेत्यभावादि बारह पदार्थ प्रमेय अर्थात् उपमेय परवाच्य हैं।

संशयम्—चक्षुषा ग्राह्याणि द्रव्याणि तेषां यत् परिमाणं तस्य यः परिच्छेदः तस्य संशयात्मकमिति। संशय विचिकित्सा को कहते है "विचिकित्सा तु संशयः" जब एक ही धर्मी में विरुद्ध अनेक प्रकार का ज्ञान होता है तो उसे संशय कहते हैं। इस दृष्टि से एक ही धर्मी पुष्पपुर में समस्त द्रव्यों की इयत्ता का संशय होता है। द्रव्य पद रत्न-धातु-धान्य-पद आदि को यहाँ व्यक्त करता है दर्शन में पृथिवी जल तेज वायु आदि की सीमा 'नवैव' के द्वारा स्पष्ट करता है। जिनमें चाक्षुष द्रव्य थोड़े ही हैं।

प्रयोजनम्—येन प्रयुक्तः पुरुषः प्रवर्तेत् तत् प्रयोजनम्। अर्थात् इष्ट कार्य की पूर्ति के लिये जब कोई भी व्यक्ति पुष्पपुर आता है तो उसकी इष्ट पूर्ति हो जाती है इस प्रकार अनेक कार्यों के फल को प्राप्त कराने वाला वह पुष्पपुर है ऐसी सम्भावना की गई है। अनेकानि यानि कार्याणि तानि ये अर्थयन्ते तेषां प्रयोजनमिव। राजधानी स्वरूपत्वात् स्वस्वकार्य साधनात्।

दृष्टान्तः—महच्च तत्परिमाणं येन शालन्ते इति महापरिमाणशालिनः। दर्शन में आकाशकालादि आत्मा आदि महापरिमाण वाले माने जाते हैं इनका भी पुष्पपुर उदाहरण रूप में है क्योंकि यह महापरिमाण वाले ग्राम नगर तथा प्रासादों से पूर्ण है। जिस वस्तु के विषय में लौकिक पुरुष और विशेषज्ञ दोनों को समान ज्ञान हो उसे दृष्टान्त कहते हैं यस्मिन्नर्थे लौकिकपरीक्षयोर्बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः। सिद्धान्तः—समृद्धेः धनधान्यादिवृद्धेः या काष्ठा परमावधिः तस्याः सिद्धान्तः निर्णयः किल। प्रामाणिरूप से स्वीकार किया जाने वाला अर्थ सिद्धान्त कहा जाता है इस प्रकार उस नगर की समृद्धि को सभी लोग प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं।

अवयवः—"अङ्गं प्रतीकोऽवयवः" अवयव प्रतीक को भी कहते हैं सुराणां लोकः तस्य अवयवः प्रतीकः किल। तर्कः—"अध्याहारस्तर्कः ऊहः" इत्यमरः व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः" इति दार्शनिकाः। मीमांसा दर्शन में 'तर्क' के लिए 'ऊहः' शब्द का प्रयोग किया गया है। अध्याहाराणां समूहाः तेषां विषयः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस अपेक्षा बुद्धि में कवीनां या बुद्धयः तासां विषयः इत्यर्थः । अर्थात् कवि की बुद्धियां पुष्पपुर को सभी प्रकार से अपनी बुद्धि का विषय बनाने में माने समर्थ हैं । महेन्द्रभवनस्यवादः—अतिशय सुन्दरत्वात् प्रतिवाद रूपम् । उत्प्रेक्षन्ते इति उत्प्रेक्षकाः तेषां जल्पस्य विजिगीषु कथायाः पर्यवसानम् पर्यन्तरूपमित्यर्थः ।

वितण्डा—'स्वपक्षस्थापनहीना कथा वितण्डा' इति नैयायिकाः । अपने पक्ष की स्थापना से रहित विजिगीषु कथा वितण्डा है । परपुराणाम्—परेषां शत्रूणां नगराणि तेषां वितण्डात्मकं विध्वंसकमित्यर्थः । अपनी प्रशंसा न करते हुये शत्रु नगरों का विध्वंसक वह पुष्पपुर हुआ । हेत्वाभास—हेतुवद् आभासन्ते इति हेत्वाभासाः अर्थात् दुष्टाः हेतवः । जो हेतु कार्य साधक नहीं होते अपितु कार्य समान प्रतीत होते हैं उन्हें विद्वान् लोग दूषित कर देते हैं । इस प्रकार पुष्पपुर का उपरोध करने वाले शत्रुकृत जितने उपाय होते हैं उनको दुष्ट हेतुओं के समान मानो दूषित कर दिया जाता है । जातिः—असदुत्तरं जातिः । असुरसृष्टिकृतस्य बाधकानामवरोधकानां सञ्चयरूपम् । न्यायदर्शन जातिबाधक भेद बताये गये हैं । निग्रहस्थानम्—निग्रह स्थानं निरोधः" पराजय हेतुः निग्रह स्थानम् इति नैयायिकाः । पुष्पपुर भी मानो शत्रुओं की पराजय का कारण हुआ ॥३॥

यच्च दृष्टिभिरिव रूपोपजीविनीभिः, कविसूक्तिभिरिवालङ्कारसंस्कृताभिः, ऋग्भिरिव प्रशस्तस्वराभिः, मतान्तरानुरागाभिरिव द्रव्याभिलाषगुणाभिमानिनीभिः, सिद्धमन्त्रावलिभिरिवानेकाकर्षणकुशलाभिः प्रसन्नकविवाणीभिरिव सर्वग्राह्यरसाभिः, दुर्गाभिरिव नवविधाभिः, सद्बुद्धिभिरिवान्यविप्रलम्भनिवृत्ताभिः, न्यायानुयायिनीभिरिवानेकसमवायाभिः नदीभिरिव सन्ततचलरजसाभिः, पृथिवीभिरिव द्रव्यान्तरसंसर्गाधीनस्नेहाभिः, निसर्गोदाताभिरिव कृत्रिमरागाभिः, विरक्ताभिरिव क्वचिदबद्धप्रणयाभिः, श्यामाभिरिवापहृतलोचकलोचनाभिः, सत्कविताभिरिव प्रशस्तानेकघटनाभ्यर्हिताभिः, आख्यातपरम्पराभिरिवानेकपुरुषप्रचारयोग्याभिः, जातिभिरिव कवृत्तित्वरहिताभिः अनवद्याभिः, सुभगाभिः, सुकेशाभिः, रतिलालसाभिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुजङ्घाभिः, सुबाहुभिः, सुवपुर्भिः, सुरसाभिः, सुसौरभाभिः, सुमुखाभिः, कुसुममिश्रकेशीभिः, विलाससहजन्यां जितचित्रलेखां, तर्जितपुण्डरीकां, जनहृदयप्रम्लोचां,—दृष्टिं दधानाभिः, जितहेमाङ्गाभिः सूनृतसरस्वतीमण्डितवदनाभिः, श्रीजितकमलालयाभिः, तिरस्कृतरम्भां, ऋतुस्थलायासप्राप्याम्—ऊरुतटीं विभ्रतीभिर्वारमुख्याभिरध्युषितमनेकाप्सरोविशेषबाहुल्येन दिवमप्युपासत् ॥४॥

अनुवाद—जो पुष्पपुर नील पीत रक्त आदि रूपों को ग्रहण करने वाली दृष्टियों के समान रूप (सौन्दर्य) पर जीवित रहने वाली, उपमा रूपक उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों से मण्डित कवियों के सुभाषितों के समान कटक कुण्डल आदि विविध आभूषणों से अलङ्कृत, उदात्त अनुदात्त स्वरित आदि स्वरों से युक्त मन्त्रों के समान, प्रशंसनीय मधुर स्वरों वाली, द्रव्य से पृथक् गुणों को न मानने वाली मतान्तर (मीमांसा) में अनुराग रखने वालियों के समान धन (द्रव्य) आदि से भिन्न गुणों को न स्वीकार करने वाली, अनेक को आकर्षित करने में कुशल वशीकरण मन्त्र (सिद्ध मन्त्र) के समान सभी को अपनी ओर आकर्षित करने में कुशल, सभी को आनन्द प्रदान करने वाले अतएव ग्रहण करने के योग्य रसों से युक्त, प्रसाद गुण सम्पन्न कवि वाणी के समान, सभी के ग्रहण करने योग्य तथा शृङ्गार आदि रसों से पूर्ण, शैलपुत्री ब्रह्मचारिणी चित्रघण्टा आदि नव भेदों वाली दुर्गा देवी के समान, नूतन मण्डन आदि प्रकारों से युक्त, दूसरों को ठगने से दूर रहने वाली सज्जनों की बुद्धि के समान दूसरों के वियोग से उत्पन्न होने वाले दुःखों से रहित, अनेक समवाय से युक्त न्यायदर्शन को स्वीकार करने वाली के समान अनेक से सम्बन्ध रखने वाली, निरन्तर बहते हुये जल वाली नदी के समान, सदैव अस्थिर स्नेह वाली, दूसरे (जल आदि) द्रव्य के सम्पर्क के अधीन स्नेह वाली पृथिवी के समान, दूसरे लोगों के धन के अधीन होकर स्नेह प्रदर्शित करने वाली, स्वभाव से स्वच्छ अर्थात् श्वेत होने पर भी बाहरी अस्वाभाविक लालिमा से युक्त शाटिका के समान बनावटी स्नेह प्रदर्शित करने वाली, कहीं और किसी में भी राग के कारण आबद्ध न होने वाली वैराग्यवती के समान किसी के भी प्रेम में न बँधने वाली, अतिशय अन्धकार के कारण लोगों की दृष्टि को चुराने वाली रात्रि के समान लोगों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली, प्रशंसनीय अनेक प्रकार की घटनाओं से अर्थात् रचनाओं के द्वारा आदरणीय कवि की उत्तम कविता के समान, अनेक प्रकार की प्रशंसनीय रचनाओं विच्छित्तियों से पूर्ण, उत्तम मध्यम प्रथम आदि अनेक पुरुषों से प्रयुक्त होने वाली क्रियापदों की रूपावलि के समान, अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाली, एक व्यक्ति में न रहने वाली जाति (सामान्य) के समान एक ही व्यक्ति में अनुरक्त न रहने वाली, अनिन्द्य, सुन्दर, सुन्दर केशों वाली, रति की इच्छा रखने वाली, सुन्दर जङ्घाओं वाली, सुन्दर भुजाओं वाली, सुन्दर शरीर वाली, सुन्दर शृङ्गार आदि रसों से पूर्ण, सुगन्धि वाली सुन्दर और मधुर बोलने वाली अथवा सुन्दर मुख वाली, फूलों से गुथे हुये बालों वाली, मिश्रकेशी अप्सरा के समान, विलास ही जिनका सहोदर है अथवा विलास के साथ उत्पन्न होने वाली अथवा विलास में सहजन्या अप्सरा के समान, लिखित चित्र की सुन्दरता को जीत लेने वाली अथवा चित्रलेखा को जीत लेने वाली, कमलों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाली अथवा पुण्डरीक नाम्नी अप्सरा को तिरस्कृत करने वाली, लोगों के हृदय को चुरा लेने वाली अथवा लोगों के मन को आकर्षित करने वाली प्रम्लोचा के समान दृष्टि को धारण करने वाली, शरीर की सुन्दरता से सुवर्ण की शोभा को विजित करने वाली अथवा हेमाङ्ग नाम वाली देवनायिका को जीत लेने वाली, प्रिय वाणी से मण्डित मुख वाली अर्थात् मधुरभाषिणी, अपनी शोभा सम्पत्ति के द्वारा लक्ष्मी को जीत लेने वाली, रम्भा को तिरस्कृत करने वाली, यज्ञ-स्थल में कठिनता प्राप्य वेदी के समान विस्तृत जङ्घाओं वाली अथवा कठिनाई से प्राप्त करने योग्य क्रतुस्थला नाम वाली देवाङ्गना के समान, ऊरुप्रदेश को धारण करने वाली वारमुख्याओं अर्थात् प्रधानगणिकाओं से अधिष्ठित अनेक अप्सराओं से भरे हुए स्वर्गलोक का मानो उपहास करता था ॥४॥

टिप्पणी—जिस पुर को स्वर्गलोक का प्रतीक बताया गया है उसी को सुरलोक से श्रेष्ठता बतलाते हुये इस पदच्छेद में कहा गया है कि 'यच्च पुष्पपुरं दिवमप्युपाहसत् । यह मुख्य वाक्य है । वारमुख्याभिः पद पुष्पपुर के साथ संयुक्त होकर विशेषता प्रकट करता है । इसमें जितने तृतीयान्त पद हैं वे सभी वारमुख्याभिः के विशेषण हैं । स्वर्ग में विशिष्ट अप्सराओं का बाहुल्य है और यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी उनसे बढ़कर अप्सरायें निवास करती हैं इसीलिये स्वर्ग से भी विशिष्ट हैं यहाँ व्यतिरेकालङ्कार और श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षालङ्कार हैं।

रूपोपजीविनीभिः—रूपेण उपजीवन्ति इति ताः ताभिः, रूपम् उपजीवन्ति ताः ताभिः। दृष्टियां शुक्ल पीत हरित आदि रूपों को ग्रहण करने वाली होती हैं क्योंकि चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्' ऐसा कहा गया है। वारमुख्यायें भी अपने रूप को आजीविका का साधन बनाती हैं। उद्भूतरूपं नयनस्य गोचरो भवति"। यही दोनों में समानता है। अलङ्कार—अलङ्कारैः उपमारूपकादिभिः संस्कृताभिः कविसूक्तिभिरिव। अलङ्कारैः कटककुण्डलादिभिः मण्डिताभिः। प्रशस्तस्वराभिः—उदात्तादि स्वरयुक्ताभिः, कलकण्ठाभिः। भक्रमत्म उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों से युक्त होते हैं—गणिकायें भी अपने मधुर कण्ठ से युक्त हैं। मतान्तरानुरागिभिः—न्याय दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शन में अनुराग रखने वाली के समान। यहाँ मीमांसा दर्शन की ओर संकेत किया गया है। मीमांसा दर्शन में पृथिवी जल तेज वायु आदि द्रव्यों से रूप रस गन्ध आदि को अभिन्न मानते हैं, नयायिक गुण और गुणी को भिन्न मानते हुये इनमें समवाय सम्बन्ध स्वीकार करते हैं द्रव्य आधार और गुण आधेय हैं। मीमांसक गुण और गुणी का तादात्म्य सम्बन्ध मानते हैं अतः गुणानां द्रव्याभिन्नत्वम्' यह सिद्धान्त माना है। वारमुख्यायें भी द्रव्य अर्थात् धन से भिन्न गुणों को नहीं मानती हैं इनके लिये द्रव्य ही सर्वस्व होता है "वित्तमात्रं समालोक्य सा रागं दर्शयेद्बहिः" यह गुण कर्म जाति आदि का ध्यान नहीं रखती हैं अतएव इन्हें द्रव्याभिगुणाभिमानिनी कहा गया है।

प्रसन्नकविवाणीति—प्रसाद गुण से युक्त कवियों की वाणी के समान सर्वानुभूयमान रसों से युक्त प्रसाद गुण युक्त कवितं झटिति अर्थावबोधक होती है, शृङ्गार आदि रसों को अपने में समाविष्ट किये रहती है। गणिकायें भी सर्वग्राह्य और रस शृङ्गारादि तथा संभोगादि से युक्त होती हुई अपनी प्रसन्न वाणी से सभी को आकर्षित करने वाली होती हैं। इनकी सर्वग्राह्यता का वर्णन कवि शूद्रक ने मृच्छकटिक में किया है "वाप्यां स्नाति नरो विचक्षण वरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः। त्वं वापीव लतेव नौरिवजनं वेश्यासि सर्वं भज।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust Foundation

दुर्गाभिः—देवी के नव रूपों का वर्णन पुराणों में किया गया है जैसे शैल पुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि महागौरी तथा सिद्धिदात्री यह देवी के नौ प्रकार हैं, गणिकायें भी नवाः विध मण्डनादि प्रकारो यासां ताभिः। अर्थात् सदैव नवीन आभूषणों आदि से सुसज्जित रहने वाली। सद्बुद्धिभिः—सतां सज्जनाना या बुद्धयः ताभिरिव अन्येषां विप्रलम्भः वञ्चनं तस्मान्निवृताभिः रहिताभिः अर्थात् जिस प्रका सज्जनों की बुद्धि दूसरों की वञ्चना करने से रहित होती है, उसी प्रकार य भी अन्येषां विप्रलम्भः तस्मात् निवृत्ताभिः अर्थात् अन्य विषयक विरहवेदना से विमुख रहने वाली हुआ करती हैं। यह गुणी व्यक्तियों से अनुराग नहीं करत और अपने परिचितों से भी जब इनका वियोग होता है तो यह दुखी नहीं होती हैं।

न्यायानुयायिनीभिरिवः—अनेकैः समवायः सम्बन्धः अस्ति यासामि ताभिः। अर्थात् अनेक से सम्बन्ध रखने वाली। अतएव न्यायदर्शन क अनुगमन करने वाली। न्यायदर्शन में संयोग और समवाय दो प्रकार के सम्बन्ध होते हैं जिसमें नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं यह सम्बन्ध अनेक में होता है जैसे गुण और गुणी, जाति और व्यक्ति, अवयव और अवयवी, क्रिया और क्रियावान्, नित्य द्रव्य और विशेष में। इस प्रकार जैसे अनेक में य सम्बन्ध होता है उसी प्रकार यह भी अनेक से सम्बन्ध रखने वाली हुआ करती हैं।

पृथिवीभिरिव—द्रव्यान्तरस्य संसर्गाधीनः स्नेहः यासां ताभिः। अन्य द्रव्यों सम्बन्धाधीनः प्रेमा यासां ताभिः। यहाँ पर लक्षणा के द्वारा पृथिवी पद से पार्थिव द्रव्यों का ग्रहण करना चाहिये। जो तिल सरसों आदि हैं इनसे स्ने अर्थात् तेल की प्राप्ति जल के बिना नहीं हो सकती। स्नेह केवल जलमात्र में रहता है अथवा पृथिवी से उत्पन्न होने वाले आटा आदि का अथवा घट आदि निर्माण के लिये मिट्टी आदि का पिण्डीकरण अन्य द्रव्य जल के अधीन है, बिना जल के पिण्डीभाव नहीं हो सकता। इसी प्रकार गणिकाओं का भी स्नेह दूसरों के द्रव्य पर ही आश्रित रहता है यह तो केवल द्रव्य से ही स्नेह रखती हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निसर्गेति—निसर्गेण अवदाताभिरिव कृत्रिमः रागः यासां ताभिः। शाटिका स्वभावतः स्वच्छ एवं श्वेत होती है परन्तु उसपर बनावटी रंग दे दिया जाता है उसी प्रकार यह भी कृत्रिम राग प्रदर्शन करने वाली होती हैं। यह उस वैराग्यवती के समान होती है जो किसी के भी राग में बद्ध नहीं होती। अतएव यह किसी के प्रेम में आबद्ध नहीं हुआ करती। जैसे रात्रि दूसरों के नेत्रों को हरण करके उन्हें निद्रालु बना देती है उसी प्रकार यह भी दूसरों के नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करके वश में कर लेती है।

सत्कविताभिः—सत्यः रसवाहिन्यः याः कविताः ताभिरिव प्रशस्ता प्रशंसनीयाः याः अनेकाः घटनाः रचनाः ताभिः अभ्यर्हिताभिः आदरणीयाभिः।

आख्यातेति—आख्यातानां क्रियापदानां या परम्परा ताभिरिव—अनेकैः पुरुषैः यः प्राचारः सम्बन्धः तेन योज्याभिः उचिताभिः। अभिप्राय यह है कि जैसे क्रियापदों के रूप पठति, पठसि, पठामि आदि प्रथम-मध्यम और उत्तम पुरुषों के वाचक सः त्वम् और अहम् से सम्बन्ध रखते हैं उसी प्रकार यह गणिकायें भी अनेक पुरुषों से सम्बन्ध रखने योग्य होती हैं।

जातिभिरिव—न्याय वैशेषिक दर्शन में जाति या सामान्य को एक पदार्थ माना गया है जो एक होते हुये भी अनेक में अनुमत रहता है नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यं जातिः' इति। एक ही व्यक्ति में जाति नहीं रहती एक व्यक्ति वृत्तित्वस्य जातिवाधकत्वात् यथा आकाशे आकाशत्वं न जातिः। तो जैसे जाति एक वृत्तित्व से रहित होती है उसी प्रकार गणिकायें भी किसी एक व्यक्ति के सम्पर्क से रहित होती हैं अर्थात् इनकी जीविका किसी एक पुरुष से नहीं चलती है।

मिश्रकेशीभिः से देवनायिकाओं का वर्णन किया गया है। यह सभी पद श्लिष्ट हैं यथा कुसुमैः मिश्रिताः केशाः यासां ताभिः अथवा मिश्रकेशीरूपाभिः। विलासः सहजन्यः सोदार्यः यस्याः तासाम् अथवा विलासेन सहजन्या रूपाम्। जिता चित्रलेखा यया ताम्। तर्जितं पुण्डरीकं यथा ताम् अथवा तर्जिता पुण्डरीका। जनानां हृदयानि प्रम्लोचति मुष्णातीति प्रम्लोचा। जनहृदयानाम् प्रम्लोचा ताम् जनमतो हरामित्यर्थः। अथवा प्रम्लोचा के समान दृष्टि धारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust Gangotri

करने वाली अथवा लोगों की दृष्टि को चुरा लेने वाली। जितानि हेम्नः अङ्गानि याभिः ताभिः। अथवा जिता हेमाङ्गानामिका देवनायिका याभिः ताभिरित्यर्थः। सूनृतया—सत्यप्रियया सरस्वत्या वाण्या मण्डितानि वदनानि यासां ताभि अथवा सूनृता या सरस्वती वाग्देवी तद्वद् मण्डितवदनाभिः।]

तिरस्कृता निर्जिता रम्भा—कदली देवनायिका च यया ताम्। क्रतोः यज्ञस्य स्थले यः आयास तेन प्राप्यां। क्रतुस्थला देवनायिका भी वेदप्रसिद्ध होने के कारण दुर्लभ है उसी प्रकार पुष्पपुर की वाराङ्गनायें भी दुर्लभ हैं। इस प्रकार की अनेक गणिकाओं से सुशोभित पुष्पपुर अगणित अप्सराओं से युक्त स्वर्ग का मानो उपहास किया करता था।

यहाँ पर जितनी भी अप्सराओं का वर्णन किया है वे सभी पुराण-प्रसिद्ध हैं। यजुर्वेद में भी युग्मपञ्चक का उल्लेख है जो अप्सरा वाचक हैं इसके अतिरिक्त रम्भा, मेनका, मिश्रकेशी, हेमाङ्गा, क्रतुस्थला, चित्रलेखा, पुण्डरीका आदि पुराण प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥

यत्र स्फटिकभवनांशुमण्डलेषु क्षीरोदान्तरालगत इव, नीलमणिमयूखान्तरेषु स्वर्भानुमुखकन्दरान्तरित इव माणिक्यमरीचिमालासु सूर्यमण्डलान्तर्गत इव, स्वच्छमणिकुट्टिमषु कृतपरपुरप्रवेश इव, प्रासादारूढकामिनीवदनसंवलनेन कृतकायव्यूह इव, निशासु चन्द्रमा व्यलसत ॥५॥

अनुवाद—जिस पुष्पपुर में स्फटिक (संगमरमर) श्वेत मणियों के बने हुये भवनों की किरण समूहों के मध्य में क्षीर सागर के उदर में स्थित हुये के समान, नीलम मणियों की किरण जालों के मध्य में राहु के मुख विवर रूपी कन्दरा में स्थित हुये के समान, पद्मराम मणियों के किरण समुदायों के मध्य में सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हुये के समान, निर्मल रत्नों से जटित भूमि भाग में प्रतिबिम्बित होने के कारण दूसरे नगर में प्रविष्ट हुये के समान और प्रसादों पर बैठी हुई कामिनियों के मुखों पर प्रतिबिम्बित होने के कारण मानो अनेक शरीरों को धारण किये हुये के समान रात्रियों में चन्द्रमा सुशोभित होता था ॥५॥

टिप्पणी—जिस पुष्पपुर में रात्रि में चन्द्रमा सुशोभित हुआ। यहाँ पर चन्द्रमा के सुशोभित होने में पाँच उत्प्रेक्षायें की गयी हैं। स्फटिक-मणिमय-सदन किरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जालेषु दुग्ध सागरोदर स्थित इव व्यलसत् स्फटिक मणि के श्वेत होने के कारण क्षीर सागर से तुलना की गयी है। नीलमणेः ये मयूखाः तेषाम् अन्तरेषु स्वर्भानोः राहोः वदन दरीगत इव, पद्मराग किरण जालेषु सूर्य मण्डलान्तर गत इव रविमण्डल प्रविष्ट इव स्वच्छ मणि कुट्टिमेषु प्रसन्न रत्न खचित भूमिषु कृत पर पुर प्रवेश इव जनित पर नगर प्रवेश इव प्रासादारूढ़कामिनी प्रासादे राजभवने आरूढ़ाः याः कामिन्यः तासां वदनेषु मुखेषु सम्वलनेन संचलनेन प्रतिबिम्बनेन-इत्यर्थः, कृतोजनितः कायस्य व्यूहः समूहो येन स इव, निशासु निशीथिनीषु चन्द्रः व्यराजत्। इस पदच्छेद में चन्द्रमा की अनेक विशेषताओं के द्वारा उत्प्रेक्षा करके अधिक चमत्कार बताया गया है ॥५॥

यत्र च पर्यन्तरत्नकुट्टिमेषु भानुमतः प्रतिबिम्बसहस्रमवलोक्य तदन्यतमस्यापि निश्यवस्थानध्रौव्यनिश्चयान्निश्चिन्ततां संतेनुर्विमुग्धाः केलिदीर्घिकाचक्रवाकयुवतयः ॥६॥

अनुवाद—जिस पुष्पपुर की (आस पास की भूमि परिसर में रत्नों की बनी हुई फर्शों पर पड़ते हुये सूर्य के सहस्रों प्रतिबिम्ब को देख करके उनमें से रात्रि में कोई निश्चित रूप से स्थित रहेगा ऐसी ध्रुव धारणा होने के कारण चक्रवाक पक्षियों की भोली नवयौवनाओं ने निश्चिन्त होकर क्रीडावापिकाओं में विहार किया ॥६॥

टिप्पणी—इसके पूर्व चन्द्रमा के द्वारा पुष्पपुर की विशेषता कवि ने बताई है। इस पदच्छेद में सूर्य द्वारा उसकी विशेषता का वर्णन कवि कर रहा है। यत्र च पुष्पपुरे केलिदीर्घिका चक्रवाक युवतयः निश्चिन्तताम् सन्तेनुः यह प्रधान वाक्य है। पर्यन्ते रत्नानां कुट्टिमाः तेषु। निशि रात्रौ अवस्थानस्य यत् ध्रौव्यं—स्थैर्यं तस्य निर्णयात्। विशेषेण मुग्धा विमुग्धा नौयवना। इत्यर्थः केलेः दीर्घिकायां वाप्यां या चक्रवाकानां युवतयः ताः, निश्चिन्तत चिन्ताराहित्यं सन्तेनुः विस्तारयामासुः।

इस सम्पूर्ण पदच्छेद का अभिप्राय यह है कि पुष्पपुर में समस्त परिसर मणियों की फर्श वाले बने हुये है। अतः अतिशय स्वच्छ एवं प्रकाशमान होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के कारण उनमें सूर्य के सहस्रों प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ते हैं। उन प्रतिबिम्बों में से कोई न कोई प्रतिबिम्ब रात्रि में अवश्य स्थिर रहेगा। इस कारण सूर्यास्त चिन्ता से रहित भोली चकवा पक्षियों की युवतियाँ निश्चिन्तता पूर्वक केलि दीर्घिकाओं में विहार किया करती हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि 'चकवा पक्षियों का जोड़ा दिन भर साथ रहता है परन्तु सूर्यास्त होने पर अलग हो जाता है।' यहाँ उनकी प्रसन्नता का कारण यह है कि वे सम्भवतः प्रतिबिम्बित सूर्य को वास्तविक सूर्य समझकर उनमें से किसी एक की स्थिति रात्रि में अवश्य रहेगी। अतः रात्रिजन्य वियोग के दुःख से रहित होकर आनन्द का अनुभव करते हैं। इस सम्पूर्ण पदच्छेद में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है और सूर्य के हजारों प्रतिबिम्ब का होना चमत्कार है ॥६॥

नायकनृपवर्णनम्

तत्र चान्तराश्रिताऽनेकभूभृत्यसहस्रविपक्षबलसागराचमनकुम्भसम्भवायमानदोः स्तम्भः, वैतानिकवीतिहोत्रनिर्गतधूमवितानवितन्यमानवितानकृताऽऽगगनमण्डपः, श्रवणाभिमुखप्रवणायमानकोदण्डमण्डलनिःसरन्मार्गणखण्डितद्विषदनीकनिर्गलत्कीलालधारासमास्वादनोन्मत्तभूरितरभूरिमायमुखकुहरनिस्सरत्कृशानुकीलावलिनीराजितप्रविदारणाङ्गणदशदिग्देवतः।

अनुवाद—उस पुष्पपुर नगर में अन्तरङ्ग होने के कारण शरण में आये हुये राजाओं के सहस्रों शत्र सेना रूपी सागर को नष्ट कर देने के कारण अञ्जलि में समुद्र को पी जाने वाली अगस्त्य की भुजाओं की समानता करने वाली स्तम्भ रूपी भुजाओं से युक्त, याज्ञिक अग्नि से निकले हुये धूम विस्तार से विस्तीर्यमाण वितान के कारण चारों ओर से आकाशमण्डल को आच्छादित करने वाला, कानों तक खीचे गये धनुष-मण्डल से निकलते हुए बाणों के द्वारा खण्डित शत्रु सेना की बहती हुई रक्तधारा के पान से उन्मत्त हुये शृगालों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुख कुहर से निकलती हुई अग्नि ज्वाला की पंक्तियों द्वारा रणाङ्गण की दशों दिशाओं में स्थित दिग्पालों की नीराजता करने वाला—

टिप्पणी—'तत्र राजा राजशेखरोना रराज' यह मुख्य वाक्य है। समस्त प्रथमान्त पद राजा के विशेषण हैं। इसमें उपमा, श्लेष और विरोधाभास अलङ्कारों का प्रयोग प्रमुख रूप से कवि ने किया है। कहीं २ रूपक अलङ्कार का भी प्रयोग है। इस प्रकार समस्त गद्य में सङ्करालङ्कार है। राजा के भिन्न-भिन्न विशेषण उसके भिन्न-भिन्न गुणों की ओर संकेत करते हैं। यह विशेषण पुराण, व्याकरण, दर्शन आदि शास्त्रों से लिए गये हैं जो कवि के अपरिमित ज्ञान का परिचय देते हैं। प्रायः ऐसे उपमानों का प्रयोग अन्य गद्यकारों ने कम ही किया है।

आश्रितेतिः—आश्रिताः ये भूभृतः तेषां यत् सहस्त्रं यः विपक्ष बल सागरः शत्रु पक्ष सैन्य सागरः तत् कर्मकं यत् आचमनं तेन कुम्भ सम्भवाय मानो अगस्त्य इव आचरन्ती दोः स्तम्भौ यस्य सः, यह प्रथम विशेषण है। इससे राजा की शरणागत रक्षकता सिद्ध होती है। जिस प्रकार अगस्त्य ने अपनी अञ्जलि में समुद्र को पीकर उसके अस्तित्व को समाप्त कर दिया था। उसी प्रकार राजा ने भी शरण में आये हुए राजाओं के जो विपक्षी राजागण उनकी सागर रूपी सेना का विध्वंस कर दिया था इसी। कारण राजा की भुजाओं पर अगस्त्य की भुजाओं का आरोप किया गया है। दोष भुजाओं को भी कहते है "भुज बाहुः प्रवेष्टो दोः स्यात्" दो दोषो च भुजो बाहुः इति धनञ्जयः वैतानिकेति—वैतानिकः यः वीति होत्रः तस्मात् निर्गतः यो धूमवितानो तेन वितन्यमानः विस्तीर्यमाणः यो वितानः तेन कृतः आगगनं गगन पर्यन्तं मण्डपः येन सः। इसके द्वारा राजा की धार्मिकता सूचित की गयी है। "वितानः यज्ञ उल्लोचे विस्तारे इति" वैतानिक का अर्थ याज्ञिक और विति होत्र का अर्थ धनञ्जय, अग्नि होता है। राजा के द्वारा किये गये यज्ञों से इतना धूम निकलता था कि उससे सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो जाता था। उसी धूम पर वितान का आरोप किया गया है। और उसके नीचे लोगों का एकत्रित होना इस बात का सूचक है कि समस्त प्रजा अतिशय धार्मिक थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रवणेति—श्रवणाभिमुखं प्रवणायमानात् आनम्यमानात् कोदण्डमण्डलात् धनुर्मण्डलात् निस्सरद्भिः मार्गणैः शरैः खण्डितेभ्यः द्विषद् अनीकेभ्यः शत्रु सैनेभ्यः निर्गलतः कीलालस्य रुधिरस्य धारायाः समास्वादनेन उन्मत्ताः भूरितरा ये भूरि मायाः शृगालाः तेषां मुख कुहरेभ्यः निस्सरतः कृशानोः अग्नेः कीलावलिभिः ज्वालामालाभिः नीराजिताः प्रविदाराङ्गणस्य दशदिशां देवता येन सः इति। इस विशेषण के द्वारा राजा का महावीरत्व होना सूचित किया गया है। शृगालों के रक्तरंजित मुख से निकलती हुयी रक्त की धारा पर अग्नि की ज्वाला का आरोप किया गया है। जो कवि की अद्भुत सूझ का परिचय देती है। कीलाल रुधिरं जले कीलाल रुधिर और जल के लिए प्रयुक्त होता है। शिवा भूरिमाय गोमायु मृग धूर्तकाः भूरिमाय शृगाल को कहते हैं कीलावलि अग्नि की ज्वाला को कहते है। कीलो अग्नि तेजसि इति हैमः कीलः ज्वलनार्चिषि इति धरणी अमरकोषकार ने भी—'वह्नेर्द्वयोज्वलकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्' नीराजना आरती को कहते हैं। इसे सैनिक एवं धार्मिक कृत्य भी माना जाता है। प्रविदारण युद्ध को कहते हैं युद्धं प्रविघनं प्रविदारणम् इत्यमरः।

पृथुरिव भूभृत्समुत्सारणसमीकृत समस्तमहीमण्डलः, युधिष्ठिर इव परलोकगमिष्यतशल्यः, भीम इव हतदुःशासनः, अर्जुन इव ध्वस्तरिपु-सुशर्मा, नकुल इव जनितशतानीकः, सहदेव इव रक्षितसुरभीकः, भीष्म इव निपातितोग्रायुधः, कंस इव निरुद्धोग्रसेनः, नल इव पूजितवीरसेनः, वसन्त-समय इव स्फुरदितसौरभप्रभावः, कामिनीकटाक्ष इव तिरस्कृतकर्णः, महा-वराह इव हतद्विषद्धिरण्याक्षः, समन्तभद्र इव जितमनोभूः, तालकेतन इव तीक्ष्णभानुतनयाकर्षकः, वत्सेश्वर इव खण्डितचण्डमहासेनः, इन्द्रद्युम्न इव भीरुभावभावितबुधः, हैहयाधिप इव भास्वदावर्जितशराग्निदग्धभूतलः, नृग इव विष्टरश्रवश्चरणयोगविभुक्तसरटत्वः, शन्तनुरिव भागीरथीजनित-वसुः, अम्बरीष इव मुञ्जकेशिप्रसादासादितसुदर्शनः, शनैश्चर इव चरण-तर्जितविपक्षच्छायः, किरातदुर्गापूजनविधिरिवानभिज्ञातमन्त्रः, जरासन्ध इव मागधस्तूयमानः, शिशुपाल इवानर्घदानजनितमत्युः, नारायणनाभिवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनितशतानन्दः, शङ्कर इव हतारिदर्पकः, गरुड इव कृतद्विजिह्ववैरः, प्रातःकालइवोदयमानमित्रः, सूर्यइवानुगतदण्डः,—

अनुवाद—पर्वतों को धनुष के अग्रभाग से उखाड़करके समस्त भूमण्डल को समतल कर देने वाले राजा पृथु के समान शत्रु राजाओं पर विजय प्राप्त कर लेने के कारण समस्त भूमण्डल को शत्रुरहित बना देने वाला, कौरवों के अन्तिम सेनापति शल्य को परलोक का मार्ग दिखा देने वाले युधिष्ठिर के समान शत्रु लोगों को दुःख प्रदान करने वाला (शत्रुहन्ता) दुर्योधन के लघुभ्राता दुःशासन का संहार कर देने वाले द्वितीय पाण्डव भीम के समान लोक-धर्म तथा राज-शास्त्र के विरुद्ध प्रजा पर शासन करने वाले दुष्ट राजाओं को समाप्त करने वाला, सुशर्मा नामक शत्रु को मारने वाले, मध्यम पाण्डव अर्जुन के समान शत्रुओं के सुख को ध्वस्त कर देने वाला, शतानीक नामक पुत्र को उत्पन्न करने वाले चतुर्थ पाण्डव नकुल के समान सैकड़ों सेनाओं को उत्पन्न करके वाला, गायों की रक्षा करने वाले सहदेव के समान देवताओं के भय को दूर करने वाला, भयङ्कर शस्त्रों को गिरा देने वाले अथवा शिव के आयुध को शिथिल कर देने वाले अथवा कृष्ण के सुदर्शन चक्र को शिथिल करने वाले भीष्म के समान भयानक शत्रुओं के भयङ्कर आयुधों को नष्ट कर देने वाला, उग्रसेन को कारा-गार में निरुद्ध कर देने वाले, कंस के समान भयङ्कर सेनाओं को रोकने वाला, वीरसेन नामक पिता की पूजा करने वाले राजा नल के समान दान सम्मान के द्वारा सेना का आदर करने वाला, अतिशय सुगन्धि को उत्पन्न करने वाले अथवा विकसित अतिमुक्त अर्थात् माधवी लता की सुगन्धि को जन्म देने वाले वसन्तकाल के समान सुरभि अर्थात् गाय से उत्पन्न वृषभ के समान अतिशय पराक्रम वाले, विस्तार के कारण कानों को तिरस्कृत करने वाले कामिनी कटाक्ष के समान अत्यधिक दान देने के कारण महादानी कर्ण को भी तिरस्कृत करने वाले, हिरण्याक्ष नामक शत्रु को नष्ट करने वाले महावराह के समान शत्रुओं की चालों को नष्ट करने वाले, कामदेव को जीत लेने वाले बुद्धदेव के समान काम को जीतने वाला अर्थात् जितेन्द्रिय, सूर्यपुत्री यमुना का आकर्षण करने वाले बलराम के समान अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा विद्वानों को आकर्षित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने वाला अथवा नीतिशास्त्र विचक्षण मन्त्रियों को आकर्षित करने वाला, चण्डमहासेन को ध्वस्त करने वाले, वत्सराज उदयन के समान महती शत्रु सेना को नष्ट कर देने वाला, नम्रता के द्वारा विद्वानों को सम्मानित करने वाले इन्द्रद्युम्न के समान विद्वानों को सम्मानित करने वाला, सूर्य की आराधना से प्राप्त बाणों की अग्नि से भूमण्डल जो जला देने वाले सहस्रार्जुन के समान चमकती हुई बाणाग्नि के द्वारा दुष्टों (राक्षसों) को नष्ट कर देने वाला. विष्णु के चरणों की सेवा करने से गिरगिट योनि से मुक्त होने वाले राजा नृग के समान विष्णु चरणों की आराधना करने के कारण संसरण अर्थात् सांसारिक आवागमन के बन्धन से मुक्त, भगवती गङ्गा की कृपा से पुत्र रूप में अष्ट वसुओं को प्राप्त करने वाले शन्तनु के समान अतिशय भाग्यशाली सेना के अङ्गों से युक्त होने के कारण धन को प्राप्त करने वाला अथवा गङ्गा की प्रसन्नता से वसु नामक औषधि को प्राप्त करने वाला अथवा गङ्गा नदी के किनारे पर रत्नों को दान करने वाला, विष्णु की कृपा से सुदर्शन चक्र को प्राप्त करने वाले अथवा विष्णु की आराधना से विष्णु का दर्शन प्राप्त करने वाले राजा अम्बरीष के समान मुञ्ज और केशी नामक प्रधान सेनापतियों की सहायता से सुदर्शन नामक शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला, शत्रु के समान आचरण करती हुई छाया नाम वाली अपनी माता को पैरों से भर्त्सित करने वाले शनैश्चर के समान शत्रुओं की कान्ति को पैरों से नष्ट करने वाले, मन्त्र आदि न जानने वाले भीलों की दुर्गापूजन विधि के समान शत्रुओं के द्वारा न जानी गई गुप्त मन्त्रणा वाले अर्थात् कर्त्तव्य निश्चय को गुप्त रखने वाला, मगध देशवासियों द्वारा प्रशंसनीय जरासन्ध के समान बन्दी जनों अर्थात् चारणों के द्वारा स्तुति किये जाने वाला, अल्प मूल्य वाली वस्तुयें दान में दिये जाने से अथवा सम्मान सूचक स्थान न मिलने के कारण उत्पन्न हुये क्रोध वाले शिशुपाल के समान क्रीत वस्तु का मूल्य न देने वालों पर अथवा अल्प मूल्य देने वालों पर क्रुद्ध होने वाला, ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाली नारायण भगवान् विष्णु की नाभि के समान सभी लोगों को आनन्द प्रदान करने वाला, दर्पक अर्थात् शत्रु कामदेव को भस्म करने वाले शङ्कर के समान शत्रुओं के दर्प को दूर करने वाला, दो जिह्वा वाले अर्थात् सर्पों से वैर रखने वाले गरुड़ के समान चुगलखोरों से वैर रखने वाला, उदय होते हुए मित्र अर्थात् सूर्यमण्डल वाले प्रातःकाल के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रों उन्नमित करने वाला, दण्ड घटी पल आदि का अनुगमन कराने वाले सूर्य के समान अनुरूप दण्ड को प्रदान करने वाला,—

टिप्पणी—पृथुरिव से प्रारम्भकर आगे जितने भी विशेषण कवि ने दिये उनसे उसके वृद्ध पौराणिक ज्ञान का परिचय मिलता है। पृथुरिव—भूभृतां-राज्ञां, पर्वतानां समुत्सारणेन चूर्णकेन, विजयेन च समीकृतं समस्तं भूमण्डलं येन सः। पौराणिक प्रसिद्धि के अनुसार राजा पृथु ने पर्वतों से व्याप्त भूमण्डल को अपने धनुष के अग्रभाग से (समस्त पर्वतों को उखाड़कर) समतल कर कृषि योग्य बनाया था "चूर्णयन् स्व धनुष्कोट्या गिरिकूटानिराजराट्। भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रापश्चक्रे समं विभुः" इति भागवते प्रसिद्धम्। राजशेखर ने भी समस्त शत्रु राजाओं को समूल नष्ट करके भूमण्डल को अपने अधीन बना लिया था। युधिष्ठिर इव—परलोकं-लोकान्तरं गमितः शल्यः येन सः। परलोकेषु शत्रुलोकेषु गमितं शल्यं दुःखं येन सः। भीम इव—नाशितः दुःशासनः येन सः-भीमः। दुष्टं शासनं येषां ते दुःशासनः कुनृपाः ते हतः येन स राजा। अर्जुन इव—ध्वस्तो रिपुः सुशर्मा येन सः-अर्जुनः। ध्वस्तं रिपूणां सुशर्म सुखं येन सः नृपतिः। अर्जुन ने महाभारत के युद्ध में सुशर्मा नामक शत्रु को मारा था, राजा ने भी शत्रुओं के सुख को नष्ट कर दिया था "शर्मशातसुखानि च"। नकुल इव—जनितः शतानीक नामा सुतः येन सः नकुलः जनितं शतम् अनीकानि येन सः। सहदेव इव—रक्षिता सुरभयः गावः येन सः। रक्षिता सुराणां भीः-भयं येन सः। भीष्म इव—निपातितं उग्रम् आयुधं सुदर्शन चक्रं येन सः। निपातितानि उग्राणां शत्रूणाम् आयुधानि येन सः। एक बार भीष्म ने उग्र (शिव) के अस्त्र को भी ध्वंस कर दिया था ऐसी महाभारत में कथा है। कंश इव—निरुद्धः उग्रसेन भोजराजः येन सः। निरुद्धा अवरुद्धा उग्रा सेना येन सः। नल इव—पूजितः वीर-सेन नामा स्वपिता येन सः। पूजिता-दानमानाभ्यामाहृता सेना येनः सः। वसन्तसमय इव—स्फुरन् अतिसौरभः प्रभावः प्रादुर्भावः यस्य सः। स्फुरन्—प्रकाशमानः अतिसौरभः अतिमनोज्ञः प्रभावः प्रतापः यस्य सः। 'स प्रभावः प्रतापश्च यत्तेजः कोषदण्डयोः" इति यहाँ पर 'नामैकदेशेनामग्रहणम्' इस न्याय से अति शब्द से अतिमुक्त-माधवीलता का ग्रहण किया जा सकता है। "अति-मुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लता" यह वसन्त ऋतु में विकसित होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और अतिशय सुगन्धित भी होती है इसकी सुगन्धि चारों ओर अपना प्रभाव प्रकट करती है उसी प्रकार राजा का भी प्रताप सभी दिशाओं में अपना प्रभाव प्रकट करने वाला है। वसति सदा सूक्ष्मतया इति वसन्तः समेति सूर्यपरिस्पन्दैः सङ्गच्छते इति समयः। इस अर्थ का अभिप्राय वैदिक युग के वसन्त सम्पात से लिया जा सकता है जिसके आधार पर श्री तिलक ने वेदों का काल निर्धारित किया है। इसके अतिरिक्त स्फुरदिति का और अर्थ यह भी हो सकता है सुरभेः अपत्यं पुमान् सौरभः वृषभः स्फुरन् प्रदीप्तः यः वृषभः तस्य प्रभावः इव प्रभावः पराक्रमः यस्य सः। अतिशय पराक्रमी की उपमा वृषभ से श्रुतियों में भी दी गई है 'वृषभो न भीमः' न पद इवार्थक है। कालिदास ने भी वृषभस्कन्ध दिलीप के लिये तथा "महोक्षतां वत्सतरः" रघु० ३/३९ में रघु के लिये प्रयुक्त किया है

कामिनी कटाक्ष इव—अतिशयितः कामः अस्ति अस्याः इति कामिनी, कटं गण्डस्थलं अक्ष्णोति व्याप्नोति इति कटाक्षः। यहाँ जिस प्रकार अपनी विशालता के कारण कामिनी कटाक्ष कर्ण (कान) को तिरस्कृत करते हैं, उसी प्रकार राजा ने भी अपनी अतिदानशीलता से महादानी कर्ण को भी तिरस्कृत कर दिया है यही अर्थ है। महावराह इव—हतः नाशितः द्विषद्हिरण्याक्षः येन सः। हतः नाशितः द्विषत्कर्तृक हिरण्यकर्मकोऽक्षो व्यवहारो येन सः। विष्णु ने वराहावतार लेकर हिरण्याक्ष नामक शत्रु का वध करके भूमि का उद्धार किया था।' 'इयत्यग्रे भूमिरासीद्यामादिवराह उज्जहार' इति श्रुतिः। तेनैव तु द्विजश्रेष्ठ। हरिणा क्रोडरूपिणा। आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुमः" इति पुराणे। राजा भी प्रजा का शोषण करने वाले शत्रुओं को नष्ट करने वाला और उन्हें अत्यधिक दण्ड देने वाला था। क्योंकि राजा के नियमों की व्याख्या करते हुये मनु ने बताया है कि "स्वराष्ट्रे न्यायदण्डः स्यात् भृशदण्डश्च शत्रुषु"।

समन्तभद्रेति—जितः मनोभूः कामः येन सः। राजापि जितेन्द्रियः।" सर्वज्ञः सुमतो बुद्धः धर्मराजस्तथागतः। समन्तभद्रो भगवान्' इत्यमरः। यहाँ समन्तभद्र बुद्ध को बताने वाला है।

तालकेतन इव—तालः केतनं पताका यस्य सः तालकेतनं बलरामः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'तालाङ्को मुसली हतीत्यमरः तीक्ष्ण भानोः सूर्यस्य तनयायाः आकर्षकः हलाग्रेण स्वसमीप प्रापकः। बलराम ने सूर्य-पुत्री यमुना का 'हल' के अग्रभाग से आकर्षण किया था। ऐसी भागवत में चर्चा है। राजा के पक्ष में विभिन्न अर्थ हो सकते हैं—सूर्यपुत्र शनैश्चर को भक्ति आदि के द्वारा आकर्षित अर्थात् प्रसन्न करने वाला 'तीक्ष्णभानोः सूर्यस्य तनयः पुत्रः शनैश्चरः स्तोत्रोक्तरीत्या तदाकर्षकः प्रसादकः इन्यर्थः। अथवा तीक्ष्णः तीव्राः भानोः अग्नेः तमया (एकतः द्वितः त्रितश्चेति श्रुति प्रसिद्धाः) तेषाभाकर्षकः यज्ञनेन वशीकारकः। इस प्रकार शीघ्र फल देने वाले जो अग्नि के तनय जिनका उल्लेख वेदों में है। उन सबको यज्ञ आदि के द्वारा अपने वश में करने वाला। अथवा प्रजा की भलाई के लिये एवम् कृषि आदि की उत्पत्ति के लिये नहरों आदि के रूप में यमुना के जल का आकर्षण करने वाला। इन सबके अतिरिक्त अन्य अर्थ भी किये जा सकते हैं। जैसे—तीक्ष्ण-भा-नुत-नयः—तीक्ष्णाः तीव्राः भाः प्रतिभा येषां ते तीक्ष्णभाः, तथा नुतः स्तुतः नयः नीतिः येषां ते तेषां तीव्रबुद्धिनीतिनिपुणानां विदुषामाकर्षकः। अथवा तीक्ष्णभानुत-नयानां सचिवादी नामाकर्षकः। इस प्रकार प्रखर बुद्धि वाले विद्वानों की तथा मन्त्रियों की परीक्षा करके आदर के साथ अपने राज्य में बुलाकर रखने वाला राजा था।

वत्सेश्वर इव—ध्वस्तः खण्डिता चण्डा महती सेना येन स नृपः। खण्डितः चण्ड महासेनः येन सः। इन्द्रद्युम्न इव विनयेन भीरुभावेन भाविताः बुधाः येन राजा च। हैहयाधिप इव—यह महिष्मती के राजा सहस्त्रार्जुन का नाम है। इन्होंने सूर्य की प्रार्थना करके शत्रु नाशक अग्नि स्वरूप बाणों को प्राप्त किया था। भास्वतः आवर्जितानां लब्धानां शराणाम् अग्निना दग्ध भूतलः येन सः। भास्वन्तो आवर्जिता वशीकृता ये शराग्नयः तैः दग्धा, भूतान् लान्ति ते भूतलाः राक्षसाः येन सः राजशेखरः अर्थात् राजशेखर भी चमकती हुयी बाणाग्नि के द्वारा शत्रुओं को नष्ट करने वाले थे। नृगइव विष्टरे श्रवः कीर्तिः यस्य तस्य चरणयोः योगः तेन विमुक्तं सरटत्वं यस्य सः राजा, नृग च पौराणिक युग में नृग नाम के एक महादानी राजा थे जिन्होंने गोदान करते समय भ्रमवश गोदान में व्यत्यय कर दिया था इस कारण विवाद करते हुये ब्राह्मणों के कोप से शापित होकर सरट अर्थात् गिरगिट हो गये थे। विष्णु की कृपा से यह सरटत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योनि से मुक्त होकर दिव्य रूप को पुनः प्राप्त किया था। राजशेखर भी विष्णु के चरणों का चिन्तन करने के कारण सरटत्व 'संसरण' अर्थात् सांसारिक आवागमन के चक्र से मुक्त हो गये थे। अथवा विष्णु की अतिशय आराधना के कारण इन्हें किसी प्रकार की कामना नहीं थी और ये वीतराग होकर केवल अपना कर्तव्य समझकर प्रजापालन करते थे।

सन्तनुरिव—भागीरथ्याम् जनितः वसुः येन। सन्तनु पुरवंशीय राजा थे इनपर अतिशय तपस्या से गंगा प्रसन्न हुई थी। और इन्होंने गङ्गा से पुत्र की कामना की थी। फलस्वरूप गङ्गा ने इनके पत्नीत्व को स्वीकार करके देवव्रत नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। राजा के पक्ष में भागः भाग्यम् अस्य अस्ति इति भागी रथः प्रसस्ताः वहवा सन्ति इति प्रशस्त भाग्यवान अतएव जनितं वसु धनं येन सः अथवा भागीरथ्या जनितं वसु औषधं यस्मै सा अथवा भागीरथ्याम् उत्पादित दान रत्नः इन सभी व्युत्पत्तियों के आधार पर राजा के अर्थ में भिन्न अर्थ होते हैं। प्रथम अतिशय भाग्यशाली सेना के अङ्गभूत रथ आदि से युक्त होने के कारण धन को प्राप्त करने वाला अथवा भागीरथी की भक्ति से उत्पन्न हुए वसु नामक औषधि को प्राप्त करने वाला, अथवा गङ्गा के किनारे पर अतिशय रत्नों का दान करने, वसु शब्द का प्रयोग औषधि धन आदि के लिए होता है।

अम्बरीष इव—मुञ्जकेशि अर्थात् विष्णु की कृपा से सुदर्शन को प्राप्त करने वाला अम्बरीष ने भगवान विष्णु की अतिशय तपस्या करके उनसे सुदर्शन चक्र नामक अस्त्र प्राप्त किया था। अथवा सुदर्शन अर्थात् विष्णु का दर्शन प्राप्त किया था। यह सूर्यवंशी राजा वासुदेव के परम भक्त थे और महादानी भी थे। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने इन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया। जैसा कि—तस्मै ददात् हरिश्चक्रं प्रत्यनीक भयावहम् इस भागवत् वाक्य से ज्ञात होता है। राजा के पक्ष में मुञ्जिश्च केशिश्च मुञ्जकेशिनी तयोः प्रसादेन प्रसन्नतया आसमन्तात् सादितः सुदर्शनाख्यः शत्रुः यस्य। अथवा मुञ्जकेशिनाम गन्धर्वस्य प्रसादेन आसादितः स्वरूपः येन अथवा मुञ्जाः सन्ति अस्य मुञ्जकेशि विपिनं तस्य प्रसादः प्रकृष्ट प्राप्तिः तेन आसादिता सुदर्शना औषधिः येन अथवा मुञ्जकेशि प्रसादेन आसादितं सुदर्शनं नन्दनं येन इति। राजा के सम्बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक अर्थव्युत्पत्तिलभ्यः है। जैसे मुञ्ज और केशी नामक दो प्रधान सेनापतियों की सहायता से सुदर्शन नामक शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला। अथवा रुपाधिकामो गन्धर्वान् यजेत् इस उक्ति के आधार पर मुञ्जकेशि नामक किसी गन्धर्व की प्रसन्नता से सुन्दर रूप को प्राप्त करने वाला अथवा मूँज के समान केश होते हैं जिसके ऐसा विपिन माना गया है। विपिन की प्रसन्नता से सुदर्शन नामक औषधि को प्राप्त करने वाला, यह औषधि युद्ध के लिए अतिशय उपयोगी होती है, क्योंकि इसमें घावों को शीघ्र जोड़ने की क्षमता पायी जाती है। अथवा विष्णु की प्रसन्नता से सुदर्शन अर्थात् नन्दन वन को प्राप्त करने वाला। सुदर्शन के कोष में अनेक अर्थ बताये गये हैं सुदर्शनु हरेशचक्र मेरु जम्बु द्रुमे पुंमान। न द्वयोः शक्र नगरे प्राज्ञ औषधि भिदोः स्त्रियाम् इति। इन अर्थों के अतिरिक्त अन्य अर्थ भी हो सकते हैं। जिनको विस्तारभय के कारण नहीं स्पष्ट किया जा रहा है।

शनैश्चर इव—शनैः मन्दं चरति इति शनैश्चरः। शनैश्चर ढ़ाई वर्ष तक प्रतिराशि पर रहने के अनन्तर धीरे-धीरे चलते हुए तीस वर्षों में द्वादश राशि चक्र पर भ्रमण समाप्त करते हैं। यह सूर्य-पुत्र भी माने जाते हैं। चरणेन वर्जिता विपक्ष इव आचरन्ती छाया स्व माता येन सः। सूर्य की संज्ञा नामक (विश्वकर्मा की पुत्री) पत्नी थीं जो सूर्य के तेज को सहन न करती हुई। यम यमुना और वैवस्वत मनु को उत्पन्न करके उनकी रक्षा के लिए अपने ही समना छाया को नियुक्त करके पति की अनुपस्थिति में अपने पिता के घर चली गयी। तदनन्तर छाया ने भी सार्वर्ण्य, शनैश्चर और तप्ती नामक कन्या इन तीन सन्तानों को उत्पन्न किया। कुछ दिनों के बाद शनैश्चर को माता के भेद का पता चल गया और उन्होंने उस बनावटी माता छाया को पैरों से कुचलकर अपमानित किया। पिता सूर्य के पूछने पर कहा कि यह मेरी माता नहीं है। तुम कौन हो ऐसा पूछे जाने पर डरी हुई छाया ने भेद स्पष्ट कर दिया तदनन्तर सूर्य ने पिता के घर से संज्ञा को बुलवाया यह कथन श्रीमद्भागवत् में उपलब्ध होता है। राजा के पक्ष में भी चरणेन तर्जिता विपक्षाणां शत्रूणां छाया कान्तिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येन अर्थात् जिस प्रकार शनैश्चर ने शत्रु के समान आचरण करने वाली छाया नामक अपनी माता का अपमान किया था उसी प्रकार राजा ने भी शत्रुओं की कान्ति अर्थात् यश को तिरस्कृत कर दिया था। किरात इति—किरातानां यो दुर्गा पूजन विधिः स इव, न अभिज्ञातो मन्त्रः जप्यः यस्य सा। जिस प्रकार किरात लोग पूजन के मन्त्रों को न जानते हुए दुर्गा की पूजा करते हैं जो कि कामरूप आदि देश में प्रसिद्ध है। वे अनभिज्ञात् मन्त्र हैं। राजा भी न अभिज्ञात गोप्य कर्तव्य निश्चयः अखड़गक्षीणमन्त्रः है। राजा की गुप्त बातें दूसरों के कानों तक नहीं पहुंचना चाहिए क्योंकि जो बात छः कानों तक पहुंच जाती है वह गुप्त नहीं रह पाती है। मन्त्र का अर्थ गुह्य बात होता है। जरासन्ध इव—मागध जनस्तूयमानः। मागधैः वैतालिकैः स्तूयमानः। शिशुपाल इव—अर्घ दाना भावेन उत्पन्न कोपः। नृपस्तु क्रीत वस्तु सूलताना भावेन जनित क्रोधः। नारायणनाभिरिव—जनितः सतानन्दः यया सा। जनिताः सतः आनन्दा येन सः। शङ्कर इव—हतः अरिः दर्पकः अनङ्गः येन सः उभयत समानम्। गरुड इव—कृतो द्विजि द्वैः सर्पैः पिशुनैश्च वैरं येन सः। सूर्य इव—सरति आकाशे इति सूर्यः। सूर्य अपनी गति के कारण दण्ड घटी पल आदि का निर्माण करता है अतः अनुगत दण्ड है। राजा भी दण्ड का अनुगमन करने वाला है और वह सबको उचित दण्ड देने वाला है जैसा कि मनु ने कहा—'अदण्डयडान् दण्यन् राजा, दण्ड्यांश्चैवाति दण्डयन् अयशोमहदाप्नोती। तस्मात् 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभि रक्षति' इति।

वैयाकरण इव संप्रसारितवलरयोः, रचितगुणवृद्धिः—निपातितसुहृत्स्वान्तध्वान्तः—सुवंशभाक् संनिष्ठासहितश्च, आलङ्कारिक इव स्फुटीकृतविशेषोक्तिः, सांख्य इवाभ्युपगतसत्कार्यवादः, प्राभाकर इव सख्यातीत गुणो नित्यवर्णश्च, हिरण्यकशिपुरिव जनितप्रह्लादः, प्रह्लाद इव प्रसूत विरोचनः, विरोचन इव प्रयत्नरक्षितबलिः, बलिरिव प्रकटितबाणः बा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इव सौभ्रात्रप्राप्तमहासेनः, महासेन इव शक्तिभिन्नभूमीभृत्, भूमीभृदिवोत्तुङ्गनानामणिमयकटकः, कटकप्रदेश इव दन्तावलयस्य विगलितमदः, मदप्रवाह इव तर्पितमधुसूदनः, मधुसूदन इवाश्रितनन्दको दिक्षु प्रख्यापितप्रद्युम्नश्च, प्रद्युम्न इव शम्बरासुरविपक्षः, विपक्ष इवाऽसाध्यः,—

अनुवाद—'व', 'ल', 'र', 'य' का सम्प्रसारण करने वाले गुण और वृद्धि की रचना करने वाले, सुहृद्-स्वान्त-ध्वान्त शब्दों का निपातन करने वाले सु आदि प्रत्ययों का प्रयोग करने वाले निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों वाले व्याकरण शास्त्र को जानने वाले के समान सेना के वेग को प्रसारित करने वाला शौर्य, पराक्रम दया दान आदि गुणों तथा धर्म अर्थ आदि की वृद्धि करने वाला मित्रों के अन्तःकरण के अन्धकार रूप अज्ञान को सत् शिक्षा आदि के द्वारा नष्ट करने वाला सुन्दर वंश अर्थात् योग्य पुत्रों को धारण करने वाला तथा गुरु आदि में छल रहित भक्ति रखने वाला, विशेषोक्ति नामक अलङ्कार को स्फुटित करने वाले आलङ्कारिक के समान विशेषाज्ञा को प्रकटित करने वाला, सत्कार्यवाद को मानने वाले सांख्यदर्शन के समान प्रशंसनीय अथवा अच्छे कार्यों के प्रतिपादन को स्वीकार करने और कराने वाला, असंख्य गुणों को मानने वाले तथा वर्णों की नित्यता स्वीकार करने वाले, मीमांसकों के असंख्य गुणों वाला और सनातन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय-वैश्य एवं शूद्रों की रक्षा करने वाला, प्रहलाद को उत्पन्न करने वाले हिरण्यकशिपु के समान अतिशय सुखों को प्रदान करने वाला, विरोचन को उत्पन्न करने वाले प्रहलाद के समान याज्ञिक मन्त्रों द्वारा अग्नि को उत्पन्न करने वाला, प्रयत्न पूर्वक बलि की रक्षा करने वाले विरोचन के समान शत्रु राजाओं से बलि अर्थात् कर को प्राप्त करने वाला, बाण को उत्पन्न करने वाले बलि के समान बाणों के प्रयोग में अति कुशल, भ्रातृत्व भाव के रूप में स्वामि कार्तिकेय को प्राप्त करने वाले बाण के समान कार्तिकेय की आराधना करने वाला अथवा भ्रातृत्व भाव से बड़ी सेना को एकत्रित करने में समर्थ, अपनी शक्ति से क्रौञ्च पर्वत को विदीर्ण करने वाले महासेन के समान शक्ति से शत्रु राजाओं को विदीर्ण करने वाला, उन्नत अनेक मणियों के समूहों वाले पर्वत के समान; अनेक प्रकार की श्रेष्ठ मणियों से सम्पन्न बहते हुए मद युः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाथियों के गण्डस्थल के समान चित्त के विकारों को दूर कर देने वाला, भ्रमरों को तृप्त करने वाले, मद-प्रवाह के समान विष्णु को आराधित करने वाला, नन्दक नामक खड्ग को ग्रहण करने वाले, दिशाओं में अपने पुत्र प्रद्युम्न को प्रतिष्ठापित करने वाले मधुसूदन के समान आश्रितों को आनन्द देने वाला तथा दिशाओं में अपने तेज को प्रकट करने वाला, शम्बरासुर के विपक्षी प्रद्युम्न के समान सुर विरोधियों का शत्रु, साध्य अभाव वाले विपक्ष के समान शत्रुओं के द्वारा असाध्य अथवा शत्रुओं से रहित—

टिप्पणी—वैयाकरण इव—व्याकरणम् अधीते इति वैयाकरणाः व्याकरण शास्त्र वेदता इत्यर्थः ।

१. संप्रसारितवलरयोः—यहाँ व्याकरणशास्त्र के कुछ विशिष्ट नियमों की ओर कवि ने संकेत किया है जो उसके विलक्षण व्याकरण-ज्ञान के परिचायक हैं । संप्रसारण, गुण वृद्धि, निपातन, सु आदि विभक्ति और निष्ठा यह व्याकरण शास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं । सम्प्रसारण में अर्द्धमात्रा वाले अक्षरों के स्थान पर मात्रा वाले सम्प्रसारण संज्ञक इ, उ, ऋ आदि अक्षर होते हैं । जिसका ज्ञान व्याकरण सूत्र 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' से होता है । इसका अर्थ है कि य, व, र, ल के स्थान पर क्रमशः इ, उ, ऋ, ऌ हो जाते हैं । जिन्हें सम्प्रसारण कहा जाता है जैसे यज् धातु से क्त प्रत्यय होने पर य को सम्प्रसारण होकर इष्टं और वच् से क्त प्रत्यय और सम्प्रसारण होकर उक्तं आदि सिद्ध होते हैं । इसे राजा के पक्ष में सम्यक् प्रसारितः वलस्य रयः वेगः येन अर्थात् अच्छी प्रकार से सेना के वेग को बढ़ाने वाला लगाया जाता है ।

२. रचित गुण वृद्धिः—कृत गुण वृद्धिः गुण और वृद्धि संज्ञा पाणिनि सूत्र 'अदेङ्गुणः' और 'वृद्धिरादैच्' से होती है जिनका फल गुण और वृद्धि का होना है जैसे उपेन्द्रः में अ ई के स्थान पर गुण और गङ्गौघः में अ और ओ के स्थान पर वृद्धि हुई । राजा के पक्ष में रचिता गुणाः शौर्यादयः वृद्धयः स्वस्य परेषां च उन्नतयः धर्मार्थादीनां येन अर्थात् शौर्यादि गुणों से युक्त अपनी तथा दूसरों की उन्नति करने वाला ।

३. निपातित श्रुहितस्वान्त ध्वान्तः—निपातनात् साधितः श्रुहित आदि प्रयोगः येन व्याकरण में बिना किसी साधुत्व प्रक्रिया के ही सुहृदय के स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर सुहृत का निपातन हो जाता है यदि यह मित्र के लिये प्रयोग किया गया हो तो जैसे सुहृद दुहृदौ मित्रा मित्रयोः इसी प्रकार मनस् और तमस् के स्थान पर क्रमशः स्वान्त् और ध्वान्त् का निपातन् हो जाता है। राजा के पक्ष में निपातितः नाशितः सुहृदां मित्राणां स्वान्तस्य मनसः ध्वान्तं मालिन्य रूपम् अन्धकारो येन अर्थात् मित्रों के हृदय से शिक्षा आदि प्रबन्ध के द्वारा अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करने वाला।

४. सुवंशभाक्—सुपः ये अंशाः तान् भजति इति सुवंशभाग अर्थात् सुप् प्रत्याहार के अंश सु औ जस् आदि के द्वारा शब्दों को प्रतिपादित करने वाला। राजा सुन्दरः वंश. यः तम् भजति इति सुवंशभाक् सुन्दर वंश अर्थात् पुत्रादिकों से युक्त।

५. सन्निष्ठासहितश्च—सत् संज्ञक निष्ठा संज्ञक प्रत्यय सहितः। व्याकरण में क्त श्नौ क्तवतु प्रत्यय की निष्ठा संज्ञा होती है और शतृ और शानच् प्रत्ययों की सत् संज्ञा होती है। राज पक्ष में सती व्याज रहिता या निष्ठा आस्था तया सहिता अर्थात् गुरु और शास्त्रवचनों में छल रहित आस्था रखने वाला।

६. आलङ्कारिक इव—आलङ्कारान् वेत्ति सः अलङ्कारिकः। स्फुटीकृता विशेषोक्तिः येन सः आलङ्कारिक विशेषोक्ति अलङ्कार को स्फुटित करता है। जहाँ कारण के रहते हुये भी फल का अभाव होता है। उसे विशेषोक्ति कहते हैं। राजा के पक्ष में विशेषोक्ति का अर्थ विशेषाज्ञा होता है। राजा भी अपनी विशेष आज्ञा के द्वारा सभी के कर्तव्यों की ओर सकेत किया करता है।

सांख्य इव—दर्शनशास्त्र की परम्परा में सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद मानने वालों की दो धारायें हैं न्याय आदि दर्शन असत्कार्यवादी और सांख्यादि दर्शन सत्कार्यवादी हैं इनके अनुसार कारण में कार्य पहले से विद्यमान रहता है। राजा के पक्ष में अभ्युपगतः स्वीकृतः सत्कार्यस्य प्रशस्तकर्मणः वादः प्रतिपादनं येन सः। प्राभाकर इव—संख्यातीताः गुणाः यस्य सः। नित्या वर्णाः यस्य सः? मीमांसा दर्शन में वैदिक क्रियाकलापों की प्रधानता होने के कारण यज्ञ होम आदि धार्मिक कृत्यों का प्राधान्य है इनके उपकरण के रूप में घृत आदि द्रव्य, अरुण आदि गुण तथा प्रयाज अनुयाज आदि क्रियायें गुण शब्द से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहृत होती हैं और इनकी सामग्री भी अनन्त होती है अतएव इसे संख्यातीत गुणाः कहा गया है। इस दर्शन में वर्णों की नित्यता भी स्वीकृत की गई है। राजा भी असंख्य गुणों वाला नित्य ब्राह्मणादि चारों वर्णों की रक्षा करने वाला है।

हिरण्यकशिपु से विपक्ष इव असाध्यः तक मालोपमा का प्रयोग किया गया है। एक वाक्य का उपमेय क्रमशः दूसरे वाक्यों में उपमान हो गया है जैसे जनित प्रहलाद जनितः प्रहलादः येन सः जनितः प्रकृष्टं सुखं येन सः। प्रसूतः विरोचनः येन जनितः विरोचनो याज्ञिक वह्निः येन। प्रयत्नेन रक्षितः बलिः येन, प्रयत्नेन रक्षितः बलिः नृपग्राह्यभागो येन। प्रकटितः बाणासुरः येन, प्रकटितः बाणः शत्रुजयाय येन। सुभ्रातृभावेन प्राप्तः महासेनः कार्तिकेयः येन, सुभ्रातृभावेन प्राप्ता महती सेना येन। शल्याभिन्नः भूमीभृत् क्रौञ्चपर्वतः येन, शल्या भिन्नाः विदारिताः भूभृताः राजानः येन। उत्तुङ्गा उन्नता नाना मणिमया कटका प्रवेशा यस्य, उत्तुङ्गा नानारत्नमया वलयः यस्य सः। "कटकंवलयः"। विशेषेण गलितः मदः दान जलं यस्य, विशेषेण गलितः रहितः मदः चित्तविकारः यस्य। तर्पितः मधुसूदनः भ्रमराः येन, तर्पितः पूजितः मधुसूदनः हरिः येन। आश्रितः अवलम्बितः नन्दकनामाखड्गः येन, अवलम्बितः आश्रितः नन्दकः आनन्दः येन। प्रकर्षेण ख्यापितः प्रद्युम्नः येन, प्रकर्षेण ख्यापितं प्रसिद्धीकृतं प्रकृष्टं द्युम्नं तेजः येन। शम्बरासुरस्य विपक्षः शत्रुः प्रद्युम्न इव, शं सुखं वशः श्रेष्ठाः निर्भीकाः तेषां विपक्षः शत्रु अथवा ये सुर विरोधिनः तेषां विपक्षः शत्रुः।

महादोषोप्यदोषः, सदलीकोप्यनलीकः, सालङ्कारोप्यनुपमः, दुर्योधनोप्यजनितलक्ष्मणः, सलक्षणोऽपि विलक्षणः, रामोप्यभग्नोग्रशरासनः सर्वज्ञोऽपि न भुजङ्गप्रियः, मदनोप्यक्षतशरीरः, अनन्तनामाप्यद्विजिह्वः, धनदोऽप्यकुबेरः, किरीटचपि कदाप्यलब्धनपुंसकभावः, जिष्णुरपि न गोत्रद्विट्, ज्वलनोप्यकृष्णवर्त्मा, समवर्त्यप्यरुग्णचरणः, पुष्पदन्तोप्यंप्रभञ्जनदिगाश्रितः, सार्वभौमोप्यनुत्तरदिग्गतः, माल्यवानपि अनालम्बितकीनाशकाष्ठः, इन्द्रद्युम्नोऽप्यनधिगतमातङ्गभावः, जगत्प्राणोऽपि लोकलोचनपीयमानस्व-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपः, पुण्यजनोऽप्यपुरुषादः, प्रचेता अपि जलभावहीनः, चतुराननोऽप्यनष्टभुजः, नयजितकुवलयोऽपि नयनजितकुवलयः, स्वजनप्रियोऽपि निःस्वजनप्रियः, व्याजरहितोऽपि न व्याजरहितः, यशोभी रुचिरोऽप्ययशोभी रुचिरः, समानोप्यसमानः, नत्या हितोऽप्यनत्या हितः ,नीतिकारकोऽप्यनीतिकारकः,—

अनुवाद—महादोष (वि० महान् दोषो वाला, प० विशाल भुजाओं वाला) होते हुये भी दोषों से रहित, सदा झूठ बोलने वाला (प० सुन्दर ललाट वाला) होते हुए भी झूठ न बोलने वाला, अलङ्कार सहित होते हुये अलङ्कार रहित (प० अनुपम अर्थात् आभूषणों सहित होते हुये अद्वितीय) दुर्योधन (शत्रुओं द्वारा कठिनाई से युद्ध करने योग्य) होते हुए भी लक्ष्मण नामक पुत्र को न उत्पन्न करने वाला, शुभ लक्षणों से युक्त होते हुए भी विलक्षण (वि० विगत लक्षणों वाला प० विशिष्ट लक्षणों वाला) राम होते हुये भी शिव के धनुष को न तोड़ने वाला (प० अभिराम अर्थात् रमणीय होते हुये भी भयङ्कर धनुष को न तोड़ने वाला) सर्वज्ञ (शिव) होते हुए भी सर्पों से स्नेह न रखने वाला (प० सर्वत्र होते हुए भी विट धूर्त आदि से स्नेह न रखने वाला) कामदेव होते हुए भी अक्षत शरीर वाला (प्रजा को हर्षित करने वाला होते हुए भी परिपुष्ट सुन्दर शरीर वाला) अनन्त अर्थात् शेषनाग होते हुए भी जिह्वाओं से रहित (अनन्त अर्थात् असंख्य नाम वाला होते हुए भी दो प्रकार की बातें न करने वाले) धनद होते हुए भी अकुबेर (दाता होते हुये भी कुत्सित शरीर से रहित) किरीटी अर्थात् अर्जुन होते हुए भी कभी नपुंसकता को न प्राप्त होने वाला (अभिषिक्त होते हुए भी कभी धर्मविरुद्ध भोग में आसक्त न होने वाला अथवा भोगासक्ति में भी मद्र का अतिक्रमण न करने वाला) इन्द्र होते हुए भी पर्वतों से द्वेष न रखने वाला (विजयशील होते हुए भी गोत्र (परिवार) से द्वेष न रखने वाला) अनल अर्थात् अग्नि होते हुए भी अकृष्णवर्त्मी (तेज होते हुए भी कुत्सित मार्ग का आश्रयण न करने वाले) समवर्त्ती (यमराज) होते हुए भी अरुण चरणों वाला (समस्त प्रजा के साथ बराबर व्यवहार करने वाला होते हुए भी अक्षत पैरों वाला अथवा अपनी शाखा का अध्ययन करने वाला) पुष्पदन्त नामक दिग्गज होते हुए भी वायव्य दिशा का आश्रयण न लेने वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nana, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(पुष्पदन्त अर्थात् कुन्द पुष्प के समान दाँतों वाला होते हुए भी वायव्य दिशा का आश्रयण न करने वाला अपितु पूर्व दिशा में आश्रित) सार्वभौम दिग्गज होते हुए भी उत्तर दिशा के आश्रित न रहने वाला (सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती सम्राट् होते हुए भी उत्तर दिग् के आश्रित न रहने वाला अपितु पूर्व दिगाश्रित) माल्यवान् नामक पर्वत होते हुए भी दक्षिण दिशा का आलम्बन न करने वाला (माल्यवान् अर्थात् मालाओं से सुशोभित होते हुए भी नीच मार्ग का अनुसरण न करने वाला) इन्द्रद्युम्न होते हुए भी मातङ्ग-भाव को न प्राप्त करने वाला (इन्द्र के समान ऐश्वर्य युक्त होते हुए भी विनीत होने से धन आदि के कारण उन्मत्तता को न प्राप्त करने वाला) जगत्प्राण अर्थात् वायु होते हुए भी लोगों के लोचनों द्वारा पिये जाने के योग्य अर्थात् दृश्यमान रूप वाला (विनय आदि का आधान करने वाला होते हुए भी सुरूप होने के कारण लोगों के प्यासे अर्थात् ललचाई दृष्टि से देखे जाने योग्य) पुण्यजन अर्थात् राक्षस होते हुए भी पुरुषों का भक्षण न करने वाला (पुण्यजन अर्थात् धर्मात्मा होने के कारण बहु-दुःखों से रहित) प्रचेता (वरुण) होते हुए भी जलत्व भाव से रहित (प्रकृष्ट चित्त वाले होते हुए भी जडत्व भाव से रहित (डलयोरभेदात्) चतुरानन (ब्रह्मा) होते हुए भी अष्ट बाहुरहित (वाक् चतुर होते हुए भी न नष्ट हुई भुजाओं वाला अर्थात् पराक्रमी) नीति के द्वारा पृथिवी मण्डल को आधीन बनाने वाला होने पर नीति द्वारा भूमण्डल को न जीतने वाला (नीति पूर्वक पृथिवी मण्डल को जीतने वाला होने पर भी नेत्रों द्वारा कुवलय अर्थात् कमलों को जीतने वाला) स्वजन प्रिय होते हुए भी निःस्वजन प्रिय (स्वजन प्रिय होते भी धनरहित लोगों को दान देने के कारण प्रिय) कपट (व्याज) से रहित होते हुए भी कपट सहित (नवीनों को प्रेरणा देने वाले होते हुए भी अष्टादश (१८) वर्ष से कम आयु वालों को युद्ध में न भेजने वाले) यश के द्वारा सुन्दर प्रतीत होते हुये भी अयश के द्वारा सुन्दर प्रतीत होने वाले (कीर्ति के द्वारा मनोज्ञ होते हुए भी पूर्वजन्म के कर्म से शोभित होने से तेजस्वी और प्रीतिवर्द्धक समान दृष्टि वाले अर्थात् पक्षपात रहित दृष्टि वाले होते हुये भी असमान अर्थात् पक्षपात करने वाले (अभिमान अर्थात् स्वाभिमानी होते हुए भी अहङ्कार रहित अथवा उदारचित्त होते हुये भी गर्व रहित) नीति के कारण प्रिय का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने वाले होते हुए भी अनीति के द्वारा प्रिय कार्य करने वाला (नम्रता के कारण प्रियङ्कर होते हुये भी महा भय से रहित अर्थात् अभय प्रदान करने वाला) नीति का प्रयोग करने वाला होते हुये भी अनीति का प्रयोग करने वाला (नीति को करने वाला होते हुए भी ईति आदि दुर्भिक्ष के भय को दूर करने वाला)—

टिप्पणी—विपक्ष इव—साध्य अभाववान् विपक्ष के समान। यह न्यायदर्शन काप्रयोग है। पर्वतो वह्निमान्, धूमवत्वात्, महानसवत्, इस अनुमान प्रयोग में पक्ष-विपक्ष और सपक्ष को जान लेना चाहिये यह सभी न्याय के पारिभाषिक शब्द हैं। सन्दिग्ध साध्यवान् को पक्ष कहते हैं, जैसे प्रयोग में पर्वत पक्ष है। निश्चित साध्यवान् को सपक्ष कहते हैं जैसे महानस सपक्ष है और साध्य अभाववान् को विपक्ष कहते है जैसे सरोवर, वापी कूप आदि। इसे इस प्रकार समझना चाहिये जिसकी सिद्धि की जाय उसे साध्य कहते हैं जैसे पर्वते वह्निमान में वह्नि साध्य है अतः पर्वत पक्ष हुआ जहाँ साध्य निश्चित रूप से रहे उसे सपक्ष यह उदाहरण रूप में होता है। जहाँ साध्य (अग्नि) का सर्वथा अभाव हो वह विपक्ष कहलाता है। नास्ति साध्यः वह्निः यस्मिन् स असाध्यः। राज्ञापि न केनापि: साधयितुं शक्याः। अथवा नास्ति साध्यः कोऽपि रिपुः अवशिष्टः अतो विपक्ष इव असाध्यः।

माहादोषोऽप्यदोषः से अनीतिकरः तक के पदों में विरोधाभास अलङ्कार है। श्लेष के आधार पर भिन्न-भिन्न अर्थ प्रकट कर देने पर विरोध का परिहार हो जाता है। महान् दोषो यस्य, नास्ति दोषो यस्य विरोधः परिहारस्तु महती दोषा बाहु यस्य अदोषः दोषरहितः। सदलीको विद्यमानानृतः अनलीकः अनृतरहितः इति विरोधः परिहारस्तु सदलीकः शुभललाटः, अनृतरहितः, अलिकालीकौ भाले' इत्यमरः। सालङ्कारोऽपि—सालङ्कारः नास्ति उपमा-अलङ्कारः यस्य, अलङ्कारमात्र सहितस्य नास्ति उपमा उपमानं यस्य। दुर्योधनः—धार्तराष्ट्रः अपि अजनित लक्ष्मणः, अयन्तु दुःखेन योध्यते शत्रुभिरिति दुर्योधनोऽपि न जनितः लक्ष्मणः येन। सलक्षणोऽपि—लक्षणेन सहितोऽपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विगतलक्षणः (विचित्रः इति)। रामोऽपि—भगनम् उग्रस्य शरासनम् येन अयमतु न तादृशः इति विरोधः रामः अभिरामः न भगनम् उग्रं शरासनं यस्य। सर्वज्ञोऽपि—न भुजंगप्रियः विरोधः अयं तु सर्वज्ञोऽपि भुजंगाः विटाः प्रिया यस्य न इति। मदनोऽपि—मदयति इति मदनः अक्षति शरीरः विरोधः, मदयति हर्षयति प्रजाः न क्षति शरीरः अनन्तनामा शेषः अपि अद्विजिह्वः विरोधः अनन्तनामाऽपि न द्विजिह्वः न पिशुना अपि। धनदोऽपि—कुबेरः कुत्सित कलेवरः राजा तु धनदोऽपि अकुवेरः सुकलेवरः वेरं शरीरं। किरीटी अपि—किरीटी अर्जुनः राजा अपि मुकुटधारी जिष्णुः अपि-जिष्णुः शक्रः जिष्णुः जयनशीलः राजा परन्तु गोत्रान् न द्वेष्टि कुल द्वेषी न इत्यर्थः। ज्वलनोऽपि—ज्वलनः अग्निः अपि न कृष्ण वर्तभा इति विरोधः, ज्वलनः तेजस्यपि न कृष्णं कलुषितं मार्गः यस्य सः अर्थात् तेजस्वी होते हुए भी कलुषित मार्ग का आचरण न करने वाला। सम्वर्ती परे यमः पङ्गुत्व युक्तः राजाऽपि सम्वर्ती परन्तु अरुण पाद इति विरोधः समम् सर्वासु प्रजासु वर्तते इति सम्वर्ती न तु यमः इव। पुष्पदन्तोऽपि—प्रत्येक दिशाओं में एक-एक दिग्गज होते हैं। इस प्रकार आठ दिशाओं के आठ दिग्गज होते हैं। यथा—ऐरावतः, पुण्डरीको, वामनः कुमुदो अञ्जनः पुष्पदन्तः सार्वभौम सुप्रतीकश्च दिग्गजाः पुष्पदन्तो दिग्गजाः समिरण दिगाश्रिता नृपस्तु पुष्प दन्तोऽपि न तथा इति विरोधः। पुष्पाणि इव—दन्ता अस्य इति पुष्पदन्ता प्रकर्षेण भर्नाक्ति महिरुहान् इति प्रभञ्जनः पवनः तस्य दिक् पश्चिमोत्तरा तामाश्रितो न पुष्पपुर पूर्व दिशा में आश्रित है। अतः राजा पूर्वाश्रित है। वायुव्याश्रित नहीं। सार्वभौमोऽपि—सार्वभौमो दिग्गज उत्तर दिशा में स्थित है परन्तु यहाँ पर अनुत्तर दिग्गतः के द्वारा विरोध बताया गया है। जिसका परिहार सार्वभौमः चक्रवर्ति होते हुए भी उत्तर दिशा का नहीं अपितु पूर्व दिशा का आश्रयण करने वाला। माल्यवान अपि पर्वत भेदः रावण मातामहश्च माल्यवान नामक पर्वत दक्षिण दिशा की ओरस्थित है और लङ्का भी दक्षिण दिशा की ओर है। परन्तु यहाँ पर अनालम्बित की नाश काष्ठः बताया गया है यही विरोध है। इसका परिहार माल्यवान माला एव माल्यं तद् विद्यते यस्य सः माल्यवान सन्नपि कीनाशानां क्षुद्रादीनां काष्ठां शरणिम् न आलम्बिता इति परिहारः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा माला से युक्त होते हुए भी क्षुद्र लोगों के मार्ग का आश्रयण करने वाला नहीं है। कृतान्ते पुंसि कीनाशः क्षुद्रः करशकयोः इत्यमरः। इन्द्रद्युम्नोऽपि—इन्द्र द्युम्न नामक राजा शाप के कारण मातङ्ग (चाण्डालत्व) को प्राप्त हो गया था। और यहाँ पर अनधिगत मातङ्गभावः यह विरोध है। जिसका परिहार इन्द्रस्य इव द्युम्नं धनं तेजः यस्य सः इन्द्रद्युम्नः राजशेखरः। अतिशय विनीत होने के कारण मातङ्गता को कैसे प्राप्त हो सकता है? जगतप्राण. वायु स च रूपरहितत्वेन लोकानां लोचनैः पीयमानः स्वरूपः दृश्यमान स्वरूपा न भवति यतो हि रूपवतः एव द्रव्यस्य एव चाक्षुष प्रत्यक्ष विषयत्वं इति नियमात्। जहाँ पर वायु को दृश्यमान बताया गया है यह विरोध है। इसका परिहार जगताम् प्राणभूतोऽपि लोकानां लोचनैः स्वरूपत्वेन स तृष्णम् इक्षमाणः राजा पिता के तुल्य होता है। रघुवंश में कालिदास ने कहा है कि—"प्रजानां विनया धानात् रक्षणात् भरणादपि स पिता"। राजशेखर भी विनय आदि का आधान करने के कारण सभी प्राणियों के पिता तुल्य है। अतएव दर्शनीय है। जगत्प्राणत्व न चाक्षुष प्रत्यक्ष प्रतिबन्ध इति। पुण्य जनोऽपि—पुण्य जनाः राक्षसाः और पुरुष-वान् अदन्ति पुरुषादाः ते भवन्ति यातुधानः पुण्यजनः इत्यमरः राजां तु पुण्य जन वाच्योऽपि न पुरुषादः इति विरोधः। राजा पुण्यात्मा होने के कारण दु ख रहित, पुरु-षादः बहु-दुःखः पुण्यात्माओं का नाम ग्रहण करने वाला होता है। प्रचेता अपि - प्रचेता वरुणा जलस्य भावः जलत्व येन रहिता राजा प्रचेता अपि न तथा इति विरोधः प्रकृष्टं चेतो यस्य सः प्रचेताः अतएव जडभावेन हीनः 'रलयोर्भेदः' इस नियम से जल भाव हीनः जल भाव हीनश्च। चतुराननोऽपि—चतुराननः ब्रह्मा अतएव अष्ट भुजा राजाऽपि चतुराननः तथाऽपि अनष्ट भुजा न अष्टौ भुजा यस्य सः इति विरोधः चतुरं कुशलं मुखम् आननं चतुराननः न तु चतुरवदनः अतएव न नष्टौ भुजौ यस्य सः पराक्रमशाली। यहाँ तक उपमान वाचक पद श्लिष्ट थे। अतः श्लेषानुप्राणित विरोधालङ्कार था।

नयनजित—नयेन जितः कोः पृथिव्याः बलयः मण्डलं येन। राजाऽपि नयनेन जितः कुलवयः कथम् इति चेत् नयनेन जितं कुवलयम् उत्पलं येन। स्वजन-प्रियोऽपि—स्वजनप्रियोऽपि निः स्वजन प्रियः दरिद्र जनप्रियः इति। व्याज-रहितोऽपि—व्याजेन कपटेन रहितोऽपि व्याजेनरहिता इति विरोधः परिहारस्तु नव्यानाम् आजः तेन रहिता अर्थात् नवयुवकों को युद्धस्थल में प्रेरणा देने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला । यशोभिः—यश के द्वारा सुन्दर होते हुए भी अयश के द्वारा सुन्दर यहाँ पर विरोध है। परिहार अयं—शोभिः रुचिरः । पूर्व जन्म के शुभ कर्म के द्वारा सुन्दर और तेजस्वी परिहार अय स्वभावः अर्थात् पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का वाचक होता है अयः स्वभावहोः विधिः इत्यमरः रुचि दीप्ति राति ददाति इति रुचिरः तेजस्वी प्राति वर्धकश्च । समानोऽपि—मानेन सहितः समानः नः समानः असमानः । गर्भरहिता अहङ्कार रहितश्च नत्या इति नत्या नमनेन हितः प्रियङ्करः अपि अनत्या हितः विरोधः परिहारस्तु नास्ति अत्याहितं महाभीतिः यस्मात् सः अनत्याहितः अभयदाता इत्यर्थः । नीतिकारकोऽपि—नीते कारकः नीतिकारकः अपि अनीतिकारकः इति विरोधः परिहास्तु न ईतिकरः अनीतिकरः तस्याः परिहारकः इति ईतियाँ छः प्रकार के भय को बताने वाली होती है । जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टिः शलभा, मूषकाः शुकाः प्रत्यासन्नाश्च राजनः षडेतः ईतयः स्मृताः । इन सबको दूर करने वाला राजा माना जाता है यज्ञादि के द्वारा पञ्चभूतों के कोप की शांति होती है । और अग्नि में डाली गयी आहुति सूर्य को प्राप्त होती है । और सूर्य से वृष्टि और वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा सन्तुष्ट रहती है क्योंकि 'राज्ञि धर्माणि धर्मिष्ठाः पापेपापाः समे समाः लोकास्तमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ।

अग्रणीर्गुणशालिनां, ललाम कलावताम्, प्रवीरः प्रवीणानाम् असाधारणो धारणावद्बुद्धीनां, धुरीणो धीराणां, मान्यो वदान्यानां, प्रवेकभूतो विवेकवताम्, उदीर्यं औदार्यभाजां, महनीयो महोत्साहानाम्, आचार्यो वाचोयुक्तिपटीयसां निधानं दिशोदण्डस्य, पश्यतो हरःपरिपन्थियशसां, कामुकः कीर्ते, मत्सर्यं सत्यपथस्य मत्तः परवधे, तृष्णक् धर्मे क्रुद्धो दुर्विनीतेषु, मूढे दुर्नये, दिक्वधूकर्णवतसायमान यशः पल्लवो राजा राजशेखरो नाम रराज ॥७॥

अनुवाद—गुणशालियों के मध्य में अग्रगण्य, कलाविद् लोगों के मध्य आभूषण, प्रवीणों के मध्य में प्रवीर, अर्थात् वैज्ञानिकों के मध्य में श्रेष्ठ, विद्वानों के मध्य में असाधारण अर्थात् अद्वितीय, धैर्यशालियों के मध्य धैर्य धारण करने में श्रेष्ठ, दानियों के मध्य में माननीय, सद् असत् का विवेक रखने वालों में प्रधान, उदार व्यक्तियों के मध्य सर्वप्रथम उच्चारण करने के योग्य, उत्साहितों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसनीय, अतिचतुर वाणी बोलने वालों में अग्रगण्य, राष्ट्र संरक्षण करने वाले लोगों के निधिरूप, शत्रुओं के यश को देखते ही चुरा लेने वाला, कीर्ति की कामना करने वाला, असत् पथ का द्वेषी, शत्रुओं का वध करने में प्रमत्त स्वजन-पीडन में नहीं, काम में नहीं अपितु धर्म में तृष्णा रखने वाला, शिष्टों पर नहीं अपितु दुर्विनीतों पर क्रोध करने वाला, सुनीति में नहीं अपितु दुष्ट नीति में मूढ दिशारूपी वधुओं के कर्णावतंस से रूपी यश पल्लवों (कीर्ति किसलयों वाला राजशेखर नामक राजा सुशोभित हुआ ॥७॥

टिप्पणी—गुणवताम् मध्ये अग्रणीः प्रवीणानां वैज्ञानिकानां मध्ये प्रवीरः श्रेष्ठः धीराणां मध्ये मुख्या वदान्यानां दानिनां मध्ये मान्यः कीर्तेः कामुकाः न कोपस्य असत् पथस्य मत्सरी न तु दीनोन्तो मत्तः शत्रु वधेः न तु प्रजा पीडने तृष्णक धर्मे न तु कामे क्रुद्धः दुष्टेषु न तु श्रेष्ठेषु अज्ञः दुष्ट नीतौ न तु सुनीतौ इत्थं भूतः राजा राजशेखरः रराज रेजे ॥७॥

शासनसौभाग्यम्

यस्मिन् सर्वोत्तरपुण्यचरितरत्नाकरे शासति महीं, गुणच्छेदो मृणालेषु, अङ्कप्रचारो गणितागमेषु, वर्णव्यत्ययः सात्त्विकभावेषु, सङ्करोऽलङ्कार-विचारेषु, वैषम्यं छन्दःप्रभेदेषु, रेफस्योर्ध्वगमन शब्दसाधने, प्रत्ययलोपो व्याकरणे, जातिनिराकरणं सौगतसिद्धान्तेषु, ईश्वरद्वेषो मीमांसकेषु, सुहृन्निपातनं पाणिनीयेषु, अदृश्यत्वमाकाशादिषु, मिथ्योक्तिरव्ययेषु, सविकल्पकत्वं ज्ञानविशेषेषु, सत्प्रतिपक्षत्वं बाधितत्वं च हेत्वाभासविशेषे, दुःखद्वेषाधर्मवार्त्तागुणनिरूपणेषु, आत्मसत्त्वप्रतिपादनं सदागमेषु, द्रव्या-भावो बुद्धदर्शनेषु, प्रकृत्यन्यथाभावो निष्क्रियचेतनपुरुषत्वं च सांख्येषु, न्यूनमनस्कत्वं वैशेषिकेषु, स्वतःप्रामाण्याभावो नैयायिकेषु, उपनयत्याग-पक्षो जैमिनीयानुमानेषु, निरालम्बनता नास्तिकमतविशेषे, मध्यमपुरुष-दर्शनमाख्यातेषु, उपसर्गयोगो धातुषु, भागहीनत्वं नित्यद्रव्येषु, परार्थहरणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समासादिवृत्तौ, दोषादयो वैद्यकेषु, अनुदात्तत्वं स्वरप्रभेदे, बहुवचनादर्शनं तद्राजप्रत्ययेषु, पदाभावो भसंज्ञायां, विकलत्वमङ्कभेदे, अशक्तत्वमुपसर्गेषु, अङ्गहारो नाट्यकलासु, असिद्धत्वं त्रैपादिकेषु, विकरणान्वयो धातुषु, पुंवद्भावः पारिभाषिकस्त्रीषु, सदेनादेश इति व्यपदेश इदमेतदोरन्वादेशे, शून्यवादः सौगतेषु, महापातकस्मरणं स्मृतिषु, व्यभिचारिश्रवणं रसागमेषु, मिथ्याध्यवसितिः काव्यालङ्कारेषु—

अनुवाद—सर्वश्रेष्ठ पवित्र आचरण करने वालों के मध्य में रत्नाकर के समान जिस राजा राजशेखर के पृथिवी पालक होने पर कमलनाल में ही (केवल) गुणच्छेद हुआ (प्रजा में वीर्य शौर्य पराक्रमादि गुणों का उच्छेद नहीं हुआ) गणित शास्त्र में ही (केवल) अङ्कों का प्रयोग हुआ (लोगों में अङ्क (पाप) का प्रचार नहीं हुआ) वर्णव्यत्यय (विवर्णता आदि) (केवल) सात्त्विक भावों में ही हुआ (लोगों में वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय आदि ध्वंस तथा प्रतिलोम आदि का व्यतिक्रम नहीं हुआ), सङ्कर (अलङ्कार) केवल अलङ्कार चर्चा में ही हुआ (लोगों में वर्ण सङ्करता नहीं हुई), विषमता (विषम छन्द) का प्रयोग (केवल) छन्दःशास्त्र में हुई (लोगों में पूज्यपूजक की विषमता व्यतिक्रम नहीं हुआ) रेफ का ऊर्ध्वगमन (केवल) शब्दसिद्धि में ही हुई (लोगों में रेफ (निन्दनीय) का ऊर्ध्वगमन अर्थात् उन्नति की प्राप्ति नहीं हुई) प्रत्यय का लोप (केवल) व्याकरण शास्त्र में ही हुआ (जनों में प्रत्यय अर्थात् विश्वास का लोप नहीं हुआ), जाति का निराकरण (केवल) बौद्ध सिद्धान्त में हुआ (लोगों में जाति गोत्र आदि का निराकरण नहीं हुआ), ईश्वर का निराकरण (केवल) मीमांसा दर्शन में ही हुआ .लोगों में ईश्वर अथवा राजा से द्वेष नहीं हुआ) सुहृद् निपातन पाणिनीयशास्त्र में ही हुआ (लोगों में सुहृद् मित्र का निपातन अर्थात् मित्रद्रोह नहीं हुआ), अदृश्यत्व (केवल) आकाश आदि में ही था (प्रजा में आदर्शनीयता का भाव नहीं था सभी लोग दर्शनीय थे) मिथ्या अर्थात् च, ह, वा आदि पदों का पाठ (केवल) अव्यय में ही था (प्रजा में मिथ्या भाषण का प्रयोग नहीं था) सविकल्पकत्व (केवल) ज्ञान के भेदों में ही था (लोगों में विरुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पना अथवा सन्देह नहीं था) सत्प्रतिपक्षत्व और बाधित्व (केवल) हेत्वाभास के भेदों में हुआ (लोगों में प्रतिद्वन्द्विता तथा बाधा आदि के हेतुओं का अभाव था) दुःख द्वेष अधर्म आदि की बातों (केवल) न्याय दर्शन के गुण निरूपण में ही थी (प्रजा में द्वेष दुःख तथा अधर्म आदि गुणों की चर्चा नहीं होती थी), आत्मा परमात्मा सत्ता आदि का प्रतिपादन श्रुति स्मृति वेदान्त आदि दर्शनों में ही होता था (प्रजा में आत्मश्लाघा अर्थात् अपने मुख से अपने गुणों का प्रतिपादन नहीं होता था) द्रव्य का अभाव (केवल) बौद्ध दर्शन में ही था (लोगों में धन का अभाव नहीं था सभी लोग धनधान्य से सम्पन्न थे), प्रकृति का अन्यथा भाव (विकार) और चेतन पुरुष की निष्क्रियता (केवल) सांख्य दर्शन में ही थी (प्रजा में विकार तथा चेतन पुरुषों की निष्क्रियता उद्योग राहित्य आलस्य आदि का अभाव था), मन की परमाणुता (केवल) वैशेषिक दर्शन में ही प्रतिपादित होती थी (प्रजा में न्यूनमनस्कता अर्थात् अनुदारता नहीं थी), स्वतः प्रामाण्य का अभाव (केवल) न्याय दर्शन में ही था (लोगों में अपने प्रामाण्य की आवश्यकता नहीं थी, सत्यवादी होने के कारण अपने लिये साक्षि की आवश्यकता नहीं पड़ती थी) उपनयन का त्याग (केवल) मीमांसा दर्शन में हो था (प्रजा में उपनयन संस्कार का त्याग नहीं होता था अथवा समीप में (शरणागत रूप में) आये हुये लोगों का परित्याग नहीं होता था) निराधारता (केवल) नास्तिक दर्शनों के भेद में ही थी (प्रजा में असहायता नहीं थी) मध्यम पुरुष (सिप्-थस्-थ) का दर्शन क्रियापदों में ही होता था (प्रजा में ऊँच-नीच आदि का भेद-भाव नहीं था) उपसर्ग (प्र-परा-अप) का योग (केवल) धातु में ही होता था (प्रजा में उत्पातों का योग नहीं हुआ) भागहीनता (अवयव हीनता) (केवल) नित्य द्रव्यों परमाणु आकाश आदि में ही थी (प्रजा में अंश हीनता नहीं हुई सभी को अपना-अपना भाग नियम तथा न्यायानुकूल मिलता था) परार्थहरण (अश्रूयमाण पदों के अर्थ का प्रतिपादन) केवल समासादि वृति (व्यवहार) में ही होता था (प्रजा में दूसरों के धन का हरण नहीं किया जाता था) दोष (वात-पित्त-कफ) आदि की वृद्धि का प्रतिपादन वैद्यक ग्रन्थों में ही होता था (लोगों में जडता मन्दता आदि दोषों की वृद्धि नहीं थी) अनुदात्तता (उदात्तता) आदि (केवल) स्वरों के भेदों में थी (प्रजा में अनुदारता नहीं थी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

बहुवचन का अदर्शन (लोप) (केवल) पाणिनि प्रयुक्त तद्राज प्रत्ययों में ही था (प्रजा में बहुवचन अदर्शन नहीं था शिक्षित होने के कारण सभी लोग आदर अन्यै में बहुवचन का प्रयोग करते थे) पद (पद संज्ञा) का अभाव भ संज्ञा होने पर ही होना था (लोगों में पद (स्थान) का अभाव नहीं था अथवा व्यवसाय का अभाव नहीं था। विकलत्व (केवल) अङ्कों में गणना के भेदों में ही था (प्रजा में विकलत्व अर्थात् कलाहीनता नहीं थी), अशक्तत्व (केवल) उपसर्गों में ही था (प्रजा में असमर्थता नहीं थी) अङ्ग विक्षेप (आङ्गिक अभिनय) केवल नाटय कलाओं में ही होता था (प्रजा में अङ्गहीनता नहीं थी) असिद्धत्व (केवल) पाणिनीय सूत्रों के त्रिपादिकों में ही था (प्रजा में असिद्धत्व नहीं था) विकरण का योग (केवल) धातुओं में ही होता था (प्रजा में विध्वस्त इन्द्रियों का अभाव था) पुंवद्भाव (केवल) पारिभाषिक स्त्री वाचक पदों में था (लोगों में पुंवद्भाव (गर्भाश्रयादि विकार) नहीं था) सद् अर्थात् साधुत्व विशिष्ट 'एन' आदेश का व्यवहार 'एतद्' शब्द में ही होता था (प्रजा में सदैव राजा की आज्ञा का व्यवहार नहीं होता था अर्थात् राजा सदैव प्रजा को आदेश नहीं देता था प्रजा अपने कर्तव्यों का पालन नियमानुसार किया करती थी), शून्यवाद (केवल) बौद्ध दर्शन में ही था (लोगों में अपने सिद्धान्त की शून्यता नहीं थी) महापातकों का स्मरण (केवल) स्मृतियों में ही था (लोगों में महापातकों का स्मरण नहीं होता था) व्यभिचारि आदि सञ्चारी भावों का स्मरण श्रवण शृङ्गार आदि रस निरूपण चर्चाओं में होता था (लोगों में अपराधियों का श्रवण नहीं होता) मिथ्या अध्यवसिति (केवल) काव्य और अलङ्कारों में ही थी (लोगों में असत्य भाषण विषयक बुद्धि नहीं थी)—

टिप्पणी—इस शासन सौभाग्य नामक पदच्छेद में राजा की सुव्यवस्था का वर्णन विभिन्न प्रकार से किया गया है और यह बताया गया है कि प्रजापालक राजशेखर के शासन करते रहने पर प्रजा समस्त दोषों से रहित थी और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं था क्योंकि क्षत्रिय का प्रजापालन करना सबसे बड़ा धर्म होता है—क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानां परिपालनम् इति। सर्वत्र श्लेषालङ्कार का बाहुल्य है। प्रथम शास्त्र की विशेषता बतलाते हुए कहा है कि सर्वोत्कृष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पवित्र आचरण करने वालों के मध्य में रत्नाकर के समान सर्वोत्तरे ये पुण्य चरितः तेषु मध्ये रत्नाकरः तस्मिन् प्रजा पालके महीम सासति। दोषाः प्रजासु न आसन् इति गुणच्छेदः मृणालेषु प्रजासु न आसन् न सम्भवन् इत्थं सर्वत्र अन्वयः कर्तव्यः मृणालेषु कमल दण्डेषु एव तन्तु विच्छेदः न तु प्रजासु वीर्य औदार्य आदीनां, सन्धि विग्रहदीनां छेदः न अभवन् अङ्गानां प्रचारः ज्योतिष-सिद्धान्तेषु एव अङ्कसि आगसः प्रचारः जनेषु न आसीत् अङ्क का अर्थ अपराध भी होता है ' इस प्रकार प्रजा में अपराध का प्रचार नहीं था कलह्यो अङ्काप-वादयोः इत्यमरः। वर्ण व्यत्ययः वर्णस्य रूपस्य व्यत्ययः वैवर्ण्यं सात्विक भावेषु ब्राह्मण आदि चतुर्षु वर्णेषु व्यत्यय व्यतिक्रमः न आसीत् सात्विक भाव आलङ्कारिकों ने आठ माने हैं। स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वर भङ्गोपवेपथुः वैवर्ण्यं मश्रु प्रलय मित्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः' इनके कारण रूप में विवर्णता आ जाती है। ब्राह्मण आदि चार वर्णों में वर्ण व्यत्यय नहीं था। सङ्करः साङ्कर्यम् अलङ्काराणां विचारेषु विविध प्रयोगेषु एव साहित्य ग्रन्थेषु च एव न जनेषु सङ्करः। प्रजा में वर्ण सङ्करता नहीं थी। क्योंकि "सङ्करो नरका एव कुलघनानां कुलस्य च। पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥ ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है। वैषम्यम्-विषमाणां भावः वैषम्यं। छन्दः भेदेषु जनेषु वैषम्यं न विषम छन्द का प्रयोग छन्द शास्त्र में ही होना था। यस्य पाद चतुष्केऽपि लक्ष्यभिन्नं परस्परं तदाहविषमं वृत्तं छन्दःशास्त्र विषारदाः इति। प्रजा में विषमता नहीं थी जैसे उत्तम का अनादर हीन का आदर विद्वान् की निन्दा मूर्ख की पूजा यह सब श्रेयस के प्रति बन्धक होते हैं। इस प्रकार पूज्य पूजा व्यतिक्रम लोगों में नहीं था। सभी कार्यों में लोग परस्पर योग्यों का ही समागम करते थे। इति। रेफस्य—रेफ का ऊर्ध्वगमन केवल शब्दों का साधुत्व प्रदर्शन करने में ही होता था जैसे चतुर्षु चतुर मुखेषु आदि देखा जाता है। प्रजा में तुच्छ लोगों की उन्नति नहीं थी। रेफ कुत्सित एवं निन्दनीय को भी कहते हैं। 'रेफः स्यात् कुत्सिते' इति। प्रत्यय लोपः—व्याकरण शास्त्र में ही प्रत्यय का लोप होता था। जैसे—मधु से नपुंसकलिङ्ग में सु प्रत्यय का लोप भूमृत में क्विप् प्रत्यय का लोप तथा अहन् में ति प्रत्यय का लोप। प्रजा में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्ययस्य विश्वासस्य लोपः नः आसीत्। प्रत्यय का अर्थ विश्वास भी होता है।

जाति—सौगतानां बौद्धानां सिद्धान्तेषु जातेः निरूपणं जनेषु जात्या गोत्रस्य जनमनः निराकरणं न आसीत्। ईश्वरद्वेशः—ईश्वरस्य द्वेषः अप्रीतिः। जैमिनीय तथा मीमांसा दर्शन में ही थी क्योंकि मीमांसा दर्शन में कर्ममात्र का निरूपण किया गया है। प्रजा में ईश्वर के प्रति अथवा राजा के प्रति कोई द्वेष नहीं था। सुहृन् निपातनं पाणिनि व्याकरण में ही सुहृदय के स्थान पर सुहृत् का निपातन् होना था निपातनं तु उच्चारण मात्रेण साधुत्व प्रतिपादनं न तु केनाऽपि शास्त्रेण कार्य विधान जनेषु सुहृदां मित्राणां निपातनम् मार्णम् नासीत्। प्रथम पक्ष में सुहृद शब्द शब्दपरक है क्योंकि व्याकरण में शब्दों का निपातन होता है अर्थ का नहीं और जनशब्द में सुहृद शब्द अर्थपरक है अतः राज्य में कहीं भी मित्र द्रोह नहीं था। अदृशत्वं—आकाश कालदिक आत्मा मानसेषु एव जनेषु अदर्शनीयत्वं न सर्वेः जनाः दर्शनीयाः आसन्न इति। मिथ्योक्तिः—मिथ्या शब्दस्य पाठः अव्ययेषु जनेषु मिथ्या भाषणं न सविकल्पकत्व-ज्ञान विशेषेषु ज्ञानस्य विशेषाः भेदाः तेषु सविकल्पकत्वं जनेषु सविकल्पकत्वं विरुद्धकल्पकत्वं न आसीत् अयं घटः अयं पटः ये ज्ञान के भेद हैं। अयं घटः इत्यत्र घटत्व प्रकारकं घट विशेष्यक ज्ञान सविकल्पकं अर्थात् जहाँ पर विशेषण विशेष्य सहित ज्ञान होता है उसे सविकल्पक कहत हैं। विकल्प का अर्थ सन्देह भी होता है प्रजा में विकल्प का अभाव था, क्योंकि सुखी होने के कारण प्रजा को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। और जब चिन्ता नहीं थी तो संकल्प विकल्प की आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

सत्प्रतिपक्षत्वम्—यहाँ सभी पद न्यायदर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं। हेतुवद् आभासन्ते इति हेत्वाभासाः और अनुमिति प्रतिबन्धक यथार्थ ज्ञान विषयत्वं हेत्वाभासत्वम् अर्थात् जो अनुमिति द्वारा यथार्थ ज्ञान न होने दे उसे हेत्वाभास कहते हैं। यह हेत्वाभास सव्यभिचार-विरुद्ध-सत्प्रतिपक्ष-असिद्ध और वाधित भेद से पाँच प्रकार का होता है यस्य साध्याभाव साधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः। अर्थात् जिस हेतु के साध्य के अभाव को सिद्ध करने वाला दूसरा हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यमान हो उसे सत्प्रतिपक्ष कहते हैं जैसे शब्दो नित्य श्रावणत्वात् यहाँ पर शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् घटवत् यहाँ श्रावणत्व हेतु कृतकत्व हेतु द्वारा प्रतिपक्षित है। यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः अर्थात् जिस हेतु के साध्य का अभाव किसी अन्य प्रमाण से निश्चित हो बाधित कहते हैं। जैसे अग्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात्। यहां अनुष्णत्व साध्य है उसका अभाव उष्णत्व स्पार्शन प्रमाण से बाधित है। इस प्रकार इन दोनों की चर्चा केवल हेत्वाभासों की गणना में ही होती थी प्रजा में नहीं क्योंकि सन् विद्यमान प्रतिपक्षः प्रतिद्वन्द्वी शत्रुः यस्य सः तस्य अभावः विद्यते अर्थात् शत्रुओं का सर्वथा अभाव था। बाधासंजाता अस्य बाधितः। प्रजा में किसी प्रकार की पीड़ा भी नहीं थी।

दुःखद्वेषेति—न्यायदर्शन में गुण निरूपण करते समय चौबीस रूप रस गन्ध आदि गुणों की गणना की गई है प्रजा में दुख द्वेष आदि की भी गणना है प्रजा में दुख द्वेष आदि का सर्वथा अभाव था। आत्मेतिश्रुति स्मृति तथा वेदान्त आदि दर्शनों में ही आत्मा, परमात्मा सत्ता आदि का प्रतिपादन होता था। प्रजा में अपनी सज्जनता का प्रतिपादन स्वमुखेन नहीं होता था अर्थात् लोग आत्मशलाघा नहीं करते थे क्योंकि "इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः" यह नीतिवचन सभी लोग जानते थे। शिक्षा व्यवस्था आदि के कारण सभी शिष्ट और शास्त्रवेत्ता थे।

द्रव्याभावः—द्रव्य का अभाव बौद्ध दर्शन में ही था जनों में द्रव्य अर्थात् धन का अभाव नहीं था। बौद्ध दर्शन में पदार्थ मात्र की सत्ता मानी गई है नैयायिकोक्त द्रव्यों को यह नहीं स्वीकार करते "क्षणिक विज्ञान मयवादिनां बौद्धनां मते पदार्थमात्रस्य विज्ञानमयत्वात् द्रव्याभावः तेषां ग्रन्थेषु"।

प्रकृत्यन्यथाभावः—प्रकृति में विकार और चेतन पुरुष की निष्क्रियता केवल सांख्य दर्शन में ही सुनी जाती थी। सांख्याचार्य प्रकृति को परिणमनशील मानते हैं और उससे महान् अहङ्कार आदि की उत्पत्ति मानते हैं और पुरुष को पुष्कर पलाशवत् निर्लेप, निष्क्रिय और कर्तृत्व आदि से रहित मानते हैं कर्तृत्व आदि प्रकृति में रहता है। गीता भी कहती है—प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माण्यशेषतः। अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते"। पुरुष केवले चैतन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्र है परन्तु प्रजावर्ग के लोग उद्योगी तथा स्वकार्यरत थे। न्यूनमनस्कत्वम्—मन की परमाणु रूपता केवल वैशेषिक दर्शन में ही सुनी जाती थी क्योंकि इन्होंने मन को परमाणु रूप माना है, प्रजा में न्यूनमनस्कता अर्थात् अनुदारता नहीं थी। यथा राजा तथा प्रजा के आधार पर राजा उदार था तो प्रजा भी उदार थी। स्वत प्रामाण्याभावः—स्वतः प्रामाण्य का अभाव न्याय दर्शन में ही था। दार्शनिकों स्वतः प्रामाण्य और परतः प्रामाण्य में बड़ा विवाद चलता हैं। मीमासंक स्वतः प्रामाण्यवादी और नैयायिक परतः प्रामाण्यवादी हैं प्रजा में स्वतः प्रामाणिकता थी सत्यवादी होने के कारण उन्हें साक्षी आदि कीं कोई आवश्यकता नहीं पड़ती थी। उपनयत्यागः—जैमिनीय शास्त्र में ही उपनय था। न्यायदर्शन में पदार्थानुमानक पाँच अवयव प्रतिज्ञा-हेतु-उदाहरण, उपनय और निगमन बताये गये हैं जैसे पर्वतों वह्निमान प्रतिज्ञा है धूमवत्वात् हेतु, यथा महानस्य उदाहरण—तथा चागम् उपनय-तस्मात् तथा यह निगमन है। मीमांसा दर्शन में उपनय को छोड़कर शेष चार को स्वीकार किया गया है। परन्तु प्रजा में उपनय का त्याग नहीं था। जनेषु उपनयन—उपनयन संस्कारस्य, अन्येषु समीयागमनस्य त्यागः नासीत्। शरण में आये हुये व्यक्ति का परित्याग नहीं किया जाता था।

निरालम्बनता—निरालम्बनता परलोक को न मानने वाले नास्तिकों में दी थी प्रजा में सहाय राहित्य न था। मध्यमपुरुषेति—मध्यम पुरुष के दर्शन क्रियापदों के सिप्-थस्-थ प्रत्ययों में ही होते थे। प्रजा में मध्यम पुरुष का अभाव था क्योंकि नोत्कृष्टो नापकृष्टोऽन्तरितः क्लेशभाङ् मध्यमपुरुषो भवति। मध्य का सदैव कष्ट पात हैं "यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः। ताविमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यान्तरितो जनः" इति।

उपसर्गेतिः—उपसर्ग वाचक प्र, परा आदि क्रियावाचक शब्दों में ही था लोगों में उपसर्गाणाम्-उत्पातानां योग सम्बन्धः नासीत्। "अजन्यम् उत्पात उपसर्गः इति"। भागहीनत्वमिति—भागेनावययेन हीनानि भागहीनानि परमाणुवाकाशीदीनि नित्य द्रव्याणि, जनेषु भागेन स्वांशेन हीनत्व राहित्यं नासीत्। परमाणु आकाश आदि नित्य द्रव्य है यह अखण्ड और अवयव विहीन होते हैं। परार्थहरणमिति—परस्य अश्रूयमाणपदस्य अर्थहरणमर्थसा स्वीकारः समासादौ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनेषु परार्थं हरणम् परधनहरणं न समभवत् । परार्थहरण का अभिप्राय यह है कि 'राजपुरुष' इत्यादि वाक्यों में सम्बन्धार्थक षष्ठी विभक्ति का उच्चारण नहीं होता फिर भी समासादि वृत्ति के कारण सम्बन्ध अर्थ का प्रतिपादन हो जाता है। दोषोदयः इति—दोषाणां वातपित्तादीनामुदयः वृद्धिः वैद्यकग्रन्थेषु, जनेषु दोषाणां जड़ता मन्दतादीनामुदयः प्रादुर्भावः नासीत । अनुदात्तत्वम्—स्वरस्य प्रभेदे उदात्तानुदात्तादीनां भेदेऽस्ति जनेषु अनुदात्तत्वम् अनुदारत्वम् न ।

बहुवचनादर्शनमिति—पाणिनीय सूत्रों से तद्राज प्रत्ययों का विधान होता है। बहुवचन का अदर्शन (लोप) इन प्रत्ययों के बाद में रहने पर हो जाता है। प्रजा में ऐसा नहीं था क्योंकि शिक्षित होने के कारण सभी लोग आदर अर्थ में बहुवचन का प्रयोग करते थे। पदाभाव इति—पदस्य अभावः भ-सञ्ज्ञया बाधात् एव, जनेषु पदस्य स्थानस्य व्यवसायस्य रक्षणस्य अभावः राहित्यं न समभवत् । व्याकरण में यकारादि स्वरादि प्रत्ययों के रहने पर 'स्वादिष्वसर्वनाम-स्थाने" से प्राप्त पद संज्ञा का "यचिभम्" सूत्र के विहित 'भ' संज्ञा के द्वारा बाध हो जाता है। क्योंकि आकडारादेका संज्ञा यह व्याकरण नियम है। कडाराः कर्मधारय तक एक ही संज्ञा होती और और निरवकाशत्वेन भ संज्ञा हो होती है।

विकलत्वमिति—कलारहितत्वम् अङ्कभेदेऽङ्कविशेषे, जनेषु विकलत्वं कला-राहित्यं नासीत् । गणित में कला विकला की गणना होती थी। अङ्गहारः इति—अङ्गानाम् अवयावानां हारः विक्षेपः नाट्यकलासु आङ्गिकाभिनयेषु, जनेषु अङ्गानाम् अवयवानां हारः नाशः न सम्भवत् । 'अङ्गहारः अङ्गविक्षेपः" । असिद्धत्वमिति—असिद्धत्व व्याकरणशास्त्र के त्रिपादी सूत्रों में ही था जनेषु असिद्धत्वमकृत कार्यत्वं नासीत् । यहाँ पर कवि ने व्याकरण शास्त्र के विशिष्ट नियम की ओर सङ्केत किया है। पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं नियम 'पूर्वमासिद्धम्' के अनुसार जब ७ अध्याय और आठवें अध्याय के प्रथम अध्याय के सूत्र कोई विधान करते हैं तो शेष तीन पाद वाले सूत्रों से विहित कार्य असिद्ध हो जाता है।

विकरणान्वयः—विकरण का सम्बन्ध धातुओं में ही था, प्रजा में विश्व-स्तानां करणानामिद्रियाणामन्वयः सम्बन्धः न समभवत् । जो प्रत्यय प्रकृति और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यय में होती हैं उन्हें विकरण प्रत्यय कहते हैं जैसे धातु संज्ञक क्रियावाची शब्दों से तिप् आदि प्रत्यय कर लेने के अनन्तर "कर्तरिशप्" दिवादिभ्यः श्यन्' सार्वधातु के यक्, स्यतासी, आदि से क्रमशः जो शप्, श्यन्, यक्, स्य, तास, आदि प्रत्यय आते हैं वे विकरण प्रत्यय कहे जाते हैं। करण का अर्थ इन्द्रियां भी होता है इन्द्रिम् करणम् ऐसा दर्शन ग्रन्थों में माना गया है वहाँ वि उपसर्ग पूर्वक करण का अर्थ 'विध्वस्त इन्द्रियों' यह होगा। प्रजा में सभी पटुकरण थे अतः विकरण का योग प्रजा में नहीं था।

पुंवद्भावः—पुंसां तुल्यं पुंवत् तस्य भावः पुंवद्भावः, भाषित्पुंस्काः याः स्त्रियः स्त्रीप्रत्ययान्ताः तासु, जनेषु पुंवद्भावः पुरुषायितत्वं गर्भाशयविकारकत्वात्तस्य वर्जनीयत्वात् व्याकरण में इसका विचार समासवृत्ति में किया गया है जब भाषित्पुंस्क होता है और उत्तरपद स्त्री प्रत्ययान्त होता है तो समास में पूर्वपद को पुंवद्भाव हो जाता है जैसे रूपवती भार्या यस्य इस विग्रह में रूपवद् भार्यः यह समस्त पद होता है। यह पुंवद्भाव केवल व्याकरण शास्त्र में ही होता था प्रजा में इसका अभाव था। इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि प्रजावर्ग की स्त्रियों में पुंवद्भाव नहीं होता था ऐसा मानने पर ही सङ्गति बैठ सकती है क्योंकि स्त्री प्रत्ययान्त शब्दों में ही पुंवद्भाव होता है अतः यहाँ भी स्त्रियों में पुंवद्भाव का अभाव मानना चाहिये तभी स्त्री पुंवत् तद्धि गेहं विनष्टम्' यह नीति चरितार्थ हो सकती है। सदेनादेशः—संश्चासौ एनादेशः साधुत्वविशिष्ट एनादेशः, सन् विद्यमानः एनादेशो यस्य सः सदेनादेशः इत्याकारकः व्यपदेशः विशिष्टो व्यवहारः, न जनेषु सदा इनस्य नृपस्य आज्ञा यतो हि कुनृपे शासति सदा-इनादेशः इति व्यवहारः भवति सुनृपे न। व्याकरण में एतद् शब्द को एनप् आदेश होता है "द्वितीयाटौस्स्वेनः"। इसका अर्थ है इदम् और एतद् शब्द से परे द्वितीया तथा तृतीया के एक वचन तथा षष्ठी, सप्तमी के द्विवचन प्रत्यय आने पर इदम् और एतद् शब्द को एन आदेश हो जाता है अन्वादेश का प्रसंग होने पर। अन्वादेश का अर्थ पुनरुच्चारण होता है। किसी कार्य को स्वीकार कर लेने के अनन्तर दूसरे कार्य के निमित्त जब पुनः आदेश दिया जाय तो वह अन्वादेश कहा जाता है। जैसे अनेन व्याकरणमधीतं एनं छन्दोऽध्याय' यह पुनरुच्चारण व्याकरण में ही होता था प्रजा में नहीं क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्ट राजा के शासन में ही पुनः पुनः आदेश दिये जाते हैं सुराजा के शासन में ऐसी आज्ञायें नहीं होतीं "इनः सूर्ये प्रभो राज्ञि" से इनका अर्थ राजा भी होता है।

शून्यवाद—शून्यवाद का प्रचार बौद्धदर्शनों में ही था प्रजा में शून्यता नहीं थी। बौद्धाः सर्वं क्षणिकं स्वलक्षणं दुखं शून्यम् इति भावनाचतुष्टयेन स्वसिद्धान्तं समर्थयन्तः पर्यवसाने शून्यतां व्रजन्ति च प्राप्नुवन्ति अद्वैतं ब्रह्म। महापातकेति—ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह। इन पातकों का उल्लेख केवल स्मृति ग्रन्थों में ही था प्रजा में किसी ने महापातक किया हो ऐसा स्मरण नहीं होता था। व्यभिचारीति—निर्वेद आदि व्यभिचारी भावों का श्रवण केवल साहित्यशास्त्र में ही होता था प्रजा में अपराधियों का श्रवण नहीं होता था। राजा के धार्मिक होने के कारण व्यभिचार आदि का सर्वथा अभाव था। मिथ्यावसिति इति—मिथ्यावसिति केवल कविकृत अलङ्कारों में ही थी लोगों में असत्यभाषण विषयिणी बुद्धि नहीं थी। अध्यवसानम् अध्यवसितिः। अध्यवसायः बुद्धिः।

क्षीयमाणता निशीथिनीनायके, तमः स्पर्शः शर्वरीषु, मूलोच्छेदस्तरङ्गिणीतीरतरुषु, कलुषान्तरित्वमिन्द्रवारुणीफलेषु, उन्मत्तत्वं धत्तूरेषु, ग्रन्थिवाहुल्यं त्वचिसारेषु, कलाहीनत्वं कृष्णपक्षचन्द्रमसि, उग्रत्वं पार्वतीरमणे, मन्दत्वं शनैश्चरे, हा हा शब्दो गन्धर्वसंसदि, वामनपदं दिग्दन्तिनि, दुर्दिनं वर्षासु, सोष्मत्वं निदाघे, अवग्रहो दन्तिललाटेषु, परपुष्टत्वं कोकिलेषु, मधुपत्वं भ्रमरेषु, समत्सरत्वं मक्षिकापर्यायेषु, अगुरुत्वं द्रव्यविशेषे, कुटिलता कामिनीकुन्तलकलापेषु, सक्षतत्वं वरवर्णिनीबिम्बाधरेषु, बन्धस्थितिर्मोहनविलासेषु, सेतुसमुल्लङ्घनं वार्षिकजलेषु, सूचकत्वं शुभनिमित्तेषु, सुवर्णपरितापो भूषणविधानेषु, वारिमार्गभेदनं मत्तद्विरदेषु, विशृङ्खलगमनं तुरङ्गमेषु, मदान्धता स्तम्बेरमेषु, मलीमसत्वं कृपणेषु, विरोधासक्तिः कृपाणेषु, काठिन्यं कुरङ्गदृशां कुचकार्त्तस्वरकुम्भेषु, उद्वेगयोगस्ताम्बूलेषु, क्षामता युवतिमध्यदेशेषु, मानो मत्तकाशिनीषु, जाड्यं जलेषु, आश्रयाशत्वं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिरण्यरेतसि, नीचपथगमनं तरङ्गिणीषु, कण्टकवेधः केतकीदलेषु, नित्य-हानिः प्रत्यनीकेषु, पङ्कसम्बन्धो जलाशयेषु, पोतविनाशः समुद्रे, कुशब्दो भूमौ, भङ्गो हृदादिषु, करुणोत्पत्तिर्वनेषु, अमरकण्टकत्वं तीर्थविशेषे, आशा-रोधकत्व तिमिरे।

अनुवाद—क्षीयमाणता निशीथिनी नायक चन्द्रमा में ही थी। (लोगों में क्षीयमाणता अथवा अवनति नहीं हुई थी) तम (अन्धकार) का प्रवेश (केवल) रात्रि में ही होता था। (प्रजा में मूर्च्छा आदि रोग अथवा अज्ञान आदि का प्रवेश नहीं था।) मूलोच्छेद (केवल) नदियों के किनारे वाले वृक्षों में ही होता था। (प्रजा में धनाभाव के कारण किसी के वंश का अथवा सिद्धान्त का नाश नहीं होता था आन्तरिक कलुषता (केवल) इन्द्र और वारुणी नामक फलों में ही थी। (लोगों में आन्तरिक कलुषता का पूर्ण अभाव था), उन्मत्तता केवल धतूरों में ही थी (लोगों में उन्मत्तता मदान्धता नहीं थी)। ग्रन्थियों (गाँठों) का वाहुल्य (केवल) बांसों में ही था। (लोगों में सरलहृदयता के कारण ग्रन्थियों की अधिकता नहीं थी), कलाहीनता कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा में ही थी। (प्रजाओं में कलाहीनता नहीं थी) उग्र शब्द का प्रयोग (केवल) पार्वतीरमण शिव के सम्बन्ध में ही होता था। (प्रजा में उग्रता का अभाव था), मन्दता शनैश्चर में ही थी (प्रजा में मन्दता मूढ़ता आदि नहीं थी)। हा! हा! शब्द का प्रयोग गन्धर्वों की सभा में होता था (जनों में शोक के कारण हा हा वाचक शोक शब्दों का प्रयोग नहीं होता था), वामन पद का प्रयोग दिग्गज के लिये ही होता था (लोगों में कोई वामन अथवा खर्व नहीं था) दुर्दिन (केवल) वर्षा काल में ही होता था (प्रजा में दुःखदायक दिन नहीं होते थे) ऊष्मा केवल ग्रीष्म ऋतु में ही थी। (प्रजा में ऊष्मता अर्थात् अश्रुता नहीं थी कोई भी रोता नहीं था), अवग्रह पद का प्रयोग केवल गजों के मस्तक के लिये ही होता था (लोगों में अवग्रह अर्थात् अनावृष्टि की चर्चा नहीं होती थी), परपुष्टता अर्थात् दूसरों के द्वारा पालन पोषण कराना (केवल) कोयल में ही था (प्रजा में परपुष्टता नहीं थी अर्थात् सभी लोग अपने पुत्रादिकों का पालन पोषण करते थे), मधु पीने की इच्छा (केवल) भ्रमरों में ही थी (प्रजा में मद्यपान की इच्छा नहीं थी) मत्सरा का प्रयोग (केवल) मक्खियों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय में ही होता है (लोग दूसरों के शुभ कर्मों से द्वेष नहीं करते थे अर्थात् असहिष्णुता नहीं थी, अगुरुत्व तो केवल द्रव्य (तेज आकाश) आदि में ही था, (प्रजा में गौरव हीनता अर्थात् लघुता नहीं थी) अकुटिलता केवल कामिनियों के केश समूहों में ही थी (प्रजा मे कुटिलता नहीं थी), व्रणता (केवल) श्रेष्ठ स्त्रियों के बिम्बाधरों में ही थी (लोगों में व्रणता का अभाव था), बन्धन की स्थिति कामक्रीड़ा विलास में ही थी (प्रजा में कारागारादि बन्धन की स्थिति नहीं थी), सेतु का उल्लङ्घन (केवल) वर्षा के जल में ही होता था (प्रजा सेतु अर्थात् मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करती थी), स्पन्दन शुभ निमित्तों में ही होता था (प्रजा में सूचकता अर्थात् पिशुनता का अभाव था), सुवर्ण का परिताप (जलाना) केवल आभूषणों की रचना के लिये ही होता था, (लोगों में उत्तमवर्णों को दुःख नहीं था) अपने बन्धन की अर्गला आदि का भेदन केवल मतवाले गजों में ही होता था (लोग जलमार्ग का भेदन नहीं करते थे), उद्धत गमन (केवल) घोड़ों में ही था (प्रजा में उद्धत गमन अर्थात् उच्छृंखलता नहीं थी), मदान्धता केवल हाथियों में ही थी (प्रजा में मदान्धता नहीं थी) मलिनता केवल कृपणों (कायरों) में ही थी (प्रजा में कृपणता अर्थात् दान प्रवृत्ति का अभाव नहीं था), विरोध की आसक्ति (संयोग) केवल कृपणों में ही थी (प्रजा में विरोध के प्रति आसक्ति नहीं थी), कठिनता केवल मृगनयनी कामिनियों के स्तन रूप सुवर्ण कलशों में ही थी (लोगों में कठिनता का अभाव था) का उद्वेग अर्थात् सुपाड़ी का योग केवल ताम्बूल में ही होता था (प्रजा में उद्वेग नहीं था) क्षामता (कृशता) युवतियों के कटि प्रदेश में ही थी (लोगों में दुर्बलता नहीं थी), अहङ्कार (केवल) मतवाली अङ्गनाओं में ही था। (लोगों में नम्रता होने के कारण गर्व नहीं था), जड़ता (शीतलता) केवल जल में ही थी (प्रजा में जड़ता नहीं थी) आश्रय का भक्षण करने की प्रवृत्ति केवल अग्नि में ही थी (प्रजा में आश्रयघातकता नहीं थी), नीचपथ गमन (अर्थात् नीचे मार्ग की ओर प्रवाहित होना) केवल नदियों में ही होता था (प्रजा में क्षुद्र मार्ग अर्थात् कुमार्ग पर चलने की प्रवृत्ति नहीं थी), कण्टक वेध केवल केतकी के पत्तों में ही था (प्रजा में कण्टक वेध (पीड़ा) नहीं थी। नित्य हानि शत्रुओं की सेना में ही होती थी (प्रजा में नित्य हानि नहीं होती थी), पङ्क का सम्बन्ध केवल जलाशयों में ही होता था (प्रजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में पाप का सम्बन्ध नहीं था), पोत (जहाज) का विनाश अथवा अदर्शन समुद्र में ही होता था (प्रजा में पुत्रो का विनाश अर्थात् अकाल मरण नहीं होता था), कु शब्द का प्रयोग केवल पृथिवी के लिये ही होता था। (प्रजा में 'कु' (कुत्सित) सूचक शब्द का प्रयोग नहीं होता था), भङ्ग अर्थात् तरङ्ग केवल सरोवरों में ही थी (प्रजा में पराजय से उत्पन्न होने वाला ध्वंस नहीं होता था), करुण नामक वृक्ष की उत्पत्ति केवल जङ्गलों में ही होती थी (लोगों में करुणा अर्थात् शोक की उत्पत्ति नहीं होती थी), अमर कण्टक का प्रयोग केवल विशेष तीर्थ-स्थल के लिये ही होता था (लोगों में देवताओं से विरोध करने वाले नहीं थे), दिशाओं (आशा) का रोध करने की प्रवृत्ति केवल अन्धकार में ही (प्रजा में लोगों की आशाओं का रोध नहीं होता था)।

टिप्पणी—क्षीयमाणता—हीनमानत्वं निशीथः अस्य अस्ति इति निशीथिनी रात्रिः तस्याः नायके, जनेषु क्षीयमाणता दौर्बल्यं न सम्भवत् कृष्ण पक्ष की रात्रियों में ही चन्द्रमा क्षीण होता था प्रजा निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करती थी। मूलोच्छेदः तरङ्गाः सन्ति अस्यां तरङ्गिणी तस्याः तीरस्थेषु तरुषु मूलानाम् उच्छेदः जनेषु मूलस्य धनस्य वंशस्य ग्रन्थस्य उच्छेदः नाशः न सम्भवत्। त्वचिसारः वंशः इत्यर्थः उग्रत्वं शिवत्वं च शिवे जनेषु उग्रत्वं रौद्रत्वं न हा हा शब्दः गन्धर्वाणां सभायां जनेषु शोके हा हा शब्दः न। हा हा शब्द गन्धर्व विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। दुर्दिनं वर्षतौ जनेषु दुष्टं दुःखदायकं दिनं न। अवग्रहः—अवग्रः शब्द प्रयोग दन्तिनः ललाटेषु जनेषु अवग्रहः वृष्टि प्रतिबन्धः न सम्भवत्। अवग्रह का अर्थ हाथियों का मस्तक अवग्रहो वृष्टि रोधे प्रतिबन्धे गजालिके इति अवग्रहो ललाटं स्यात् इत्यमरे। वृष्टिवर्षं तद्विघातेऽवग्राहावग्रहौ समौ इति। परिपुष्टत्व परैः अन्यैः पुष्टाः तेषां भावः कोकिलेषु जनेषु न मधुपत्वं भ्रमरेषु जनेषु मद्यपान कतृत्यं न। मत्सरा का प्रयोग केवल मक्षिका के पर्याय रूप में होता था। क्योंकि मत्सरा मशका वर्वणा दंशः दंशी सर्घा पुत्तिका आदि मक्षिकाओं के भेद होते हैं। इसके अतिरिक्त मत्सरा मक्षिकायां स्यात् मात्सर्य क्रोधयो पुंमान्। असह्य परसम्पत्तौ कृपणं चाभिधेयवत् जनेषु अन्य कल्याणाऽसहिष्णुत्व नहीं था। अगुरुत्वं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि सु नव द्रव्येषु मध्ये पृथिव्यां जले च गुरुत्वम् अन्येषु द्रव्य भेदेषु गुरुत्वं न जनेषु कुत्राऽपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाघवन न किन्तु सर्वेषु गौरवं आदरः सम्भवत् । कामिनीनां केश पाशेषु कुटिलता जनेषु न । बन्धेषु स्थितिः अवस्थानं मोहन विलास क्रीडायां एव जनेषु बन्धे कारावासे स्थितिः न सेतु उल्लङ्घनं वर्षा भव जलेषु जनेषु मर्यादायाः अतिक्रमः न सुवर्णस्य परितापः भूषणानां रचनासु जनेषु उत्तम् वर्णानां दुःखं न वारिमार्ग भेदन मतवाले हाथियों में ही था लोगों में जल मार्ग का भेदन नहीं किया जाता था । शीघ्र गमन तुरङ्गमेषु जनेषु विश्रृंखलं गमनम् आचारः व्यवहारः न । मदोन् उन्मत्वं गजेषु जनेषु न मलिनता कृपणेषु जनेषु न विरोध कर्मिकासक्तिः शत्रु घातन रूपं खड्गेषु जनेषु विशेषस्य वैरस्य आसक्तिः न उद्वेगस्य (सुपाड़ी इति फलस्य) योगः ताम्बूलेषु जनेषु उश्रमस्य सम्बन्धा न । छामता तनुता तरुणीनाम् उदरेषु जनेषु दुर्बलता न मानः अहङ्कारः मत्ताः काशन्ते इति मत्यकाशन्य मत्ताङ्गनाः तासु न जनेषु गर्वः विनीतत्वात् आश्रयाशत्वं आश्रयं स्व अधिष्ठान् अश्नाति इति आश्रयाशः तस्य भावः ।

आश्रयता सा अग्नौ अग्नि का स्वभाव होता है कि वह जिस पर आश्रित रहती है उसी का भक्षण करने लगती है इसीलिए अग्नि को आश्रयाशः कहा जाता है । आश्रयाशः बृहद् भानुः कृशानुः पावको अनलः । नीच पथः निम्न सरणिः तेन गमनं नदीषु जनेषु कुमार्ग प्रवृत्तिः न नित्य हानिः शत्रु अनीकेषु जनेषु न । पङ्कस्य सम्बन्धः सरोवरेषु जनेषु पङ्कस्य पापस्य सम्बन्धा न पङ्कम् पापं कल्मशं इति । पोतस्य विनाशः अदर्शन समुद्रे विशिष्टम् अदर्शनं विनाशः स च समुद्रे मुद्रा सहिते समुद्र शब्दः श्लिष्टः मुद्रया बिना यात्रा असम्भवात् पोतस्य अरभकस्य विनाशः अकाल मरणं जनेषु न यहाँ पर विनाश का अर्थ दूरगामी होने के कारण अदर्शन मानना चाहिए । अमङ्गल होने के कारण ध्वप अर्थ नहीं । पोत का अर्थ जहाज और बालक होता है । पोतः शिशौ बहित्रे च इति । कुशब्दस्य प्रयोगः भूमौ कुः पृथ्वी इति वचनात् जनेषु कुत्सित शब्दस्य प्रयोगो न करुणस्य उत्पत्तिः अर्थात् करुण नामक वृक्षस्य उद्भव. काननेषु लक्षणया करुणस्य शोकस्य उत्पत्ति जनेषु न अमराणां कंटकाः शत्रवः तेषां भावः जनेषु न किन्तु तीर्थ विशेषे एव आशानां दिशां रोधकत्वं तिमिरे जनेषु आशायाः बाधकत्वं न ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साक्षिकूटता शिवविरञ्चिस्कन्देषु, पञ्चत्वं रुद्रमुखेषु, सगदत्वं मधुसूदने, परलोकासहिष्णुत्वं वीरेषु अनिर्मुक्तत्वं भुजङ्गेषु, अभ्युदितत्वं भास्वति, निराकृतित्वं वैरिस्त्रीषु, निस्त्रिंशत्वं कृपाणेषु, मुष्टिबन्धो धनुराकर्षणेषु, गुणत्यागो मार्गणेषु, त्रपानाशः कामावस्थासु, मलिम्लुचत्वं मासभेदे, निर्ग्रन्थित्वं भिक्षुविशेषेषु, बकवृत्तित्वं तडागेषु, शूलित्वं त्रिनेत्रे,—

अनुवाद—साक्षिरूप में अनृत का व्यवहार शिव-पार्वती की द्यूतक्रीड़ा में, शिवलिङ्ग का अन्तिम दर्शन करने वाले के रूप में ब्रह्मा में, अथवा गणेश के साथ शस्त्र प्रयोग करने वाले स्कन्द में ही अथवा आखों की अधिकता केवल शिव-ब्रह्मा और षडानन में ही थी (प्रजा में साक्षी गवाह अनृत का व्यवहार नहीं करते थे) पञ्चत्व अर्थात् पञ्चाननत्व केवल रुद्र के मुखों में ही था (प्रजा में बालक और तरुणों के पञ्चभौतिक शरीर का पञ्चत्व (विनाश) नहीं होता था) गदाधर केवल मधुसूदन (विष्णु) के लिये ही प्रयुक्त होता है (प्रजा में गद (रोग) का संयोग नहीं था) शत्रुओं के प्रति असहिष्णुता केवल वीरों में ही थी (प्रजा में परलोक (लोकान्तर) स्वर्गलोक आदि के प्रति असहिष्णुता नहीं थी) अनिर्मुक्तत्व केवल सापों में ही था (प्रजा मोतियों के आभूषणों से युक्त थी अथवा सांसारिक कर्मबन्धनों से मुक्त थी) अभ्युदयत्व अर्थात् उदयाचल पर अभ्युदय सूर्य में ही थी (लोगों में सूर्योदयकालिक स्वापत्व नहीं था अर्थात् लोग सूर्योदय होने पर नहीं सोते थे) निराकृतित्व अर्थात् आभूषणादि सौन्दर्य प्रसाधनों का रहितत्व केवल शत्रुओं की स्त्रियों में ही था (प्रजा में स्वाध्याय रहितत्व नहीं था सभी लोग स्वाध्याय में निरत थे), क्रूरता तलवारों में ही थी (लोग निर्दयी नहीं थे), मुष्टिबन्धन धनुष खींचने में ही होता था (लोगों में अदानशीलता नहीं थी), गुण (प्रत्यञ्चा) का त्याग बाणों में ही था (लोगों में गुण त्याग नहीं था) लज्जा का परित्याग कामावस्था में ही होता था (प्रजा में लज्जा का अभाव नहीं था अथवा त्रपा (कुलटा) का दर्शन नहीं होता था), मलिम्लुचत्व केवल महीनों के भेदों में ही था (प्रजा में चोरी का भाव नहीं था) निर्ग्रन्थिता (बन्धनभय के राहित्य का अभिमान) बौद्ध भिक्षुओं में ही था (लोगों में स्वच्छन्दता नहीं थी) बकवृत्तिता (अर्थात् बगुलों का अस्तित्व) तडागों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में ही था (प्रजा में बक वृत्तिता नहीं थी अर्थात् आडम्बर आदि नहीं था) शूली पद का प्रयोग केवल त्रिनेत्र अर्थात् शिव के लिये होता था (लोगों में शूल रोग की पीड़ा का अभाव था)—

टिप्पणी—साक्षित्वे कूटता अनृत व्यवहारः द्यूत क्रीडासु शिव लिङ्गान्त दर्शने चतुरानने, गणेशेन्, सः शस्त्र प्रयोगे स्कन्दे प्रसिद्धः जनेषु अनृत भाषणं न। पञ्चत्वं शिवमुखेषु जनेषु पञ्चत्वं मरणम् अकाल मरणं न अर्थात् प्रजा में बाल तरुण और प्रौढ़ पञ्चत्व को नहीं प्राप्त होते थे। पञ्चभौतिक शरीर का ध्वंस होना पञ्चत्व कहा जाता है। गदया सहितः मधुसूदनः एव प्रजा गदेन रोगेण सहितः न परे च ते लोका परलोकाः शत्रवः तान् न सहते तस्यः भावः वीरेषु जनेषु लोकान्तरा सहिष्णुता ना आसीत्। अनिर्मुक्तत्वं भुजङ्गेषु प्रजासु न। साँप निर्मुक्त और अनिर्मुक्त दोनों रूप में रहता है जब अपनी केचुल छोड़ देता है तो निर्मुक्त अन्यथा अनिर्मुक्त। निर्मुक्तो मुक्त कञ्चुकः'। जनेषु निर्गता मुक्ता एभ्यः ते निर्मुक्ताः मुक्ता रहिताः अतिशयेन निर्मुक्ताः अनिर्मुक्ताः मुक्ता फल रहिता न अथवा निःशेषेण मुक्ताः निर्मुक्ताः कर्मबन्धन रहिताः न ते अनिर्मुक्ताः बद्धाः न आसन् इति। अभितः उदितः तस्य भावः सूर्ये जनेषु सूर्योदय कालिक स्वापत्वं न। निर्गता मण्डनादि चेष्टा यासां ता तासां भावः शत्रु स्त्रीषु जनेषु स्वाध्याय रहितत्वं न आस्वाध्यायः निराकृति इत्यमरः। मुष्टि-बन्धः धनुऽकर्षणेषु जनेषु आदात्रिता न मार्गणेषु बाणेषु गुणत्यागः अन्यत्र न जनेषु सौर्यादीनां गुणानां त्यागः न। यहाँ पर गुण पद का प्रयोग अनेकार्थक है। जैसे—गणक गुणन फल का त्याग नहीं करते थे मीमांसक प्रधान अङ्ग का त्याग नहीं करते थे, वैयाकरण उपेन्द्रः आदि में गुण का त्याग नहीं करते थे। सांख्य में सत्व रजस तमस का त्याग नहीं था नीतिज्ञ सन्धि गुणों आदि का त्याग नहीं करते थे। त्रपा लज्जा तस्याः नाशः कामावस्थासु अन्यत्र न त्रपा का अर्थ त्रपा लज्जा कुलटयोः के आधार पर कुलटा भी होता है। जब त्रपा शब्द के द्वारा कुलटा अर्थ ग्रहण किया जायेगा तो त्रपा अनाशः यह सन्धि विच्छेद होगा अर्थात् त्रपायाः अनाशः दर्शनं न आसीत्। समय की चोरी महीनों में ही थी प्रजा में नहीं जब अधिक मास या मल मास या जिसे लौंद कहते हैं होता है तो उसका निर्माण समय की चोरी से होता है। अर्थात् अमावस्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की समाप्ति के अनन्तर प्रतिपदा में अमावस्या की घटी व्यतीत होने पर जो समय बचता है उसे मलि कहते हैं यही संचित होते हुए तीसरे वर्ष में अधिमास हो जाता है।

गौणार्थपरिग्रहः शब्देषु न क्रियासु, पृष्ठदर्शनं सामप्रयोगेषु न संगरेषु, नीविमोक्षः सुरतोत्सवेषु न वणिक्षु, अहष्टपर्वत्वं विशिखत्वं च सायकेषु न तत्तद्विहितक्रियापरेषु, निःश्वासाविर्भावो रतक्रीडासु न शोकोदयेषु, करग्रहणं विवाहविधिषु न ब्राह्मणेषु, दाननिवृत्तिर्दीक्षितेषु न कार्पण्यग्रस्तेषु, करपीडा सुन्दरीस्तनकोरकेषु न प्रजासु, पत्रभङ्गः कामिनीकपोलतलेषु न संग्रामाडम्बरेषु, सन्ध्यावर्जनं विपक्षेषु नातिपन्नकालेषु, स्वपक्षस्थापन-प्रयासः शास्त्रकथासु न व्यवहारेषु, क्षुद्रासङ्गो मधुमक्षिकानामसु न कार्येषु, उत्पातदर्शनं मल्लयुद्धप्रचारेषु नान्तरिक्षादिषु, याञ्चानिरासो मानिनीषु न दातृषु, अश्लीलभाषणमश्वमेधविधिषु रतप्रयोगेषु च न सद्गोष्ठीषु, द्विजपरीक्षणं लक्षणविचारेषु न दानेषु, श्रुतिलङ्घनं वधूनां कटाक्षेषु न जनेषु समभवन् ॥८॥

अनुवाद—गौण अर्थ का ग्रहण शब्दों में ही होता था क्रियाओं में नहीं, पृष्ठदर्शन सामवेद के प्रयोग में ही होता था लोग युद्ध में पीठ नहीं दिखाते थे, नीवी के मोक्ष की इच्छा रतिकाल में ही होती थी, वणिजों में मूल धन का परित्याग नहीं होता था, पर्व अर्थात् ग्रन्थियों का राहित्य तथा तीक्ष्णता बाणों में ही थी संक्रान्ति आदि विहित पर्वों का राहित्य तथा शिखा विहीनता प्रजा में नहीं थी, निःश्वासों का आविर्भाव रतिक्रीडा में ही होता था शोक आदि के कारण नहीं होता था, कर ग्रहण विवाह आदि विधियों में ही होता था, ब्राह्मणों से कर ग्रहण नहीं किया जाता था, दान की निवृत्ति दीक्षितों में ही थी कृपणता के कारण नहीं, करपीडा सुन्दरियों के स्तनरूपी कलियों में ही थी प्रजा में कर पीडा नहीं थी, पत्रभङ्ग केवल कामिनियों के कपोल भागों में ही होता था संग्राम आदि में सवारियों का भङ्ग भेदन त्रोटन नहीं होता था, सन्धि का सम्पादन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शत्रुओं में ही होता था उचित समय पर सन्ध्योपासन विधि का वर्जन नहीं होता था, अपने पक्ष की स्थापना का प्रयास कथा अर्थात् बाद में ही होता था व्यवहार में अपने पक्ष के स्थापन का प्रयास नहीं होता था अपितु यथार्थ कथन किया जाता था, क्षुद्रा आदि का साहचर्य मधुमक्खियों की नाम गणना में ही था पुरुष प्रयत्न साध्य कार्यों में विकलाङ्गों का सहयोग नहीं लिया जाता था, उत्पात अर्थात् उछाल का प्रदर्शन मल्लयुद्ध की प्रक्रिया में ही था अन्तरिक्ष में उत्पातों का दर्शन नहीं होता था, प्रार्थना का निरास अर्थात् निराकरण मानवती स्त्रियों में ही था दाताओं की याचना का निराकरण नहीं होता था, अश्लील भाषण अश्व में यज्ञ के विधान में रतिप्रयोग में ही होता था विद्वानों की सभाओं में नहीं, ब्राह्मणों के कुल शील आदि का परीक्षण (अथवा पक्षियों का परीक्षण लक्षण विचार चर्चा में श्राद्ध आदि में ही होता था दान आदि में द्विज परीक्षण नहीं होता था, श्रुति अर्थात् कानों का उल्लंघन वधुओं के कटाक्षों में ही होता था लोगों में वेद आदि का उल्लंघन नहीं हुआ ॥८।

टिप्पणी—गौण अर्थ का ग्रहण शब्द में ही होता था क्रिया में नहीं अर्थ मुख्य और गौण भेद से दो प्रकार का होता है साक्षात् संकेतित अर्थ, मुख्य और प्रयोग में विचित्रता लाने के लिए मुख्यार्थ बाध होने पर सादृश्यादि सम्बन्ध भेद से जब किसी अन्य अर्थ की प्रतीति होती है तो वह गौण होता है। अर्थात् गुणात् सादृश्यात् आगतः गौणः। यह अर्थ वाच्यार्थ के बाधित हो जाने पर ही ग्रहण किया जाता है। प्रजा में अपनी कार्यसिद्धि के लिए अप्रधान वस्तु का संग्रह नहीं होता था, मुख्यार्थ से ही कार्यसिद्धि हो जाती थी। पृष्ठदर्शनं साम्प्रयोगेषु संग्रामेषु पृष्ठदर्शनं न नीव्याः मोक्षः रतिकालेषु एव वणिजेषु मूल-धनस्य त्यागः न नीवी स्त्री कटी वस्त्र बन्धने मूल द्रव्ये परियेण इति कोषः। ग्रन्थियों का न दिखाई पड़ना और तीक्ष्णता केवल बाणों में ही थी वेद विहित कार्यों में नहीं अमावस्या अष्टमी पौर्णमासी चतुर्दशी और संक्रान्ति काल पर्व माने जाते हैं। इनमें यज्ञ दान व्रत उपवास आदि क्रियायें शिखा युक्त ही कर सकते हैं। अतः प्रजा इन सब पर्वों को जानने वाली थी और सशिखा थी। सन्ध्यावर्जनं—सन्धेः आवर्जनं सम्पादनं विपक्षेषु अत्यन्त प्राप्त कालेषु सन्ध्या वर्जनम् न। अर्थात् सन्धि का सम्पादन पराजय के डर से शत्रु ही करते थे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उचित समय पर सन्ध्या आदि का वर्जन नहीं था। प्रातः सन्ध्यां जपन् तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात् पश्चिमाम् तु समासीनः सम्यक् रिक्ष विभावनात् इति उक्तेषु कालेषु सन्ध्योपासन वर्जनं न। सुशासक के राज्य में सभी यह जानते थे कि "नानु तिष्टत् यः पूर्वाम् नोपासते यश्च पश्चिमाम्। सा शूद्रवत् वहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः इति।" स्वपक्षस्य स्थापने प्रयासः शास्त्रकथासु परार्थ ग्रहणेच्छया न मधुमक्षिका नामक ग्रहणेषु एव क्षुद्रासंगः प्रजासु क्षुद्राणां विकलाङ्गानाम् सहवासः न सम्भवत्। आयुर्वेद शास्त्र में भ्रमर वटर पुत्तिका क्षुद्रा आदि मक्खियों के नाम बताये गये हैं। उत्पादर्शनम्—उत्पतनम् उत्पातः तस्य दर्शनं मल्लयुद्धस्य प्रक्रियासु अन्तिरिक्षे दिवि भूमौ च न सम्भवत् दर्शनम्। उत्पाताः त्रिविधाः दिव्य अन्तरिक्ष और भूमि सम्बन्धी धूमकेतु आदि उत्पात् दिव्य विद्युत् आतप आदि अन्तरिक्ष भूकम्प आदि पृथ्वी के उत्पात् माने जाते हैं प्राणियों के शुभ और अशुभ बताने वाले पञ्चभौतिक विकार उत्पात कहे जाते हैं।

याचनं याञ्चा प्रार्थना तस्याः निराशः निराकरणं मानवतीसु धनिसु दानिसु याञ्चा निराकरणं न यतो हि दानमेकम् कलौयुगे दानं दुरित नाशनं इति स्मृति वचनम्। श्रियं शोभाम् सभायोग्यां लाति यद्वेस्त वचनं च तत् श्रीलम् न श्रीलम् अश्रीलं तत् त्रिविधं लज्जा दुःख अमङ्गलकत्वात् तस्य अर्थस्य भाषणं स्फुटीकरणम् अश्वमेध आदि क्रियासु सज्जनानां गोष्ठीसु न द्विजस्य परितः तपस्यया विद्ययया कुलेन शीलेन सदाचारेण च परीक्षण श्राद्धकल्पादयेषु दानेषु द्विजातीनां परीक्षणं न श्रुतेः श्रवणस्य लंघनम् विशाल लोचनत्वात् बधूनां कटाक्षेषु एव जनेषु श्रुतेः वेदस्य तथा तद् विहित वर्णाश्रमाचारस्य अतिक्रमणं लंघनम् न सम्भवत् ॥८॥

यश्च भगवतो महेन्द्रस्य वयस्यतया प्रवृत्ते देवासुरसन्निपाते नारायण इव निखिलदुर्जयान्दानवेन्द्रान्कथावशेषत्वमनैषीत् ॥९॥

यस्यैकोऽपि प्रतापो युगपदेवदेव वैरिसीमन्तिनीहृदयेषु पाताले, विपक्षराजरमणीहृदयेषु भूतले प्राज्ज्वलत् ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवाद—जिस राजा ने देवताओं और असुरों में संघर्ष प्रारम्भ होने पर भगवान इन्द्र का मित्र होने के कारण नारायण के समान सम्पूर्ण कठिनाई से जीते जाने योग्य दानवेन्द्रो कथाविशेष मात्र बना दिया ॥९॥

जिसका प्रताप पाताल में रहने वाली देवताओं के शत्रुओं की स्त्रियों के हृदय में, और पृथ्वी पर रहने वाली शत्रु राजाओं की स्त्रियों के हृदय में एक साथ जल उठा ॥१०॥

टिप्पणी—अधुना राजराजेश्वरस्य कविः प्रतापपराक्रमौ वर्णयति। देवासुरेति=देवाश्च असुराश्चदेवासुराः तेषां सन्निपाते प्रवृत्ते समुत्पन्ने सति। भगवतः=ऐश्वर्यवतः महेन्द्रस्य=इन्द्रस्य, वणस्पतया=मित्रत्वेन, नारायण इव =विष्णुरिव, निखिलैः दुर्जयन् दानवानाम् इन्द्राः तान् कथावशेषाः येषां ते, तेषां भावः तत्वं कथावशेषत्वम्। अनैषीत्=प्रापयत् ॥९॥

यस्य राजराजशेखरस्य प्रतापः युगदेव=एकवारमेव देववैरीणां या सीमन्तिन्यो नार्यस्तासां मनसि पातालेऽधोलोके, त्रिपक्षाणां शत्रूणां राज्ञां रमणीनां स्त्रीणां मनसि भूतले पृथिवी मण्डले प्रकर्षेणाज्वलत् ॥१०॥

देवीवर्णनम्

तस्य च–सरस्वतीवाश्रितचतुराननना, श्रीरिव प्रोल्लसितपद्मकरा, गौरीव भूभृद्वरोत्पन्ना, देवसेनेव बहुलापत्त्यार्हा, पौलोमीवानुभूतशतमखा, लोपामुद्रेव कान्तागस्त्यानवक्षोभवा, रतिरिव पञ्चबाणसञ्चरणभूमिः, सीतेवानधिगतयोनिसङ्करा, अरुन्धतीवाविर्भूतरूपशक्तिः, लङ्केन्द्रदयितेव मन्दोदरी, तारेव प्राप्तसुग्रीवा, द्रौपदीव लब्धवेदिमध्या, रेणुकेव रामाभ्यर्हिता, सञ्ज्ञेव स्वप्रतिनिधीकृतस्त्र्यन्तरा, छायेव सञ्ज्ञानुरूपा, सत्यवतीवोल्लसितव्यासचित्राङ्गदा, अम्बालिकेवाश्रितधृतराष्ट्रा, शकुन्तलेव सदाशुभरता, देवयानीव काव्यजन्मभूमिः, सन्ध्यावलीवाधिगतरुक्माङ्गदा, विनतेवारुणजनिरसज्ञा, रुक्मिणीव मन्मथजननी, प्रभावतीव रतिकान्तानु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्ता, उषेव प्रियानिरुद्धा, सुभद्रेव जिष्णुदयिता, उत्तरेव परीक्षितलब्धपूर्वभावा, रोहिणीव चन्द्रसुन्दरमुखी–महादेवी मलयवती नामासीत् ॥११॥

अनुवाद—उस राजा राजशेखर की ब्रह्मा का आश्रयण करने वाली सरस्वती के समान सुन्दर, मधुर और औदार्य पूर्ण विनिश्चित वाणी बोलने वाली, विकसित कमलों से सुशोभित हाथों वाली के समान कमलों के समान हाथो वाली, पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय से उत्पन्न हुई गौरी के समान राजाओं में सर्वश्रेष्ठ राजा से उत्पन्न, बहुत माताओं से अर्थात् छः कृत्तिकाओं से उत्पन्न कार्तिकेय के योग्य देवताओं की सेना के समान श्रेष्ठ पुत्रों को उत्पन्न करने के योग्य, शतमख-इन्द्र का अनुगमन करने वाली इन्द्राणी के समान सहस्रों यज्ञों का अनुभव करने वाली, प्रियपति अगस्त्य के द्वारा रक्षित स्तनों वाली लोपामुद्रा के समान अपने प्रिय वल्लभ के मर्दन से फूले हुये वक्षस्थल वाली, कामदेव के संचरण स्थान वाली रति के समान अतिसुन्दरी होने के कारण कामोद्दीपन करने वाली, अयोनिज होने से उत्पन्न होने वाले कष्ट का अनुभव न करने वाली सीता के समान शुद्ध महाकुल में उत्पन्न होने वाली, रूपशक्ति नामक पुत्र को उत्पन्न करने वाली, अरुन्धती के समान प्रकटित रूप की शक्ति वाली अतिशय सुन्दरी अथवा प्रभावोत्साह आदि शक्ति से युक्त अथवा उपासना के द्वारा दुर्गा को प्रसन्न करने वाली, रावण पत्नी मन्दोदरी के समान मन्द-कृश उदर अर्थात् क्षीणकटि वाली, सुग्रीव को प्राप्त करने वाली तारा के समान सुन्दर कम्बु (शङ्ख) के समान ग्रीवा वाली, वेदी के मध्य उत्पन्न हुई द्रौपदी के समान अंगूठी के मध्यभाग के समान कटि प्रदेश वाली, राम (परशुराम) से पूजित रेणुका के समान मनोरमा स्त्रियों में अग्रगण्य अथवा सुन्दर स्त्रियों के मध्य प्रतिनिधित्व प्राप्त करने वाली, दूसरी स्त्री को अपना प्रतिनिधि के रूप में रखने वाली सूर्यपत्नी सञ्ज्ञा के समान समस्त स्त्रियों में प्रधान, संज्ञा के अनुरूप सूर्य पत्नी छाया के समान सभी ऋतु में सुख प्रदान करने वाली, व्याम और चित्राङ्गद से सुशोभित सत्यवती के समान विस्तृत और अद्भुत केयूरों को धारण करने वाली, धृतराष्ट्र का पुत्र रूप में पालन पोषण करने वाली अम्बालिका के समान सभी ओर से राष्ट्र को स्थित करने में राजा को सहायता प्रदान करने वाली अथवा आश्रितों का पालन पोषण करने वाली विद्वान् और क्षिप्रकारी अर्थात् अज्ञाकारी भरत को उत्पन्न करने वाली शकुन्तला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के समान सदा शुभ कार्यों में संलग्न रहने वाली, शुक्राचार्य से उत्पन्न होने वाली ययाति पत्नी देवयानी के समान काव्यों को जन्म देने वाली, रुक्माङ्गद पुत्र को उत्पन्न करने वाली सन्ध्यावलि के समान सुवर्ण कङ्कणों से युक्त, अरुण को उत्पन्न करने के सुख का अनुभव करने वाली, विनता के समान मञ्जीठ की लालिमा के सुख का अनुभव करने वाली, कामदेव को उत्पन्न करने वाली, रुक्मिणी के समान कामोद्दीपक, प्रद्युम्न में अनुरक्त प्रभावती के समान अपने प्रियकान्त में अनुरक्त, अनिरुद्ध की प्रिया उषा के समान प्रिय को निवारित न करने वाली अर्थात् सदैव प्रसन्न रखने वाली, अर्जुन पत्नी सुभद्रा के समान भयनशील राजा की प्रिया, परीक्षित को उत्पन्न करने वाली उत्तरा के समान समस्त पत्नियों में राजमहिषी पद को प्राप्त करने वाली, चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी के समान सुन्दर मुखवाली मलयवती नाम वाली महादेवी थी ॥११॥

टिप्पणी—इस पदच्छेद में राजा के प्रताप पराक्रम तथा शासन आदि की अवस्था का वर्णन करने के अनन्तर तदनुरूप राजमहिषी का वर्णन किया गया है। तस्य राज्ञः राजशेखरस्य मलयवती नाम महादेवी आसीत् यह प्रधान वाक्य है। इसमें स्त्री प्रत्यान्त पद मलयवती के विशेषण हैं द्वितीय पदों में सर्वत्र श्लेष है।

सरस्वतीव—आश्रतः चतुराननः यया सा आश्रतं चतुरम् आननं मुखं यस्या सा मलयवती। प्रकर्षेण उल्लसितं पदमं करे यस्या सा प्रोल्लसितं पदममिव करौ यस्या देव्याः सा। भूभृतानां वरः पर्वतराजः तस्मात् उत्पन्नः गौरी इव भूभृतां वरः नृपः तस्मात् उत्पन्ना महादेवी। बहुलानाम् अपत्यं तस्य अर्हा योग्या बहुलानां सेना इव बहुलान् अपत्यानि तेषाम् अर्हा योग्या देवी। कार्तिकेय का जन्म छः कृतिकाओं से माना जाता है। और इन्होंने देवताओं की सेना का सेनापतित्व करके तारकासुर का वध किया था। अनुभूतः सत मखः इन्द्रः यया सेव अनुभूताः बहवा मखा यया सा देवी। लोपामुद्रा कान्तः प्रियः कान्तस्यः यस्याः सा आनौ पालकौ स्तनौ यस्याः सा लोपामुद्रा। देवी तु कान्तस्य कामसा अपराधेन मर्दनादिना अस्त्याना वच्छूनौ स्तनौ यस्या सा। पञ्चबाणस्य संचरणस्य भूमिः स्थानं देवीतु परम सौन्दर्यात् कामस्योद्दीपन पात्रम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीतेव—न अधिगतः संसरण जन्यः शङ्करः क्लेषः यया सा । न अधिगतः शुद्ध वंश जत्वात् योनि शाङ्कर्यम् यया सा । आविर्भूतः शक्ति नामकः पुत्रः यस्या सा आविर्भूता रूपस्य शक्तिः यस्या सा देवी, आविर्भूत रूपा शक्तिः सामर्थ्यम् यस्या यया वा अथवा उपासनया प्रकटीकृत दुर्गा वा । लङ्केन्द्रस्य दयिता प्रिया इव मन्दम् उदरं यस्या सा मन्दोदरी कृशोदरी इत्यर्थः । प्राप्तः सुग्रीवः यया सा, प्राप्ता सुग्रीवा शोभना ग्रीवा यया सा देवी । लब्धम् वेदेः मध्यमं यया सा, लब्धम् प्राप्तं जन्मतः जत्नतश्च वेद्या अङ्ग लिमुद्राया मध्यमम् इव मध्यम् यया सा देवी । रामेण पूजिता रेणुका इव रामाभिः स्त्रीभिः अभ्यरहिता प्रशस्ता । स्वस्याः पतिनिधी कृतम् अन्यास्त्री छाया यथा सा, स्वस्याः प्रतिनिधी कृतान स्त्री अन्तराणि यया सा । सर्वाषां स्त्रीणां मध्ये मुख्या । संज्ञायाः प्रतिकृतिः, संज्ञा सदृशी सूर्यपत्नी छाया इव मलयवती तु नामानुरूपा । सत्यवती योजन गन्धा इव उल्लसितौ व्यास चित्राङ्गदौ पुत्रौ यस्या सा, उल्लसितं शोभितं व्यासेन चित्रा अङ्गदं यस्यासा । आश्रितः धृतराष्ट्रः यया सा, आसमनतात् श्रतं सेवितं धृतं राष्ट्रं यया अथवा आश्रतैः सेवकैः धृतं राष्ट्रं राज्यभारः यस्या सा अथवा आश्रितानां शरणागतानां धृतं राष्ट्रं यया सा । काशिराज की तीन पुत्रियों का हरण भीष्म ने कर लिया था । जिनमें से एक का विवाह चित्रवीर्य के साथ हो गया था । इसी अम्बालिका ने धृतराष्ट्र का पालन-पोषण किया था । सन सुधीः आशु क्षिप्रकारिः भरतः सुतो यस्या सा शकुन्तला तथैव मलयवती सदा सुभेषु मङ्गलेषु रतातत्परा । शुक्राचार्य को उत्पन्न करने वाली देवयानी के समान कविता को उत्पन्न करने वाली मलयवती । अधिगतः रुक्माङ्गदः पुत्रो यया सा, अधिगतं लब्धं रुक्मस्य अङ्गदं केयूरं यया सा मलयवती । कामस्य प्रद्युम्नस्य जननी रुक्मिणी इव कामोद्दीपिका । रत्याः कान्ते प्रद्युम्ने अनुरक्ता प्रभावती इव रतौ, कान्तें अनुरक्ता देवी । प्रियः अनिरुद्धः यस्याः सा, प्रियः अनिरुद्धः यया सा मलयवती । जिष्णु पार्थः दयितः यस्या सा सुभद्रा इव, जनयशील दयितः वल्लभः यस्या सा देवी अथवा जिष्णु इन्द्रः दयितः गतिः इष्टदेवः यस्या सा । परीक्षिति लब्धः प्राप्तः पूर्वं भावः यया सा तादृशी उत्तरा अथवा परितः क्षियति निवसति परीक्षिति अथवा परितः सर्वतः क्षितिः, देवी तु क्षितौ इति परीक्षिति सर्वस्यां भूमौ लब्धः प्राप्तः राजमहिषीणां भावः यया सा । चन्द्रार्थम् सुन्दरं मुखं यस्या सा रोहिणी इव चन्द्र इव सुन्दरं मुखं यस्या सा महादेवी कृताभिषेका मलयवतीनाम आसीत् ॥११॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्रिगुणा

तथैव च—वैयाकरणत्वादेव सन्धिविग्रहतत्त्वज्ञः, हयशास्त्रविज्ञानादेव निर्णीतयानरहस्यः, नृसिंहत्वादेव प्राप्तद्वैधीभावः, योगागमबोधादेवासनसारकोविदः, सर्वाश्रयणीयत्वादेव लब्धाश्रयभावः, वसिष्ठ इव सम्यगुन्नीतशक्तिः, बृहस्पतिरिव विबुधगुरुः, भार्गव इव कविपदवाच्यः, सर्वविदिव साक्षात्कृतपराभिप्रायः, उद्गातेव सामप्रयोगाभिज्ञः, वारण इव दानोत्पत्तिभूः वैशेषिक इव निर्ज्ञातभेदपरमार्थः, ग्रहपतिरिव नित्यानुगतदण्डो द्वादशमण्डलगतिश्च, साङ्ख्य इवाभ्युपगतपुरुषभेदः, द्वितीयमिव राज्ञो हृदयं, मूर्तिमानिव विश्वासः, तादाम्यमिव नरेन्द्रस्य, आश्रयान्तरमिव राजबुद्धानाम्, उत्पत्तिस्थानभेद इव राजाज्ञायाः, हेतुद्वैतमिव प्रतिपक्षराजभीतीनां, विषयभेद इव लोकानुरागाणाम्, अपकर्षनिरूपकावध्यन्तरमिव सामन्तानाम्, उद्देश्यान्तरमिव राजप्रणामानां प्रधानामात्यो बुद्धिनिधिसञ्ज्ञः समभूत् ॥१२॥

देवी मालती जिस प्रकार बहुगुणवती थी, उसी प्रकार उनका प्रधानमंत्री बुद्धिनिधि भी था, उस बात को बताते हुये कहते हैं—और उसी प्रकार वैयाकरण (व्याकरणशास्त्रज्ञ) होने के कारण ही सन्धि और विग्रह के तत्त्व को जानने वाला (जिस प्रकार नीतिशास्त्र में शत्रु के साथ समय पड़ने पर कभी भूम्यादि के निमित्त से सन्धि और कभी विग्रह-वैर करने का विधान होता है, उसी प्रकार व्याकरण शास्त्र में पूर्वापर वर्णों में वृद्धि-गुण-दीर्घ-पूर्वरूप-पररूपादि सन्धियाँ और उनका विग्रह—सन्धि विच्छेद, अथवा समास-विग्रह का विधान होता है। बुद्धिनिधि दोनों शास्त्रों के सन्धि और विग्रह तत्त्वों को जानता था।), अश्वविद्या के विज्ञान से ही वाहन के रहस्य को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानने वाला, नृसिंह—मनुष्यों में सिंहवत् श्रेष्ठ होने के कारण प्रकर्ष रूप से द्वैधी भाव—भेदनीति को जानने वाला (नृसिंह जिस प्रकार वक्षस्थल से ऊपर सिंहरूप तथा अधस्तात् नररूप होने के कारण दो प्रकार के आकार को प्राप्त था, वैसे ही बुद्धिनिधि द्वैधीभाव अर्थात् भेदनीति में निपुण था), योगशास्त्र के बोध से ही आसनों के सार में कुशल (जिस प्रकार योगशास्त्र में 'स्थिर सुखयासनम्' इत्यादि रूप से आसनविद्या विहित है, वैसे ही राजनीतिशास्त्र में षाड्गुण्य के भीतर बताये जाने वाले स्वदुर्गसज्जीकरण रूप स्वस्थानस्थिरीकरणात्मक उपवेशन का विधान है, बुद्धिनिधि इन दोनों का विद्वान् था, इसलिये उसे आसनसारकोविद कहा गया है।), सबके द्वारा आश्रय के योग्य होने के कारण ही आश्रयभाव को प्राप्त हुआ अर्थात् षाड्गुण्य के प्रयोग में चतुर, वसिष्ठ के समान अच्छी प्रकार से शक्ति (वसिष्ठ पक्ष में तनुत्र, राजपक्ष में प्रभाव-उत्साह-मन्त्ररूप राजबल) को बढ़ाने वाला, बृहस्पति के समान विबुधों (देवों तथा विद्वानों) का गुरु, भार्गव अर्थात् शुक्राचार्य के समान कवि शब्द से बोध्य (जिस प्रकार शुक्राचार्य का एक नाम कवि भी है, उसी प्रकार बुद्धिनिधि भी कवि—कविताशक्तिसम्पन्न थे), अतीतानागतवर्त्तमानव्यवहितविप्रकृष्टादि सब को जानने में समर्थ योगी अथवा सर्वज्ञ शिव के समान शत्रु के अभिप्राय को साक्षात् (गुप्तचरों के द्वारा 'प्रत्यक्षं हि चारैः पश्यन्ति राजानः' इस न्याय से) जानने वाला, उदात्तरूप से गाने वाले सामवेदज्ञ की भाँति साम (सान्त्व नीति) के प्रयोग को जानने वाला (साम शब्द में श्लेष है सामवेद पक्ष में साम शब्द सामवेदीय मन्त्रों का वाचक है और राजनीति पक्ष में यह शब्द साम-दान-भेद-दण्ड उपाय चतुष्टयों में से प्रथम उपाय का वाचक है), वारण (हस्ती) के समान दान को उत्पन्न करने वाला (जिस प्रकार हस्ती दानवारि को उत्पन्न करता है, वैसे ही बुद्धिनिधि दान-वितरणकर्त्ता अर्थात् दानी था) वैशेषिकशास्त्र को जानने वाले के समान निश्शेष रूप से भेद द्वारा परमार्थ को जानने वाला (जिस प्रकार वैशेषिक में एक परमाणु का अन्य परमाणु से भेद विशेष के कारण जाना जाता है, वैसे ही बुद्धिनिधि भी भेदनीति के द्वारा पर—शत्रुओं की मा—लक्ष्मी को अर्थ अर्थात् प्राप्त करने में निपुण था।) ग्रहों के स्वामी सूर्य के समान सदा दण्डानुगत (अर्थात् सूर्य पक्ष में कालानुगत राजनीति पक्ष में यष्टि, अश्व, सेना, व्यूह रचना या दण्डनीति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अनुगमन करने वाला) और बारह मण्डलों में गति वाला (सूर्य मेषादि द्वादश राशियों में संक्रमण करता है, बुद्धिनिधि अधीनस्थ द्वादश राजाओं के मण्डलों में गतिव—बोध अथवा गमनागमन वाला था अथवा अपनी रक्षा सर्वोपरि होती है, इस दृष्टि से द्वादश-मण्डल-गति से अभिप्राय आत्मरक्षा करने वाले बारह कुत्तों को शरण देने वाला भी लिया जा सकता है), सांख्यशास्त्र को जानने वाले के समान पुरुषों के भेद को स्वीकार करने वाला (सांख्य दर्शन में 'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्' (सांख्यदर्शन १-१४९) इत्यादि द्वारा पुरुषों को अनेक प्रतिपादित किया गया है, उसी प्रकार बुद्धिनिधि भी स्व-पर-पुरुषों के भेद को जानने वाला था), राजा का मानो दूसरा हृदय अर्थात् अत्यन्त प्रिय, विश्वास की मानो मूर्ति, राजा का मानो तादात्म्य अर्थात् अभिन्न मित्र, राजा की बुद्धियों का मानो दूसरा आश्रय, राजा की आज्ञा का उत्पत्तिस्थान का भेद रूप राजा अथवा मंत्री की आज्ञा में स्वरूपतः भेद न होकर केवल कर्त्तृत्व भेद था—यह आशय है), शत्रु राजाओं के भय का हेतु द्वैत अर्थात् उपादान और निमित्त-कारण, लोगों के अनुरोगों का मानो विषय भेद, मण्डलेश्वर सामन्तों के अपकर्ष को निरूपित करने वाला मानो दूसरी अवधि, (अर्थात् सामन्त राजशेखर से छोटे थे, तो बुद्धिनिधि से भी छोटे थे।), राजा के प्रति किये गये प्रणामों—नमस्कारों का मानो दूसरा ही उद्देश्य (राजा को प्रणाम करने का जो फल होता था, वही बुद्धिनिधि को प्रणाम करने से भी प्राप्त हो जाता था, इसलिये कहा गया है—उद्देश्यान्तरम्० इत्यादि), राजा का प्रधानमन्त्री बुद्धिनिधि नामक हुआ ॥१२॥

— —

अव्याहताज्ञत्ववर्णनम्

तस्य च राज्ञो वशीकृताखिलपरिपन्थिसार्थस्य-उद्गमन-शीलेव सुरलोके, गुरुत्ववतीवपाताले, संग्रहस्वभावेव पर्वत-तटेषु, प्रसारिणीवभूमौ, प्लवननिसर्गेव समुद्रेषु—न क्वचि-दपि व्यहन्यन्त काचिदाज्ञा ॥१३॥

और सम्पूर्ण शत्रु वर्ग को वश में किये हुये उस राजा (राजशेखर) की,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवलोक में मानो ऊपर को जाने वाली, पाताललोक में गुरुत्व (भारीपन) वाली वस्तु के समान, पर्वत के प्रान्तों में सम्यग् ग्रहण करने के स्वभाव वाली सी, भूलोक में फैलने वाली सी, समुद्रों में तैरने के स्वभाव वाली सी, कोई भी आज्ञा कहीं भी व्याहत—अवरोधयुक्त नहीं हुई, (आज्ञा का परिपालन हो जाना ही राजा के प्रताप का सबसे बड़ा प्रयोजन होता है, वैसा ही सफलाज्ञा वाला प्रतापी राजा राजशेखर था—यह कवि के वर्णन का अभिप्राय है।) ॥१३॥

———

कीर्तिवर्णनम्

कार्त्तिककुमुदबान्धवकौमुदीवोध्यगिरिशिखरेषु, चन्दनद्रवधारेव मलयवप्रेषु, सुरासुरसमान्दोलितक्षुभितक्षीरोदधिप्रवाहपरम्परेवमन्दरसानुषु, तुषारराजिरिव गिरिराजप्रस्थेषु, दुग्धाब्धिकायव्यूह इव जलनिधिषु, श्वेतद्वीपतादात्म्यमिव द्वीपान्तरेषु, प्रनृत्तहरहाससन्ततिरिव कैलासभूमिषु, जाह्नव्यभेद इव नद्यन्तरेषु, शेषभोगकान्तिप्रचय इव पाताले, कुमुददलानवस्थेव कुमुदाकरेषु, ऐरावतरुचोनामाश्रयव्यभिचार इवामरावत्यां, चन्द्रमसः स्ववैरनिर्यातनमिव राक्षसराजनगर्यां, जलीयरूपाद्वैतमिववरुणलोके, त्रिनयनसारूप्यमिव राजराजराजधान्यां, रूपान्तराणां सजातीयसृष्टिविच्छेदमिवाभिभवमिव लोपमिवायोग्यतामिव सन्निकर्षप्रतिबन्धमिव साक्षात्कारसामग्रीवैकल्यमिवोपेक्षामिव विस्मृतिमिवोत्पत्तिस्वरूपायोग्यतामिव युगपत्परिवृत्तिमिव, द्रव्याणां रूपान्तरनिरूपित कारणताप्रत्याख्यानमिव, शौक्ल्यस्यैकव्यक्तिकत्वमिव, रूपत्वस्य जातित्वनिरासमिव, सर्वद्रव्याणामभेदमिव,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोषाणां पीतत्वादिभ्रमजनकत्वव्युदासमिवाश्रयप्रत्यक्षं विनैव नानासंख्यजलपरमाणुरूपचाक्षुषमिवेन्धनादिरूपस्य वह्निरूपाभिभवशक्तिप्रत्यादेशमिव, कालिन्दीजलेषु श्वैत्याभावशङ्कानवकाशमिवं, पृथिव्याः सामान्यरूपवत्तानिराकरणमिव विरचयन्ती कीर्त्तिरभ्युदलसत् ॥१४॥

उस राजा की कीर्ति उल्लसित हुई—इस अर्थ के साथ प्रत्येक वाक्य का सम्बन्ध है। उदयाचल के शिखरों में कार्त्तिक मास के चन्द्रमा की स्वच्छ चाँदनी के समान, मलयाचल की पहाड़ियों में चन्दन के रस की धारा के समान (सर्वत्र सुगन्धि बिखेरने वाली—जिस प्रकार चन्दन की धारा हो वैसे ही सर्वत्र फैलने वाली राजशेखर की कीर्ति हुई—यह अभिप्राय है।) मन्दराचल की चोटियों में देव और असुरों के द्वारा किये गये मन्थन के कारण हलचल को प्राप्त हुये क्षीरसागर की धाराओं की पंक्ति के समान, पर्वतराज हिमालय के शिखरों में हिम की श्रेणी के समान, समुद्रों में क्षीर समुद्र के शरीरसमूह के समान, अन्य जम्बू आदि द्वीपों में श्वेतद्वीप के तादात्म्य अर्थात् अभेद के समान, कैलास पर्वत के स्थलों में नृत्य के लिये प्रवृत्त हुये शिव के अट्टहास की परम्परा के समान, गंगा से भिन्न नदियों में गंगा के अभेद—तादात्म्य के समान, पाताल लोक में शेषनाग के शरीर की कान्ति के समूह के समान, कुमुदों अर्थात् श्वेतपद्मों के तालाबों में श्वेतपद्मपत्रों के अनवस्थान के समान, इन्द्र की नगरी अमरावती में ऐरावत नामक इन्द्र के श्वेत हस्ती की कान्तियों के आश्रय अर्थात् समवायिकारणभूत आधार के व्यभिचार (अर्थात् सर्वत्र प्रसार के द्वारा अतिक्रमण) के समान (ऐरावत में विद्यमान श्वेत दीप्तियों के सर्वत्र अमरावती में प्रसार होने पर जिस प्रकार आश्रयव्यभिचार होता है, उसके समान राजा की कीर्ति भी स्वस्थान से अन्यत्र फैलने के कारण आश्रयव्यभिचार वाली है), राक्षसों के राजा राहु या रावण की तमोमयी अथवा लंका नगरी में चन्द्रमा के द्वारा चाँदनी बिखेरने से अपने शत्रुभूत राहु अथवा रावण के तिरस्करण के समान, जलेश वरुण के लोक में जलीयरूप—आभास्वर शुक्लता के अभेद के समान, राजों के राजा कुबेर की राजधानी में त्रिनेत्रधारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिव की सरूपता के समान, नील-पति-रक्त-कपिश-कृष्ण-कुर्बुर नामक अन्य छः रूपों के समान जातीय ब्रह्मा की सृष्टि के अभाव को मानो रचती हुई, (द्वितीयान्त पदों का विरचयन्ती पद के साथ, आगे इसी प्रकार सम्बन्ध द्रष्टव्य है), मानो तिरस्कार को, मानो लोप को, मानो अयोग्यता को, मानो विषयेन्द्रिय सम्बन्ध के प्रतिबन्ध को, मानो साक्षात्कार अर्थात् चाक्षुष प्रत्यक्ष की सामग्री—प्रकाश के संयोगादि के विरह को, मानो उदासीनता को मानो विस्मृति को, मानो उत्पत्ति के स्वरूप की योग्यता के अभाव को (मानो अन्य रूप उत्पत्ति के योग्य नहीं हैं—ऐसा रचती हुई, यह आशय है), मानो एक साथ ही अन्य रूपों के शुक्लत्वादि के विनिमय को, मानो पृथिव्यादि द्रव्यों में रहने वाली नीलादिरूपनिष्ठकार्यता से निरूपित जो कारणता है, उसका खण्डन करने वाली, मानो शुक्लत्व के व्यक्ति से अभेद को, मानो रूपत्व के धर्म के निराकरण को (मानो रूपनिष्ठ धर्म के रूपपद जन्य बोध विषयीभूत प्रकार के निराकरण को नीलादि के अभाव से रूपत्व का शुक्लमात्रवृत्तित्व के कारण अनुगत न हो सकने के कारण जातित्व नहीं है—यह भाव है) मानो सारे द्रव्यों के (श्वेत होने के कारण) अभेद को, मानो पित्तवातकफ नामक दोषों के शंख आदि में पीतत्व बुद्धिरूप भ्रमजनकता के उच्छेद को, मानो आश्रयों (आधारों) के प्रत्यक्ष के बिना ही अनेकों असंख्य जल-परमाणुओं के रूपों के नेत्र द्वारा साक्षात्कार को (आश्रय के प्रत्यक्ष के बिना तद्गत रूप का प्रत्यक्ष नहीं होता—यह नियम है। नैयायिक लोग परमाणुओं में महत्व धर्म के न होने के कारण रूप नहीं मानते किन्तु परमाणुओं के संघात में महत्व के उद्भव होने से रूप को स्वीकार करते हैं, इसलिये षड्विध प्रत्यक्ष में विषयनिष्ठ महत्व की कारणता होने से परमाणुओं का प्रत्यक्ष नहीं होता, अतएव आश्रय के प्रत्यक्ष के बिना आश्रयगत रूप का प्रत्यक्ष नहीं होता), मानो काष्ठ, बत्ती, तेलादि ईंधन के रक्त-नील-पीतादिरूप के द्वारा अग्नि के भास्वर शुक्ल रूप के तिरस्करण की शक्ति के निराकरण को, मानो यमुना के जल में श्वेत्य के अभाव के सन्देह के अनवसर को, और मानो पृथिवी के सामान्य रूपवत्ता अर्थात् सात प्रकार की रूपवत्ता के निराकरण को करती हुई, राजा राजशेखर की कीर्ति सर्वत्र सुशोभित हुई ॥१४॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्रभवनवर्णनम्

केवलान्वयिधर्मस्येव न कोऽपि विपक्षतामाततान, परन्तु सपक्षतामेव, सर्वेषु गुणागणेषु त्रिभुवनवर्तिनः पदार्थाउपमेयतामेवानुभवितुं योग्यतां दधुर्न पुनरूपमानताम् ॥१५॥

केवलान्वयी धर्म के समान कोई भी विपक्षता को नहीं फैलाता था (जिस प्रकार ज्ञेयत्व, वाच्यत्व, प्रमेयत्वादि के पदार्थ मात्र वृत्ति होने के कारण उनके विरुद्ध अज्ञेयत्व, अवाच्यत्व, अप्रमेयत्वादि धर्मों के अभाव होने से केवलान्वयिता है। क्योंकि केवल एक के अन्वय अर्थात् सम्बन्ध वाला और व्यतिरिक से रहित केवलान्वयी कहलाता है।) उसी प्रकार राजशेखर का भी कोई भी विपक्षता अर्थात् प्रतिद्वन्द्विता को पैदा करने वाला नहीं हुआ, किन्तु सभी उसके सपक्ष वाले ही बने। सम्पूर्ण गुणों के समूहों में, तीन लोकों में रहने वाले पदार्थ उपमेयता (न्यूनंगुणवत्ता) का ही अनुभव करने की योग्यता को धारण करते थे, न कि उपमानता (अधिकगुणवत्ता) को। अर्थात् बल-बुद्धि-कृतज्ञता-शौर्य-उदारता आदि गुणों में राजशेखर के समान अमुक है—ऐसा प्रयोग होता था, न कि राजशेखर किसी अन्य के समान था—ऐसा ॥१५॥

तस्यैवजातीयकविविशेषशालिनोऽपि पुत्रानुत्पत्तिकृता, हतशेषपातालपलायितदानवेन्द्रनिवर्हणविषयिणी चेति द्वयी चिन्ता चेतसि पदं बबन्ध ॥१६॥

इस प्रकार की विशेषता वाले होते हुये भी उसकी (राजा राजशेखर की) पुत्र की अनुत्पत्ति के कारण, तथा मारे हुओं में से बचे हुये और भागकर पाताल में गये हुये बड़े-बड़े दानवों के विनाश के विषय वाली ये दो चिन्तायें चित्त में लगी रहीं ॥१६॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकदा तु-सद्वृत्तमिव स्तम्भरहितं, कुलपालिकाहृदयमिव पुरुषान्तरप्रवेशहीनं, पण्डितमिवानिगूढपदान्तरप्रचारं, ब्रह्ममुखमिव मन्त्रोत्पत्ति स्थानम्, अध्वरस्थलमिव सुघटितवेदकं, जीवन्मुक्तमिव प्रपञ्चासक्तिमुक्तं, निशासमयमिवपतंगहीनं, प्रयोगविशेषमिवशब्दनिर्गमप्रतिबन्धकं, सत्काव्यमिव शीघ्रज्ञेयान्तरम्, अन्यप्रवेशानर्हतया सिंहाक्रान्तमिव-समुद्रमिव-पातालविवरमिव-तप्त्वरहसं स्थानमध्यासीनो राजा दत्तावधानं बुद्धिनिधिमवदत् ॥१७॥

एक बार की बात है सच्चरित्र के समान स्तम्भरहित (स्तम्भ शब्द यहाँ श्लिष्टार्थक है, सज्जनों के चरित्र-पक्ष में जड़ता से रहित, तथा स्थान पक्ष में खूंटे-खम्भे से भी रहित अर्थात् एकान्त स्थान—यह दो अर्थ 'स्तम्भौ स्थूणजडीभावौ' इस अमरकोशीय वचन से लिये गये हैं।) कुलीन स्त्री के हृदय के समान अन्य पुरुष के प्रवेश से रहित, पण्डित के समान अन्य पदों के प्रचार को न छिपाये हुये (जिस प्रकार पण्डित जन में सुबन्ततिङन्तरूप पदों का प्रचार प्रोच्चार, प्रकर्ष उच्चारण छिपा न होकर प्रकट रहता है, वैसे ही दूसरों के पैरों के प्रचार—गति को अनिगूढ़—न छिपाने वाले अर्थात् जनसंचार से रहित एकान्त स्थान में), ब्रह्मा के मुख के समान मन्त्र की उत्पत्ति का स्थान (अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्मा के मुख से ऋग्यजुः सामाथर्व वेद मन्त्रों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मन्त्र—गोपनीय कर्त्तव्य-विचारों की उत्पत्ति का वह स्थान था।) यज्ञभूमि के समान सुन्दर रूप से बनाई गई वेदी (चबूतरा) वाले, जीवन्मुक्त के समान प्रपञ्च की आशक्ति से रहित (जिस प्रकार जीवन्मुक्त शुकदेवादि प्रपञ्च अर्थात् संसार की आसक्ति से रहित थे, उसी प्रकार सचिव, आदि के विस्तार से रहित वह स्थान था।), रात्रिकाल के समान पतंग (सूर्य—रात्रि पक्ष में, शलभ—स्थान पक्ष में) से हीन, प्रयोग विशेष के समान शब्द के निकलने का अवरोधक (जिस प्रकार मानस जप आदि उपांशु प्रयोगों में शब्द का मुख से उच्चारण अवरुद्ध होता है, वैसे ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस स्थान में भी उच्चरित शब्दध्वनि फुड्यादि से अवरुद्ध रहने के कारण बाहर नहीं जा सकती थी ।), सुन्दर प्रसाद गुण युक्त काव्य के समान शीघ्र ही ज्ञेयान्तर वाले (जिस प्रकार सत्काव्य शब्द बोध के अन्तन्तर शीघ्र अर्थ का ज्ञान करा देता है, उसी प्रकार वह प्रतप्तरहस स्थान भी शीघ्र ही व्यवधान का बोध कराने वाले था ।) अन्य राजमंत्रियों के प्रवेश के अयोग्य होने से सिंह के आक्रमण अर्थात् अधिष्ठान के समय, समुद्र के समान, पाताल के छिद्र के समान, प्रभावशाली प्रतापी एकान्तता वाले स्थान में बैठा हुआ राजा ध्यान देकर बात सुनने वाले प्रधानमन्त्री बुद्धिनिधि से कहना लगा ॥१७॥

मन्त्रणम्

विज्ञातमप्येतदार्यस्य स्मार्यते इह किल कर्मणामविच्छेदेन प्रतायमाने संसारे जीवानां सुखदःखान्यतरभोगाय तदनुरूपशरीरपरिग्रहः समुल्लसति, तत्र च मनुष्यभिन्नाः सर्वेऽपि प्राणिनः पूर्वोपार्जितकर्मसन्तानोपनीत सुखाद्यनुभवमात्रव्यापारिणोऽनन्तरकर्मोत्पत्तिप्रबन्धविकलाश्च, मनुष्याणां तु प्राग्भावीयकर्मभोगो विधिनिषेधाधिकारश्च, तत्रापि त्रैवर्णिकानामेव स भूयो विषयकोऽन्येषान्तु प्रतिनियतकर्मस्वेव, तत्र चोत्पत्तिसमय एव ऋणत्रयमनुबध्नाति । तत्र च यागस्वाध्यायदिकर्मसाध्य ऋणद्वयापनोद इति धर्मशास्त्रविदोऽभ्युपगच्छन्ति, स तु ममापि प्रायेण सञ्जात एव, यत्तु पित्र्यं तृतीयमृणं तत्पुत्रमात्रपरिहार्यमिति तद्बद्धोऽहं सकलातिशायिनीमपि सम्पदमिमां न बहुमन्ये, सम्पदो हि चलप्रायाः कालक्रमेणाविर्भवन्ति तिरोभवन्ति च, तासां हि सद्भावे सुखविशेषोऽभावे तु न कश्चिदप्यनिष्टलेशः, उत्तरोत्तरोत्कर्ष-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रस्ता एव हि संसारे सर्वोत्कर्षाः, तदभिज्ञातलोकतत्त्वानां कियान् सम्पत्सु बहुमानावकाशः, यत्तु स्वभावेनानिष्टजनकं तत्रैव महतामादरोपनिबन्ध उचितः, विजातीयानां च कर्मणां प्रतिनियतफलजननस्वभावतया एकस्योत्तमफलसत्त्वेऽन्येनापि तादृशेन भवितव्यमेवेति निणयस्तु न भ्रान्तेतरस्य हृदयमधिरोहति, यच्च युधि निर्जिता अपि महेन्द्रवैरिणो दानवेन्द्राः पलाय्य पातालमधिवसन्ति यदपि किञ्चिदिव शल्यमनुहरति, यतोऽग्निरिपुरोगाणां शेषोऽपि पुनरभिवृद्धिमासाद्य महते खेदाय कल्पत इति चिन्ताद्वयं विषयान्तरसञ्चारप्रतिबन्धपूर्वकं समुल्लसतीति—एवमभिधाय विरतवचसि राजनि राजनीतिकुशलो गुरुरिवार्थाऽनपेतपदप्रायमवादीत्—चिरं निरूप्यमाणोऽपि न स कश्चिदस्ति विषयो यो देवस्य बुद्धे—राज्ञायाश्च गोचरतां नानुभवति, तथापि देवस्येच्छाप्रतिहतिवारणार्थमेव मम वचनपरम्परा; तथा हि—न्यातावदियं द्वितीया चिन्ता देवस्य हृदयेऽभ्युदयमासादयति तस्या ईषत्कर एव प्रतीकारः, न हि दानवानां दुर्जयत्वमत्रनिदानं स्वर्गमपहायापक्रमणेन सर्वविदितेन दुर्जयत्वस्यैवासिद्धत्वात्, नापि तेषां पुनरुत्कर्षशङ्का, पूर्वकाल एव तैस्तृणीकृताखिलोपाया का नाम माया नाऽमायि, प्रबललोकालोकितोऽपि को वा लोको न विकल कृतः, मोघीकृतसर्वशस्त्रं किं महदस्त्रं न स्वहस्तीकृतं, जगत्त्रयेऽपि सर्वाभ्यर्हितः को वा सुपर्वा न गर्वापहीनोविहितः, अधिजन्यभूमि को वा राजन्यः स्वजन्यभङ्गाविषयः स्थापितः, अतिचिरत्नमपि किं नाम रत्नं प्रय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्नबलान्नस्वायत्तमारचितम्, यदि चैदादृशप्रभावभूमयोपि ते देवेन पराजितास्तत्किमतः परिमपि ते उत्कर्षान्तरमासादयन्ति, येन तेषां दुरुच्छेदत्वशङ्काकलङ्कसङ्करः सम्भवेत् ॥१८॥

माननीय (आप) को विदित ही है, यहाँ पर तो केवल याद दिलाई जाती है कि कर्मों की निरन्तरता से विस्तृत होने वाले इस संसार में जीवात्माओं को सुख-दुःख या दोनों में से किसी एक के भोग के लिये, कर्मों के अनुकूल शरीर को धारण करना पड़ता है, और उसमें मनुष्यों से भिन्न सारे प्राणी पूर्व जन्म में कमाये गये कर्मों को परम्परा के द्वारा प्राप्त होने वाले सुख-दुःख आदि के अनुभव मात्र की चेष्टा वाले तथा आगे के लिये शुभ या अशुभ किसी प्रकार के कर्मों की उत्पत्ति कर सकने में असमर्थ होते हैं, किन्तु मनुष्यों के पूर्वजन्म में किये गये कर्मों का वर्तमान जन्म में फलोपभोग तथा वर्तमान में भी कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों में विधि-निषेध का अधिकार होता है। उनमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीन वर्णों का इस प्रकार का अधिकार अन्यों की अपेक्षा अधिक विषय वाला होता है, अन्यों का तो स्व-स्व परम्परा प्राप्त शिल्प विद्या और त्रैवर्णिकों की सेवा-शुश्रूषा आदि प्रतिनियत कर्मों में ही अधिकार होता है, सब श्रौत-स्मार्त कर्मों में नहीं। और उन त्रैवर्णिकों में तो उत्पत्ति के समय से ही देव-ऋषि-पितृ-गत तीन ऋणों से सम्बन्ध जुड़ जाता है। (कर्म का बन्धन जन्म का कारण होता है, और इन तीन ऋणों को चुकाये बिना मोक्ष का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।) और उन तीनों ऋणों में याग (ज्योतिष्टोमादि), स्वाध्याय (स्ववेदशाखा का अध्ययनाध्यापन) इत्यादि कर्म के द्वारा सिद्ध होने वाला दो ऋणों (देव ऋण तथा ऋषि ऋण) का अपाकरण है, ऐसा मन्वादिधर्मशास्त्र को जानने वाले मानते हैं। यह दो ऋणों का अपनोदन तो मेरा भी प्रायः हो ही चुका है, जो यह तीसरा पितृ-ऋण है वह केवल पुत्र द्वारा ही दूर किया जा सकता है। इस कारण से मैं इस ऋण से बंधा हुआ हूं और सर्वांश से भी बढ़कर इस उपभोग की जा रही सम्पत्ति (राजलक्ष्मी) को अधिक आदर से नहीं देखता क्योंकि सम्पत्तियाँ प्रायः अस्थिर और चञ्चल होती हैं, समय के परिवर्तन के साथ आती और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती रहती हैं, उनके होने पर विशेष सुख और न होने पर कोई थोड़ा सा भी दुःख नहीं होता, क्योंकि संसार में सारे उत्कर्ष (उन्नतियाँ) अगले-अगले बड़े-बड़े उत्कर्षों से ग्रस्त (निगीर्ण) रहते हैं। इसलिये संसार के तत्त्व को यथार्थ रूप से जानने वाले विद्वानों का सम्पत्तियों में कितना अत्यादर का अवकाश रहता है, अर्थात् कुछ भी आदर नहीं होता। (अतः अनिष्ट की निवृत्ति जिससे हो उसी में अत्यादर, श्रद्धा होनी चाहिये—इस बात को प्रतिपादित करते हुये कहते हैं) जो वस्तु या कर्म स्वभाव से अनिष्ट (अशुभ) को उत्पन्न करने वाला हो, उसी के निवारण में बड़े लोगों का आदरातिशय होना उचित है। विरुद्ध प्रकार के कर्मों के विषय में तो प्रत्येक कर्म का तदनुसार नियत फल पैदा होने के स्वभाव के कारण एक कर्म का अभीष्ट फल मिल जाने पर, दूसरे कर्म का भी वैसा ही फल होना चाहिये—इस प्रकार का निर्णय भ्रम से रहित बुद्धिमान् के मन में नहीं बैठ सकता। और जो युद्ध में देवों के द्वारा परास्त होने पर भी, इन्द्र के शत्रु असुर भागकर पाताल लोक में निवास कर रहे हैं, वह भी कुछ दुःख दे ही रहा है। क्योंकि अग्नि शत्रु और रोगों का बचा हुआ थोड़ा सा भी अंश फिर बढ़ जाने पर महान् कष्ट का कारण बनता है। इस प्रकार की दो चिन्तायें (पुत्र का न पैदा होना और शत्रुओं का शेष रहना रूप) अन्य विषयों में संचरण को रोकती हुई, उद्भूत हो रही हैं—इतनी बात को कहने पर चुप हुये राजा से, राजनीति में निपुण और गुरु, आचार्य अथवा बृहस्पति के समान बुद्धिनिधि बहुत सार्थक शब्दों से युक्त वचन की कहने लगा—मेरी दृष्टि में तो) चिरकाल तक विचार किये जाने पर भी, ऐसा कोई विषय नहीं है, जो राजा (आप) की बुद्धि और आज्ञा से गृहीत नहीं होता हो। फिर भी आप (राजा) की इच्छा के प्रतिघात के अवरोध (अर्थात् आपकी इच्छा के अनुसार प्रश्न का उत्तर देने) के लिये ही मैं यह कहने जा रहा रहा हूं। जैसे कि यह जो दूसरी चिन्ता राजा के हृदय में बढ़ रही है, उसका निवारण सुगमता से किया जा सकता है। दानवों की दुर्जेयता कोई चिन्ता का कारण नहीं है, क्योंकि उनका स्वर्ग लोक को छोड़कर पाताल में भाग जाना सर्वविदित है, अतः उनको दुर्जेय कहना असिद्ध अर्थात् अनुचित है। न उनके फिर बढ़ने या प्रसार होने की ही कोई आशङ्का है, पूर्व काल में ही उनके द्वारा सारे उपायों को तिरस्कृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने वाली कौन सी छल-कपटाचार रूप माया नहीं रची गई ? अथवा अति बलशाली लोगों (अथवा इन्द्रादि लोकपालों) के द्वारा कौन लोक व्याकुल नहीं किया गया ? सारे शस्त्रों को व्यर्थ करने वाले कौन महान् अस्त्र को अपने अधीन नहीं किया गया ? तीनों लोकों में सबके द्वारा प्रशंसित कौन भला सुविचक्षण (देव) अभिमान से रहित नहीं किया गया ? जन्मभूमि अर्थात् रणभूमि में कौन क्षत्रिय अपने द्वारा आमर्दन का विषय नहीं बनाया गया ? और बहुत प्राचीन होते हुये भी कौन सा रत्न (अथवा रमणीय वस्तु) प्रयत्न के बल से अपने अधीन नहीं किया गया ? (अर्थात् उनके द्वारा यह सब किया गया, यह आशय है ।) यदि इस प्रकार के प्रभावों वाले भी वे असुर आप (राजा राजशेखर के द्वारा पराजित किये जा चुके हैं, तब क्या वे इससे बढ़कर भी अन्य उत्कर्ष को प्राप्त करेंगे, जिससे उनके कठिनाई से उन्मूलन किये जाने के भय के चिन्ह के मिश्रण की कोई सम्भावना हो, प्रत्युत सर्वथा नहीं ॥१८॥

यदि च वीरःवाभाव्येन तेषां सत्तामात्रमपि देवस्य मनसि नाभिरोचेत, एवञ्च तद्वधेच्छाविलम्बमात्रादेव तद् विलम्ब इति स्वकीयेच्छान्वय-व्यतिरेकानुविधायिनि कार्ये को वा दौर्मनसस्यावसरः ॥१९॥

और यदि वीर-स्वभाव होने के कारण उन वैरियों का अस्तित्व मात्र भी आपके मन को न भावे तो यही मानना पड़ेगा कि शत्रुओं के वध की इच्छा होने में विलम्ब होने के ही कारण उनके वध में विलम्ब हो रहा है। इस प्रकार अन्वय और व्यतिरेक के अनुसार होने वाले अर्थात् अपनी इच्छा के अनन्तर होने वाले और इच्छा न होने पर न होने वाले कार्य में कौन भला वैचित्य (बेचैनी) का अवसर हो सकता है ? अर्थात् इस विषय में आपकी इच्छा ही महत्वपूर्ण है, वह होगी तो शत्रु अवश्य मारे जायेंगे, अतः किसी प्रकार के मानसिक दुःख का यह विषय नहीं है, ऐसा समझें यह आशय है ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या तु प्रथमा चिन्ता देवेनोपन्यास्ता सा त्वभ्यर्हित-विषयैव, गार्हस्थ्यपरिग्रहो हि विषयोपभोगमात्रप्रयोजन इति रागिणामभ्युपगमः, परमार्थदर्शिनां त्वपत्यमेव तस्यासाधारणं फलमिति, तत्र तावत् स्वरूपयोग्यता मनुष्यत्वेनैव परिच्छिद्यते, फलोत्पत्तिस्तु सामग्रीसमवधानाधीना, सामग्रीघटकं च तद-नुकूलमदृष्टं प्रतिबन्धकदुरदृष्टविरहश्चायोग्यतया प्रत्यक्षान-धिगम्यमेव, तत्र देवस्य सन्त्येव दिव्यलोकसञ्चारसम्भवेन सुकरप्रार्थनाश्चिन्तामणिकल्पवृक्षकामधेनवः, यद्वावृन्दारक-विपक्षवृन्दनिर्दलनोद्भावितनिर्मर्यादपरितोषविशेषो भगवान् वयस्वभूतो देवराज एव, अथवा देवस्य संसदि सर्गस्थिति संहरणसमर्थाः सर्गान्तरोपजननशक्तिमन्तोऽर्थाव्यभिचरितव-चसो ब्रह्मकल्पा महर्षयः सहर्षं समवयन्ति, तैरेव तनयोत्पत्तिं मनसि कृत्य वैदिकं कर्मनिर्याणं निर्मीयताम्, श्रूयते हि राज्ञो युवनाश्वस्य वितते पुत्रीये कर्मणि संस्कारविशेषविशिष्टे पयसि प्रमादाद् यजमानेन राज्ञा पीते तत्कुक्षेरेवाप्रतिमप्रभावो मान्धाता समभवत्, तथैव ऋष्यशृंगेणमुनिना दशरथस्य पुत्रकाम्यया तदनुरूपक्रियाविशेषे सुविहिते सति भगवन्ना-रायणांशसम्भूता रामप्रभृतयश्चत्वारः पुत्राः समजायन्त, पाञ्चालराजस्य च द्रुपदस्य द्रोणवधसमर्थं पुत्रजननेच्छया याजोपयाजाभ्यां मुनिभ्यां यथावत्परिनिष्ठापितायां पुत्रीया-यामिष्टौ धृष्टद्युम्नो द्रौपदी चेत्यपत्यद्वयमग्निमध्यादेव समुद-तिष्ठदिति, अथवा सकलजगदङ्कुरबीजभूतेच्छः स वातिशय-हेतुस्तत्तत्कर्मानुरूपभोगसम्पत्तिजनकोऽपरिच्छेद्यानुभावैकदेशो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् भूतनाथ एव केनचिद्व्रतविशेषेण परितोष्यताम्—तदेवं तनयोत्पत्त्यनुकूलादृष्टजनकाः प्रतिकूलतद्विध्वंसहेतवो बहव उपायाः सुलभा एव देवस्य तत्किमिति तत्र प्रयत्नमपहाय मनश्चिन्तास्पदं क्रियते, सन्ति च देवस्य तादृशानि चिह्नानि यैरीश्वरावतारभूता लोकोत्तरकर्मकारिणो महोत्कर्षशालिनो महात्मानस्तनयाः प्रादुर्भवन्तीत्यलमनयाऽपि चिन्तयेति। एतदाकर्ण्य परितुष्टहृदयो राजा यथाभिहितमार्येण तत्प्रमाणमित्यभिधाय तेन सहैवोत्थाय ततो निरगमत् ॥२०॥

जो यह पहली चिन्ता (पुत्रानुत्पत्तिरूप) महाराज ने रखी है, वह तो प्रशस्त विषय वाली ही है; क्योंकि गृहस्थाश्रम का ग्रहण केवल विषयों के उपभोग के लिये होता है—ऐसा विषयानुरागी लोग मानते हैं। वस्तु तत्त्व को जानने वालों के मत में तो गृहस्थाश्रम का सन्तान ही विशेष फल है। (कहा भी गया है – प्रजार्थगृहमेधिनाम्—कालिदासः), फल प्राप्त होने पर पूर्वोपार्जित पुण्यों के प्रभाव से मनुष्यत्व की ही फलोत्पत्ति की प्रतिकारणता जानी जाती है। सन्तानरूप फल की उत्पत्ति सहायक सामग्री के संघटन के अधीन है; और कारण समूह रूप सामग्री तथा उसके अनुकूल जो अदृष्ट—अपूर्व अथवा दैव का उसके विरोधी दुर्भाग्य से रहित होना ये दोनों बातें प्रत्यक्ष के द्वारा जाने जा सकने की योग्यता से रहित होने के कारण चाक्षुषादि प्रत्यक्षों से अगम्य ही हैं। ऐसी स्थिति में, महाराज के हैं ही—स्वर्ग लोक में भ्रमण करने से समर्थ सुन्दर और सुगम प्रार्थना वाले चिन्तामणि रत्न अथवा गणेश, कल्पवृक्ष और कामधेनु। (अपने अदृष्ट के विषय में इन दिव्य वस्तुओं से सुखपूर्वक पूछा जा सकता है—यह भाव है।) अथवा देवों के शत्रु समूह के विनाश से उत्पन्न अत्यधिक सन्तोष को धारण करने वाले भगवान् देवराज इन्द्र आपके मित्रभूत हैं ही। अथवा, आपकी सभा में सृष्टरचना; सृष्टिपालन तथा सृष्टि-संहार में समर्थ, अन्य सृष्टि को उत्पन्न करने की शक्ति वाले, और अर्थ के साथ असगत जिनके वचन नहीं होते हैं, ऐसे सत्यवादी, ब्रह्मा के समान महर्षि हर्ष के साथ सम्मिलित होते हैं। उन्हीं महर्षियों के द्वारा ही पुत्रोत्पत्ति के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार को मन में रखकर के वैदिक कर्मानुष्ठान को निष्कपट भाव से कराया जावे। क्योंकि सुना जाता है कि राजा युवनाश्व के पुत्रीयेष्टि किये जाने पर संस्कार विशेष से विशिष्ट फलश के जल को प्रमाद से यजमान रूप राजा युवनाश्व द्वारा पी लिये जाने पर उसकी गोद से अनुपम प्रभाव वाले मान्धाता हुये, श्रीमद्भागवत पुराण के नवम स्कन्ध में यह कथा द्रष्टव्य है।) उसी प्रकार ऋष्यशृंग मुनि के द्वारा दशरथ के पुत्र की कामना से, पुत्रोत्पत्ति के अनुकूल विशेष क्रिया अर्थात् पुत्रेष्टि नामक यज्ञ को अच्छी प्रकार सम्पन्न कराये जाने पर, भगवान् विष्णु के अंश से निकले हुये राम इत्यादि (राम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न नामक) चार पुत्र उत्पन्न हुये। और पाञ्चालदेश के राजा द्रुपद के द्रोणाचार्य को मारने में समर्थ पुत्र को उत्पन्न करने की इच्छा से याज-उपयाज नामक दो मुनियों के द्वारा विधिपूर्वक सम्पन्न कराये गये पुत्रीयेष्टि के अनन्तर धृष्टद्युम्न और द्रोपदी ये दो सन्तान अग्निकुण्ड के बीच से ही अच्छी प्रकार उत्पन्न हो गये। (इन तीन कथाओं का 'श्रूयते' इस शब्द से सम्बन्ध जानना चाहिये।) अथवा, सम्पूर्ण जगद्-रूप अंकुर के बीजभूत (कारणभूत) इच्छा वाले, सारे उत्कर्षों के हेतु, उस-उस कर्म के अनुरूप (अर्थात् पूर्वोपार्जित शुभ या अशुभ कर्मों के अनुकूल) होने वाले फलभोग को सिद्ध करने वाली सम्पत्ति (अर्थात् सामग्री) के फल देने के कारण उत्पादक, जिनके प्रभाव का एक अंश भी असीम है—ऐसे भगवान् भूतनाथ (प्राणियों के स्वामी अथवा पृथिव्यादि पंच महाभूतों को विपरिणमित करने में समर्थ)—शिव ही किसी व्रत विशेष के द्वारा जिससे कि पूर्वोपार्जित दुःखों का ध्वंस और अभीष्ट फल की सम्प्राप्ति हो सके) (आप द्वारा) प्रसन्न किये जायँ। तो इस प्रकार से सन्तान की उत्पत्ति के अनुकूल अदृष्ट (पुण्य) के उत्पादक और प्रतिकूल पुत्र की उत्पत्ति के बाधक अदृष्ट (पाप) के विनाश के कारण-भूत बहुत से उपाय – साधन महाराज के लिये सुलभ ही हैं। तब किस कारण से उस पुत्रोत्पत्ति के उपाय में प्रयत्न छोड़कर मन में चिन्ता की जाती है? (सामुद्रिक शास्त्र के प्रमाण से आगे बतलाते हैं।) देखिये आपके वैसे चिह्न (हस्तरेखादि) विद्यमान हैं, जिनसे ईश्वर के अंशावताररूप, अलौकिक कर्मों को करने वाले, बड़ी उन्नति वाले, और अतिशय उदार चित्त वाले पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये यह चिन्ता (पुत्रोत्पत्तिविषयक) भी नहीं करनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये। इसको (बुद्धिनिधि द्वारा कहे गये वचन को) सुनकर प्रसन्न हो गया चित्त जिसका—ऐसा वह राजा राजशेखर—"आप भद्रपुरुष (अमात्य) के द्वारा जैसा कहा गया है, वह यथार्थ है"—ऐसा कहकर उसी अमात्य (बुद्धिनिधि) के साथ उठकर उस स्थान से बाहर चला गया ॥२०॥

सिंहासनारोहणम्

अथानुरागातिशयोल्लसित बुद्धिधाराजनित साक्षात्कारप्रचयबलेन सर्वतोभावितत्वेन वसुन्धरया बहुशो मनसि स्थापितमिवात्मानं प्रतिबिम्बसहस्रेण वितन्वन् प्ररूढानेकदीधितिदन्तुरीकृतपद्मरागोदितानुबिम्बनत्वेन हरनयनकूपीटयोनिमध्यगत इव कुसुमबाणो, भयविशेषमुग्धदानवयूथभावनाबलेन सर्वतोजातस्वरूप इव प्रतिबिम्बसमुदायच्छलेन भूजठरान्तगतः, स्वतनयनरकासुरनिवर्हणसञ्जातसंरम्भयाभूम्या स्वयमन्तर्गमित इन मीनकेतनोऽत्युन्नतभवभक्तिबलेन तन्मूर्तौ धरायमिव जातप्रवेशश्चरणयोरतिमार्दवेन सुखसञ्चरणाय तत्प्रतिबिम्बमिषेण कमलसन्ततिमिव प्रकाशयता मणिमयेकुट्टिमपथेन, क्वचिदतिप्रसृमरमरकतमयूखमालाभिरिव जाततिमिरसम्पर्कमन्यतः समुत्सृत्वरमाणिक्यकिरणसहस्रेण जातप्रकाशं, क्वाप्यतिस्थूलनीलोपलसहस्रेण सञ्जनितजाम्बवफलसंवलनं, क्वचिदरजस्काभिरनिमेषाभिर्दिव्यरूपाभिः, शालभञ्जिकाभिः, संपन्नसिद्धसुन्दरीसमवायं वर्षविशेषैरिव दिव्यमानुषसञ्चारयोग्यैरलौकिकातिशयवद्भिरवान्तरमण्डपविशेषैः सर्वतः परिक्षिप्तं, बहुविधरत्नघटिततया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तज्जनकैरिव कृत्रिमद्रुमविशेषैः साधितकल्पवृक्षान्वयं सूर्य इव सुमेरुमास्थानमण्डपमवाप्य तस्य मूर्द्धनि स्फटिकोपल-मयाखिलावयवस्योभयतोऽभिमुखप्रसृत्वरकिरणसमूहसंघट्टने-नानवकाशस्येव विभाव्यमानस्य, मन्थनभयेनान्यत्रपलायितस्य दुग्धसिन्धुभागविशेषस्येव रावणभुजोल्लासनत्रासादपगतस्येव कैलासैकदेशस्य, राहुमुखकन्दरान्तर्गतिभीत्या पृथक्कृत्य स्था-पितस्येव चन्द्रिकाप्रपञ्चस्य स्थलविशेषस्य मध्ये चन्द्रलोक-भ्रमेणोपगतभिरिव तारिकाभिः, कन्दर्पबुद्धिया तत्सेवनाय वसन्तेन प्रहिताभिः सिन्धुवारस्तवकपरम्पराभिरिव-मौक्तिक-जालमञ्जरीभिः सञ्जनितोपान्तशोभस्य, चन्द्रकरतन्तुजाले-नेव समवायिना समारब्धेनोत्तमसिचयविशेषेणनिर्मितस्य ऐरा-वतदन्तचतुष्टय इव स्तम्भचतुष्टये विषक्तप्रान्तस्य वितान-कस्याधस्तात् दानवभयाकुलतया तत्समाराधनार्थं समागत-मिव सुमेरोरेकदेशं मदनभ्रमेण स्वापराधतिरस्करणार्थमुज्झि-तदाहशक्तिमिव वह्निकूटं—तच्चरणसम्पर्काद्रागातिशय समा-सादनार्थमिवागतेन पद्मरागमयेन पादपीठेन-परिष्कृतपरिसर-सिंहासनं गीर्वाणसार्वभौम इव स्वाधिरोहणेन सनाथतामनै-षीत् ॥२१॥

(विचारभवन से निकलने के अनन्तर राजा ने आस्थानमण्डप के बीच में निर्मित दो सिंहों से उपलक्षित सिंहासन—राज्यासन में आरूढ़ होकर उसे स्वामियुक्त बनाया—यह वक्ष्यमाण गद्यांश में अन्वय है।) तत्पश्चात् स्नेह की अधिकता से प्रकाशित विचारधारा से उत्पन्न हुये साक्षात्कार अर्थात् अनुभव की राशि की सहायता से सब ओर से होने के कारण (फर्श के तन्नत् प्रस्तर खण्डों में प्रतिबिम्बित होने से) पृथ्वी के द्वारा बहुत प्रकार से (हजारों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिबिम्बों से यह भाव है।) अपने को मन में धारण किये हुये के समान बनाते हुये, उद्भूत हुई किरणों के द्वारा उन्नतदन्त वाले से किये गये (अर्थात् किरणों से चारों ओर से व्याप्त) जो पद्मराग नामक लालमणि उनमें फलित हुये प्रतिबिम्ब के द्वारा शिव के नेत्रों के आभ्यन्तर की अग्नि के बीच में पड़े हुये कामदेव के समान (कुसुम, उद्दीपन विभाव होने से, बाणों के समान जिसके होते हैं, उस काम को कुसुमबाण कहते हैं। शिव के नेत्रों की अग्नि के मध्य में स्थित कामदेव, कान्तिवाले पद्मरागमणि में प्रतिफलित राजा के प्रतिबिम्ब का उपमानभूत है—यह अभिप्राय है।) भय की अधिकता से मूढ़ हुये असुरों के समूह की वासना के बल से सर्वत्र उत्पन्न हुये स्वरूपों के समान प्रतिबिम्बो के समूहों के निमित्त से पृथिवी के उदरान्तर्गत हुआ सा (असुरों के वध के लिये—यह भाव है।), अपने पुत्र नरकासुर के विनाश से उत्पन्न रोष वाली भूमि के द्वारा स्वयमेव अन्तःप्रवेशित किये गये प्रद्युम्न के समान, (अपने पुत्र नरकासुर को मारने वाले कृष्ण का पुत्र, भूमि ने, अपने उदर में रख लिया—यह भाव है।) अन्युत्कृष्ट शिव की भक्ति के बल अर्थात् प्रभाव से शिव की (अष्टविध मूर्तियों में अन्यतम) मूर्ति पृथिवी में मानो प्रवेश किया हुआ पैरों की अति कोमलता से सुगमतापूर्वक विचरण करने के लिये उनके (चरणों के) प्रतिबिम्ब के व्याज से सहस्रों कमलों को जैसे प्रकट करते हुये मणिजटित भूमार्ग से, कहीं पर अत्यधिक फैलने वाली मरकतमणि की सहस्रों किरणों से जैसे अन्धकार के सम्पर्क वाले और दूसरी ओर अच्छी प्रकार से प्रसरणशील सहस्रों किरणों से उत्पन्न प्रकाश वाले (आस्थान मण्डप को—यह वाक्य शेष है), कहीं पर बड़े भारी सहस्रों नीलमणियों से उत्पन्न किये गये जामुन के फलों के मिश्रण वाले, कहीं पर धूलि से रहित अर्थात् स्वच्छ, निर्निमेष किन्तु सुन्दर रूपों वाली शालभञ्जिकाओं अर्थात् पुत्तलियों के द्वारा सम्पन्न किये गये देवाङ्गनाओं के समूह के समान, इलावृतकिम्पुरुष—भारतवर्ष आदि वर्ष (=देश) विशेषों के समान देवों तथा मनुष्यों के संचार के योग्य, लोकोत्तर उत्कर्ष वाले दूसरे विशिष्ट मण्डपों से चारों ओर से घिरे हुये, बहुत प्रकार के रत्नों से जुड़े हुये और मानो उन्हीं रत्नों को उत्पन्न करने वाले कृत्रिम वृक्ष-विशेषों से सिद्ध किये गये कल्पवृक्ष के वश वाले, सूर्य जिस प्रकार से मिथुन-कर्कट राशिगत होने पर सुमेरु पर्वत के ऊपर चमकता है, ऐसे आस्थान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मण्डप (सभामण्डप) को प्राप्त करके, उस मण्डप के ऊपरी भाग में स्फटि
(काच) मणियुक्त सम्पूर्ण अवयव वाले के दोनों ओर फैलने वाले किरणों
समूहों के सम्मिश्रण से अवकाश से रहित स्थल विशेष के समान प्रतीत हो
वाले (यहाँ से षष्ठ्यन्त पद वितानस्य के विशेषण हैं), मन्थन के डर से दूस
जगह भागे हुये क्षीरसागर के बिना मथे हुये भाग के समान, रावण की भुजा
के पराक्रम के भय से हटे हुये से कैलास पर्वत के एक भाग के, राहु
मुखच्छिद्र के भीतर चले जाने के, भय से अलग करके स्थापित किये गये
चन्द्रज्योत्स्ना के स्थान विशेष के मध्य में चन्द्रग्रह के भ्रमण करने से समीप
आये हुये से तारों के द्वारा, (तारों की चन्द्रमा की पत्नी रूप में कल्पना से
मणियुक्त फर्श विशेष के श्वेत होने से उनका चन्द्रलोक भ्रमण उचित
क्योंकि समान धर्म का अवभास होना ही भ्रान्ति का कारण होता है
राजशेखर को कामदेव समझकर, उसका सेवन करने के लिये कामदेव के स
वसन्त (ऋतुविशेष) के द्वारा प्रेषित सिन्दुवार नामक धान्यविशेष (
विशेष) के गुच्छों की श्रेणी के समान मोतियों के समूह रूपी बेलों से उत
की गई किनारों की शोभा वाले चन्द्रमा की किरण रूपी तन्तुओं के समूह
समान समवायकारणभूतविरचित श्रेष्ठ वस्त्रविशेष के द्वारा बनाये गये
ऐरावतों (इन्द्र के श्वेत हाथियों) के समान चार खम्भों में जिसके किना
लगे हुये थे, ऐसे वितान (चाँदनी) के नीचे असुरों के भय से व्याकुल होने
कारण, उसकी (राजा राजशेखर की) सम्यक् आराधना के लिये पिण्डी
रूप में आये हुए सुमेरु पर्वत के एक भाग के समान, कामदेव के भ्रम से
अपराध (शिव के कामदेव के प्रति कुपित होने के समय में) को क्षमा करने
लिये दहन करने के समर्थ्य को छोड़ी हुई अग्नि की राशि के समान,
(राजा के) पैरों के सम्पर्क से हुई लालिमा की अधिकता को मानो प्राप्त करने
लिये आये हुए पद्मरागमणियुक्त पादपीठ से स्वच्छ वा सुसज्जित किनारों
सिंहासन में देवों के अधीश्वर इन्द्र के समा . चढ़ने से उसको सनाथित किया
(इस गद्य खण्ड में उपमेय सभामण्डप तथा सिंहासन में विविध उपमानों
सम्भावना करने से उत्प्रेक्षालंकार है) ॥२१॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतापवर्णनम्

तत्क्षण एव च तस्याऽऽस्थानमण्डपसमागमनसूचको मन्द-मारुताघूर्णिताजलनिधिवीचिविक्षोभसोदरो दुन्दुभिध्वनिरा-किर्बभूव ॥२२॥

उसी क्षण (राजा के सिंहासन पर आरूढ़ होने के साथ-साथ) उसके (राजा के) आस्थानपण्डप में आ पहुंचने का सूचक मन्दवायु से हिलाये गये समुद्र की लहरों की हलचल के समान नगाड़े (ढोल) की आवाज सुनाई देने लगी ॥२२॥

तच्छ्रवणसम्भूतसम्भ्रमाश्च युगपदुपेक्षितप्रथमप्रस्तुत वस्तुप्रसङ्गः: कुसुममयशिरः शेखरप्रचलनाभिघातोच्चलितैश्च, मधुकरकुलैर्नभसि मण्डलबन्धेन शीघ्रोपसर्पणार्थमातपवार-णाय वितानमिववितन्वानैर्गुञ्जितमिषेणाविलम्बितमुपसर-तेति प्रेर्यमाणा इव, मार्गस्यातिसम्बाधतया पुरस्ताद्गन्तुमस-मर्थतया स्वस्वपुरः प्रस्थितराजालङ्काररत्नप्रतिफलनमिषेणे-वाग्रतो जिगमिषन्तः, स्फटिकमणिकुट्टिमोदितप्रतिबिम्बकैत-वेन पातालमार्गेणेव प्रथमं प्रयातुकामाः स्वगमनप्रतिबन्धक-भूपालनोदनार्थमिव तदाभरणमणिषु प्रतिच्छायाछलेन कृत-कायनिकाया इव, स्वकीयालङ्करणरत्नप्रतिफलितत्वेनैव पश्चात्कृताग्रिमराजकाः, प्रतिबन्धकनिराकरणेच्छयैव पर-स्परभूषणसङ्घटितमाणिक्यमरीचिमञ्जरीभिरन्तर्हितपरस्पराः, अग्रतोगतराजनोदनोपयुक्ततयाऽगणितस्वनोदनव्यथाः, स्व-शरीरस्यातिपर्याप्ताधिकदेशव्यापकत्वक्रोधादिवान्योन्यसंघट्ट-नेनिपातितभूषणोत्कराः पश्चात्तनराजप्रयुक्तनोदनरक्षार्थमिव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदलंकारप्रतिफलनमाययाकृतान्तराजाः, परममहत्त्वस्पर्धयेवाणुमात्रमप्याकाशान्तरमरक्षन्तः, सामन्तभूमिपालाः—स्वस्थानाधिरूढया तदाज्ञयेव कृतनोदनां मौलिमालां शिथिलतां प्रापयन्तस्तद्गरिमविशेषाक्रान्तानीवोत्तमाङ्गानि नामयन्तो, हृदयपरिष्कारकर्मणि प्रतिबिम्बित तादृशशिरस्कत्वेन मानसमपि स्वापकर्षाभ्युपगममुद्भावयन्तो जयशब्दसमुच्चाररणपूर्वकमादरेण महीयसा प्रणेमुः ॥२३॥

उस नगाड़े की ध्वनि को सुनने से उत्पन्न हुए भय वाले सामन्त राजा लोगों ने बड़े आदर से जयकार करते हुए राजा को प्रणाम किया। (यह गद्य खण्ड का सारांश है।) वे कैसे थे? इस बात को 'युग पद०' इत्यादि द्वारा बतलाया गया है। एक साथ ही त्याग दिया है, पहले से चली आ रही बातचीत को जिन्होंने, फूलों से सजे हुए सिर के मुकुट के हिल जाने से लगे धक्के के कारण उड पड़ने वाले भ्रमरों के समूहों के द्वारा आकाश में पक्तिबद्ध से होकर अथवा घेरा बाँधने से जल्दी राजा के पास जाने के लिये धूप को रोकने के लिये चाँदनी से बनाये जाते हुए और भौंरों के द्वारा मानो गुञ्जार के निमित्त से 'तुरन्त बढ़ो'— इस प्रकार से प्रेरित किये जाते हुए से तथा मार्ग के अति संकीर्ण होने के कारण अपने-अपने आगे चल रहे राजाओं के आभूषणों में जड़ी हुई मणियों की परछाईं के बहाने से आगे जाने की इच्छा वाले और स्फटिक मणियुक्त फर्श से निकलने वाली परछाइयों के छल से मानो पाताल के रास्ते से पहले पहुंचने की कामना वाले तथा अपने चलने में रुकावट डालने वाले अन्य राजाओं को हटाने के लिये मानो उनके आभूषणों की मणियों में परछाईं के माध्यम से अपने शरीर की संरचना किये हुए से और अपने आभूषणों के रत्नों में पड़ने वाले राजाओं के प्रतिबिम्ब से ही मानो आगे चलने वालों को भी पछाड़ते हुए एवं रोकने वाले को हटाने की इच्छा से ही एक दूसरे के आभूषणों के टकराने से उनकी लोहितमणियों की किरणों की लहरियों से परस्पर छिप जाने वाले और आगे गये हुए राजाओं को हटाने के औचित्य से अपने को धक्का लगने से उत्पन्न पीड़ा की कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गिनती न करने वाले, तथा अपने शरीर के अत्यधिक स्थान को घेरने वाले होने से मानो क्रोध के कारण एक दूसरे की टक्कर से गिराये गये आभूषणों के समूह वाले, और पीछे से आने वाले राजाओं के धक्के से बचने के लिए मानो उनके आभूषणों में पड़ने वाली परछाईं के बहाने से अपने लिए स्थान बनाये हुए, और परम महत्त्व (आकाश वृत्ति वाले) की स्पर्धा से मानो थोड़े से भी अन्य आकाश (अवकाश) को न धारण करने वाले मण्डलेश्वर सामन्त राजा लोग अपने शिर पर धारण की गई उस (राजा राजशेखर) की आज्ञा से मानो प्रेरणा को प्राप्त हुई शिर की माला को शिथिल करते हुए, उसकी गरिमा से विशेष रूप से आक्रमण किये गये से अपने शिरों को झुकाते हुए, तथा हृदय के शोधन के कर्म में प्रतिबिम्बित हुए उस प्रकार के शिरों से मन में भी अपनी राजा की अपेक्षा क्षुद्रता की स्वीकारोक्ति को व्यक्त करते हुये और 'राजा की जय हो' इस प्रकार के शब्दों को उच्चारण करते हुए बड़े आदर के साथ महाराज राजशेखर को प्रणाम करने लगे ॥२३॥

अद्भुतदर्शनम्

तांश्च सेवकभावापन्नानपि महानुभावतया राजोचितेनाचारेण संभाव्य तत्तदनुरूपाभिः कथाभिर्यावदासाञ्चक्रे, तावदेव विहायसि दृष्टिपात प्रकाशितं सौदामनीसमुदायं जलधरखण्डमिवाऽकाण्डसमुनद्धं श्यामिकापिहितमिहिरमयूखसञ्चारं, कालायसशैलमिवस्वेच्छया सञ्चरन्तमाशमिव मूर्त्ततापन्नं, समुदायमिव जगद्वर्त्तिनीलावयवानां, भङ्गुरभ्रकुटिभीषणभालाभोगं, जन्मभूमिमिवभयानां, किञ्चिदतित्वरितमपसरन्तं रजनीचरमपश्यत् ॥२४॥

तब राजा ने सेवक भाव को प्राप्त हुए भी (राजा की अधीनतावश) महानुभावता के कारण राजाओं के लिये यथायोग्य व्यवहार से उन्हें (सामन्त नरेशों को) सम्मानित कर जैसे ही वह उस-उस के लिए अनुकूल बातें कर रहा था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि, वैसे ही आकाश में दृष्टि डालने मात्र से प्रकाशित कर दिया है बिजली के समुदाय को जिसने ऐसे मेघ के टुकड़े के समान काले, असमय में (अचानक ही) उत्पन्न हुये, कालेपन के कारण ढक दिया है सूर्य की किरणों के प्रसार को जिसने, काले वर्ण के लोहे के पहाड़ के समान स्वेच्छा से भ्रमण करते हुये, मूर्तिमत्ता को प्राप्त हुये नीले आकाश के समान, संसार में रहने वाले समस्त नील अवयव वाले पदार्थों के समूह के समान, कुटिल भौंहों की भीषणता के कारण भयंकर ललाट की विशालता वाले, भयों की जन्मभूमि अर्थात् उत्पत्तिकारणों के समान, किसी अतिशीघ्र वेग से दौड़ते हुए निशाचर (राक्षस) को दृष्टिगोचर किया ॥२४॥

करे च तस्य प्रसारिणा प्रभाप्रवाहेण घुसृणरसविसरेणेव लिम्पन्तीं दिग्विभागान्, अमरभुवनेऽपि दुर्लभेनाकृतिविशेषेण तडिल्लताभिव विभाव्यमानां, गगनगमनवेगशिथिलकेशबन्धां, ग्रैवेयकस्यूतैकहीरकप्ररोहसूचीशिखानिखाताञ्चलतया लम्बमानोत्तरीयसिचयां, सिद्धमार्गावगाहनजन्मना साध्वसेन दत्तहस्ततया बहुगुणीभवता तदपहरणभुवा भयेन निमीलितनयनां, श्रमप्रतिपन्नात् स्वेदबिन्दूनिव हारमौक्तिकनिवहान् यथाक्रमं विसृजन्तीं, श्वाससौरभानुसारिणीभिः सखीभिरिव गृहीतदेहान्ताराभिर्मधुकरकिलभिरनुबध्यमानां, हृदयमिव महोज्ज्वल तादृशगतिभग्नं नायकमणिं त्यजन्तीं, सरसविभ्रमविशेषानिव नयनोदबिन्दुनिवहान् मुञ्चन्तीं, भ्रमरहितेन विज्ञानविशेषेणेव श्रवणावतंसकमलेन हीयमानां, सम्बन्धसङ्क्रान्तदुःखैः सुहृद्भिरिव वृत्तिविमुखैरिन्द्रियैरनुगम्यमानाम्, अपर्यन्ताभिरन्तर्बाधाराभिरिव निःश्वासपरम्पराभिरायास्यमानां, दुरितैकनिबन्धनेन भयहेतुना राक्षसान्तरेणेव कम्पेन गृहीताम्, आसादितावसरान्तरेण निधनाभिलाषेणेव वैक्लव्येन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशीकृतमानसां, रजनिचरदेहप्रभा समूहेनेव मोहान्धकारेण तिरोधीयमानां, कृतकलकलैर्यामिकैरिव वलयैरनुस्रियमाणां, क्रियाविरोधिना परमहृतेव स्तम्भेन सम्भाव्यमानां, चन्द्र-सुन्दरेण वदनेन दिवसेऽपि सितपक्षान्तिम प्रदोषसौभाग्य-मासञ्जयन्तीं, केशकलापेन मेचकरुचेश्चामरस्य पामरभाव-मुद्भावयन्तीं, भालतलेन शशाङ्कशकलं कलङ्ककलुषमावेद-यन्तीं, भ्रूलताभ्यां केलतीकामुककार्मुकमकर्मण्यभावमानयन्तीं, विलोचनाभ्यां नीलोत्पलपलाशमालामपलपन्तीं, श्रवणभ्यां मदनस्य पाशवत्तामिव सम्पादयन्तीं, कपोलफलकेन दर्पण-दर्पमपह्नुवानां, नासिकया तिलसुमनसां वैमनस्यं प्रसञ्ज-यन्तीं, दशनभासा दाडिमबीजानामबीजामिव कान्तिमाच-क्षाणां, बिम्बाधरप्रभया पद्मरागाणां छद्मरागतामभिव्यञ्ज-यन्तीं, कण्ठतलेन कम्पूनामम्बुराशिप्रवेशमुपदिशन्तीं, बाहु-वीरुद्भ्यां मृणलिमपि तृणालीकमानतां नयन्तीं, कुचाभ्यां कलधौतफलशयोः सकलमपि सुषमाकलापं शकलभावं प्राप-यन्तीं, त्रिवलीललितेनावलग्नभागेन भागीरथीतरङ्गभङ्गुरं गगनमवगणयन्तीं, नितम्बबिम्बेन मणिशिलारामणीयकम-णीयस्तयां संयोजयन्तीं चरणाभ्याम् अतिलोहितनलिनं तिरोहिताहंकारमाचरन्तीं नखमयूखलेखाभिः शशांकखण्ड-खण्डनलेखामिव लिखन्तीं, श्रियमिव दुर्वाससो मूर्त्तेन शापे-नाकृष्यमाणं, सुधादीधितेरधिदेवतामिव तिमिरसमुदायेन गृह्यमाणां, विदेहराजदुहितरमिव दसाननेनापह्रियमाणां, भानुमतीमिव निकुम्भेन नीयमानां चन्द्रकलामिव स्वर्भानु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाऽभिभूयमानां, पारिजातस्रजमिव रावणकरेण क्लिश्यमानां देवसेनामिव केशिनाऽपवाह्यमानां, पाञ्चालीमिव जटासुरेण कृष्यमाणां, वेदत्रयीमिव मधुना विधूयमानामनन्यसामान्य-कामनीयकां कामपि कन्यका व्यलोकयत् ॥२५॥

(उसने राक्षस के हाथ में किसी सुन्दर कन्या को देखा—इस अन्वय मुख से वर्णन करते हैं।) उस रजनीचर के हाथ में कुंकुम के रस के प्रसार के समान प्रसरणशील कान्ति के प्रवाह से सम्पूर्ण दिशाओं को उपलिप्त करती हुई, स्वर्गलोक में भी दुर्लभ विचित्र प्रकार की आकृति से बिजली की बेल के समान प्रतीत होने वाली, आकाश में चलने के वेग से ढीले पड़े हुये केशों के बन्धन वाली, गले के आभूषण में व्याप्त एक हीरे के नुकीली सुई से छिद गये हैं किनारे जिसके ऐसे आँचल से लटकते हुये दुपट्टे वाली, सिद्धों, योगियों के मार्ग अर्थात् आकाश में चलने से उत्पन्न हुये भय से ग्रसित होने के कारण और उस राक्षस के द्वारा अपहरण से बहुत गुणा बढ़े हुये भय से मूंदी हुई आँखों वाली, श्रम से उत्पन्न हुई पसीने की बूंदों के समान हार के मोतियों के समूहों को एक-एक करके गिराती हुई, श्वास की सुगन्ध का अनुसरण करने वाली सखियों के समान, जो मानो दूसरे प्रकार का शरीर धारण की हुई थीं, ऐसी भ्रमरियों से अनुसरण की जाती हुई, हृदय के समान बड़े ही स्वच्छ उस प्रकार के आकाश में चलने के कारण टूटी हुई प्रधान मणि को गिराती हुई, अधिकतर रसयुक्त हाव-भाव-हेलादि अलकार के विशेषों के समान नेत्रों से आँसुओं की बूंदें टपकाती हुई, भ्रम से रहित विज्ञान के भेद के समान कान के भूषण रूप कमल से रहित होती हुई, (पक्षान्तर में भ्रमर के लिये हितकारी कमल मे रहित—यह भी अर्थ—मित्रता रूप सम्बन्ध से बाँटे गये दुःखों वाले मित्रों के समान वृत्तियों से विमुख (आजीविका के बारे में विरक्त) नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा अनुगत हुई, अनन्त पीड़ा की धाराओं के समान निरःवास के क्रमों से पीड़ित होती हुई, दुर्गुण ही जिसका एक मात्र कारण है, इस प्रकार के भय के हेतुभूत मानो इतर राक्षस के द्वारा कम्पित कराकर पकड़ी हुई, कोई अन्य अवसर जिसने पा लिया हो ऐसी मानो मृत्यु की कामना करने वाली व्याकुलता के द्वारा वशीभूत मन वाली, राक्षस के शरीर की कान्तियों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समूह के समान अज्ञान रूपी अन्धकार से छिपाई जाती हुई, कोलाहल करने वाले घण्टा वजाने वालों के समान कड़ों से अनुसरण की जाती हुई, क्रिया धर्म के विरोधी सबसे बड़े आकाशादि व्यापक तत्व के समान साम्यवृत्ति से सम्भावित की जाती हुई (अर्थात् जिस प्रकार आकाशादि स्वयं निश्चेष्ट हैं, उसी प्रकार वह कन्या भी राक्षस द्वारा अपहृत और गृहीत हुई भय के कारण निश्चेष्ट सी हो गई थी।) चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख से दिन के समय में भी शुक्लपक्ष की पौर्णमासी की रात्रि के सौभाग्य=सौन्दर्य को प्रसान्ति करती हुई, केशों की लटों से काले रंग के चामर की जड़ता को प्रकट करती हुई। अपने ललाट से चन्द्रमा के खण्ड को दोषयुक्त बतलाती हुई, भौंहों रूपी लताओं से केलतीकामुक अर्थात् कामदेव के बाण को निरर्थक बनाती हुई, नेत्रों से नीलकमल के पत्तों की पंक्ति को तिरस्कृत करती हुई, कानों से कामदेव के मानो पाशों को धारण करने की क्षमता को सम्पादित करती हुई, मालरूपी पटल से दर्पण के अभिमान को नष्ट करती हुई, नाक से नाक के उपमानभूत तिल के फूलों की म्लानता को प्रतिपादित करती हुई, दाँतों की कान्ति से दाड़िम (अनार) के बीजों की कान्ति को निर्मूल सी बतलाती हुई, गोल अधरोष्ठ की कान्ति से लाल मणियों की लालिमा को कपटयुक्त रग जैसा प्रदर्शित करती हुई, गले से शंखों के समुद्र में डूबने की बात को शिक्षित करती हुई, दोनों बाहु रूपी लताओं से कमलनाल को भी तिनके के समान तुच्छ बनाती हुई, दोनों स्तनों से सोने के कलशों की सम्पूर्ण शोभा को खण्डित करती हुई, उदरभाग पर विद्यमान तीन सुन्दर वलियों से सुशोभित अंग से भागीरथी नदी की तरंगों के भंग से आकाश को भी तिरस्कृत करती हुई, नितम्ब के गोलकों के द्वारा मणियुक्त गोल प्रस्तर-शिला के सौन्दर्य को भी छोटे रूप में दर्शाती हुई, दोनों पैरों से अत्यधिक लाल रंग के कमल के अहंकार को विनष्ट करती हुई, नाखूनों के किरणों की पंक्तियों से चन्द्रमा के खण्ड को खण्डित करने की रेखा को मानो लिखती हुई, लक्ष्मी के समान दुर्वासा के मूर्तिमान् शाप के द्वारा खींची जाती हुई, सुधांशु चन्द्रमा की अधिष्ठात्री देवता के समान अन्धकार के समूह द्वारा गृहीत की जाती हुई, जानकी के समान रावण के द्वारा अपहृत की जाती हुई, भानुमति के समान निकुम्भ नामक असुर के द्वारा ले जाई जाती हुई, चन्द्रमा की कला के समान राहु के द्वारा ग्रस्त=

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वशीभूत की जाती हुई, पारिजात के पुष्पों की माला के समान रावण के हाथ से पीड़ित की जाती हुई, देवों की सेना के समान केशी नामक दानव के द्वारा भगाई जाती हुई, द्रौपदी के समान जटासुर के द्वारा खींची जाती हुई, ऋग्यजुःसाम नामक तीन वेदों के समान मधु नामक असुर के द्वारा कम्पित की जाती हुई, अद्भूत और असाधारण सौन्दर्य वाली किसी अज्ञात-गोत्र वाली कन्या को आश्चर्य से देखा ॥२५॥

राक्षसावसानम्

अथापन्नवत्सलतया वीररसोद्रेकेण च तादृशव्यतिकरानौचित्यज्ञानेन च तद्रूपनिर्भालनोद्भवेनाद्भुतेन च त्वरिततरमादाय, शरासनं सन्धाय चाजिह्मगममोघं त्रिपुरवधोद्यतो भगवान् मृगाङ्कमौलिरिव संस्थानविशेषशालिना शरीरेण स्थित्वा, शिक्षावैलक्षण्येन रक्षन्नेव कन्यकां—दाशरथिरिव दशास्यं, लक्ष्मण इव मेघनादं, नील इव प्रहस्तं, हनुमानिवाक्षं, शत्रुघ्न इव लवणं, कर्ण इव घटोत्कचं, भीम इव बकं, तं राक्षसापसदमवसानमनयत् ॥२६॥

तब उस कन्या को देखने से, प्रकटित वात्सल्य भाव के कारण और वीररस के उद्भव होने से और उस प्रकार की घटना की अनुचितता को जानने से, उस प्रकार के रूप को देखने से उत्पन्न आश्चर्य से, शीघ्रता से धनुष को पकड़कर उसमें सफल लक्ष्यवेधक वाण चढ़ाकर त्रिपुरनामक असुर के वध के लिये समुद्यत भगवान् शंकर के समान विशेष प्रकार की आकृति वाले शरीर से अवस्थित होकर, विद्या ग्रहण करने की विलक्षणता से कन्या की रक्षा करता हुआ ही, दशरथपुत्र राम ने जिस प्रकार से रावण को, लक्ष्मण ने जिस प्रकार मेघनाद को, नील ने जिस प्रकार प्रहस्त को, हनुमान् ने जिस प्रकार अक्ष को, शत्रुघ्न ने जिस प्रकार लवणासुर को, कर्ण ने जिस प्रकार (हिडम्ब में भीमसेन से उत्पन्न) घटोत्कच को, और भीम ने जिस प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बकासुर को मारा था, वैसे ही उस (राजा राजशेखर) ने उस नीच राक्षस को मार डाला ॥२६॥

अथ तयोर्मध्ये कन्यका तत्कालोपगृहीतभूमिकान्तरेव शैलूषी, कुन्तलकलापं जटारूपेण, चीनांशुकं कृष्णाजिनात्मना, हारवीरुधं यज्ञसूत्रस्वरूपेण, अवयवविशेषपुष्टि तानव-तादात्म्येन, लावण्यविशेषं ब्रह्मवर्चसाभेदेन परिणतं बिभ्राणो मुनिकुमारः समपद्यत । तञ्चाम्बरतलादवतीर्य स्वाभिमुखमायान्तमवलोक्य विस्मयस्तिमितमानसो राजा दूरादेव प्रत्युत्थाय मुनिजनोचितयाप्रणामादिकया प्रतिपत्त्या विनयपूर्वकं प्रतिजग्राह । स तु दशनचन्द्रिकासमुदयेन तनयानुदपतिमिरं निर्मूलयन्निव महीभुजो मानसात् सिञ्चन्निव सुधामयेन मधुरतरेण वचसा विहितानामयानुयोगो विस्मयविशेषविज्ञाततद्वृत्ति-स्ववृत्तजिज्ञासो राजानमवादीत् ॥२७॥

(तदनन्तर उस राक्षस और कन्या के बीच में कन्या मुनिकुमार रूप में परिणत हो गई—यह अन्वय है ।) तदनन्तर उन दोनों (राक्षस तथा कन्या) के बीच में जो कन्या थी, वह मानो उस समय भर के लिये स्वीकृत की हुई भूमिका वाली नटी के समान बनी थी, जो जटा के रूप में चिकुर कलाप को धारण की हुई थी, रेशमी वस्त्र को मृगचर्म रूप में धारण की हुई थी, गले की माला रूपी लता को यज्ञोपवीत के रूप में धारण की हुई थी, विशेष, शरीर के, अंगों की पुष्टि को पतलेपन के तादात्म्य से धारण की हुई थी, और विशेष प्रकार के सौन्दर्य को ब्रह्मचर्य के और विद्या के तेज की अभिन्नता से धारण की हुई थी, वह सद्यः ही मुनिकुमार रूप में परिणत हो गई । और उसको आकाश से उतरकर अपनी ओर आता हुआ देखकर विस्मय के कारण निश्चल चित्त वाला राजा ने दूर से उठकर उसके पास आकर मुनिजन के लिये उचित प्रणाम, इत्यादि आदर की क्रियाओं के द्वारा नम्रतापूर्वक पादोप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संग्रहण किया। उधर मुनिकुमार ने दाँतों की चन्द्रिका रूपी कान्ति को फैलाने से राजा के मन से पुत्र की अनुत्पत्ति रूप अन्धकार को मानो उखाड़ फेंकते हुये, अमृतमय सुमधुर वचन से आप्लावित सा करते हुये, कुशल और आरोग्य को पूछते हुये, विशेष आश्चर्य से राजा की चित्तवृत्ति तथा अपने वृत्तान्त की जिज्ञासा को भलीभाँति जानकर राजा से कहा—॥२७॥

मुनिकुमारसम्भाषणम्

देव ! श्रूयतामयं वृत्तान्तः—"अस्ति कैलासस्य कुक्षिदेशे कुत्रचित् कलानिधिकलालङ्कारस्य क्रीडाकाननं, यत् किल कल्पतरुकदम्बमकरन्दसीकरनिकरव्यतिकरकलितकौशलमधुकरकुलकोलाहलाकुलं शरवणमिति गायन्ति पुराणविदः, यत्र चात्रत्यः कोऽपि पुरुषजातीयः प्रविशति स स्त्रीत्वमविकल्पितमाकलयिष्यतीति भगवत्याः सर्वमङ्गलाया वचसा सुद्युम्नस्य राजर्षेरिलाभावः संबभूवः। तस्यामेव चावस्थायां बुधसमायोगादुर्वशीनयनव्यापार-विश्रामास्पदं पुरूरवाः समुत्पेदे, सोऽहं विन्दुसरसि तपस्यतो महर्षेर्गृत्समदस्य सविधे गृहीतब्रह्मचर्यस्तपोनिधिसंज्ञो बहून् वत्सरगणानवात्सम्। एकदा तु समिदाहरणाय प्रस्थितो दूरतर कुतूहलाऽऽक्षिप्तचित्ततया भ्रमंस्तद्वनं प्रविशन्नेव स्त्रीभूतमात्मानमद्राक्षम् ॥२८॥

हे राजन् ! इस वृत्तान्त को सुनिये। कैलास पर्वत के समीपवर्ती प्रदेश में कहीं पर चन्द्रमा की कला रूपी आभूषणों वाले शिव का क्रीड़ोद्यान है, जिसकी कि कल्पवृक्ष के समूहों के पराग में पड़ी हुई ओस की बूंदों के सम्मिश्रण से विरचित कुशलता के कारण भ्रमरों के समूह के गुंजार से आकुल (गूँजता हुआ), 'शरवण' इस नाम से पुराणों के ज्ञाता प्रशंसा करते हैं, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ कि यहाँ का कोई भी पुरुष प्रकार का व्यक्ति प्रवेश करे तो वह निश्चित रूप से स्त्रीत्वभाव को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे ही भगवती सर्वमंगला अर्थात् पार्वती के वचन से राजर्षि वैवस्वत के पुत्र सुद्युम्न का इला में देहपरिवर्तन (अथवा यौन परिवर्तन) हो गया। उसी अवस्था में बुध के सम्पर्क से उर्वशी के नेत्रों के साक्षात्कार का आस्पद रूप पुरूरवा (आयुः का पिता तथा चन्द्रवंश का मूल राजा) उत्पन्न हुआ। यह मैं तो विन्दुसर में तपस्या करने वाले महर्षि गृत्समद के पास में ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करते हुये तपोनिधि नाम से बहुत वर्षों तक रहता रहा। एक बार की बात है कि मैं समिधाओं को लाने के लिये दूर तक चला हुआ, कौतूहल से व्याप्त चित्त वाला, उस वन में भ्रमण करता हुआ जैसे ही प्रविष्ट हुआ कि अपने को स्त्री बना हुआ देखने लगा ॥२८॥

अथ चरमाचलताम्रचूडचूडारागपुनरुक्तपाटलिम्नि लोहितायमाने सान्धिवेले सावित्रे तेजसि, प्राप्तायामग्निहोत्रवेलायां, तपोवनाभिमुखेष गृहीतकुशसमित्पुलकेषु प्रत्यावर्तमानेषु तापसकुमारेषु, एकेन व्यक्तिविपर्ययेण, द्वितीयेन च यथा—समयानुपगमनिबन्धनगुरुक्रोधसंभावनपावकेन दह्यमानो यावत् परावर्ते तावदेव कश्चिद् गुह्यको मानसकेतुनामा यदृच्छया गिरिपरिसरे परिभ्रमन् मद्दर्शनद्विगुणितमन्मथव्यथो मामुपलोभयन् सान्त्ववाक्यैरगृहीततत्प्रार्थने मयि बलादेव रन्तुकामो दिग्गजकराकारेण करेण वेपमानां कमलिनीमिव पलाशे करे मामग्रहीत् ।२९।

इसके पश्चात् अस्ताचल रूपी कुक्कुट की लाल शिखर के रंग द्वारा पुनः कही गई लालिमा को लिये हुये सन्ध्याकाल में लाल रंग युक्त सूर्य के प्रकाश के हो जाने पर, और अग्निहोत्र का समय (सायं सवन) प्राप्त हो जाने पर, तपोवन की ओर मुख किये हुये, कुश और समिधाओं के गट्ठरों को पकड़े हुये ऋषिकुमारों के लौटते हुये (वन से घर की ओर) होने पर, एक तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तित्व पलट जाने से, और दूसरे समय के पालन में विलम्ब हो जाने के निमित्त से गुरु के क्रोध की सम्भावना रूपी अग्नि से जलता हुआ जब तक लौट रहा था कि तुरन्त ही किसी मानसकेतु नामक गुह्यक ने, जो कि स्वच्छन्द रूप से निर्जन पर्वतीय क्षेत्र में विचरण कर रहा था, मुझ को देखने से दुगनी काम की पीड़ा जिसको उत्पन्न हो गई थी, मुझे शान्तिदायक वचनों से लोभ दिलाता हुआ, किन्तु मेरे द्वारा उसकी प्रार्थना स्वीकार न किये जाने पर, मुझसे बल-पूर्वक सम्भोग की इच्छा करता हुआ दिक्पालक हस्ती के सूंड की आकृति के समान हाथ से काँपती हुई कमलिनी के समान मुझको पत्ते रूपी हाथ में पकड़ लिया ॥२९॥

अथ मयोक्तं—'यस्मादसमये मां धर्षयितुकामोऽसि, ततो बहुतरां कालकलामभिव्याप्य स्वकर्मानुरूपं राक्षसभाव-मेव त्वमनुभवेति', स तु ज्ञात्वा ममार्षं सामर्थ्यं लज्जाभयो-भयपराधीनचेतास्तत्कालोपनतराक्षसदशस्ततोदेशादपासरत्। तत्रैवान्तरे मदभ्यागमनविलम्बकारणं पर्येषयन् भगवान् गृत्समदो मया सह वनमभ्युपेतेभ्यस्तापसकुमारकेभ्यो मम तादृशं व्यतिकरमवगम्य योगदृष्ट्याऽवगततदुत्तरवृत्तश्चाभ्य-धात्—'वत्स माण्डव्य ! लज्जया नोपसर्पत्यस्मांस्तपोनिधि-स्तमुपगम्य-ब्रूहि, यदज्ञानवशात्तवेयं दशा समुत्पन्ना, अतो मया शापस्योत्तरोऽवधिर्विधीयते, योऽयं भवदीयादेव शापाद् गुह्यको निशाचरतां प्राप्तस्तेन ह्रियमाणं त्वां यदा यः कश्चिल्लोकोत्तरपौरुषस्तं हत्वा मोक्षयिष्यति तदा तव स्व-रूपं प्रादुर्भविष्यति, तेनापि च परमार्थयोषिद्बुध्यैव त्वयि प्रवर्तितुमीहमानेन मानसकेतुना त्वन्मोक्षसमनन्तरमेव विमु-क्तराक्षसभावेन भवितव्यम्। परन्तु द्वितीयजन्मव्यवधानेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्य स्वरूपलाभेन भाव्यमिति ।' अहन्तु त्वन्मुखादेतद्भगवतोऽनुग्रहवाक्यमाकर्ण्य कृतार्थमात्मानं मन्यमानो महामुनेस्तस्यैवाऽऽश्रमपदादनतिदूरे पुण्यतमे वने निवसंसात्रत्य एव दिव्ये देवतायतने भगवतीं हैमवतीं स्त्रीस्वरूपोचितया गान्धर्वविद्यया विशिष्योपचरंश्चिरतरमासम् । तत्र च विद्याधरेन्द्रस्य चन्द्रकेतोरम्बिकाचरणोपचरणमाहात्म्यादुपनता कन्या "मन्दारमञ्जरी नाम" सह सखीभिर्विशिष्टगुणवद्भर्तृकामनया तामेव भगवतीं प्रत्यहं नियमेन सेवमाना कदाचिन्मामवलोक्य जातिविश्रम्भा विदितमदीयावदाना च मामपि स्वसहचरीपदमवापयत् । बलादेव चाऽऽत्मसमेन भूषणादिना संमानयामास । स तु निशाचरो दशान्तरेऽपि पूर्वसंस्कारवशं वदतया मदुपादानव्यसनान्नैव विरराम, न शशाक च रक्षोघ्नमन्त्रकृतरक्षं मां प्रसभमपहर्तुम्; अद्य तु जातनिर्वेदतया तत्प्रयोगपराङ्मुखं मामतर्कितोपनतएवाऽऽदाय न जाने कुत्र गन्तुमिच्छति, किं वाऽग्रे चिकीर्षतीति यावद् गगनमार्गेण विहरति तावदेव देवतासदृशानुभावेन देवेनैकशरप्रहारेण तं प्रमापयता द्वावप्यावां स्वरूपान्तरादुन्मोचिताविति तदेवं विधादतिदुस्तराद् विपदुदन्वतः समुत्तारणनिमित्तस्य भवतः किञ्चिदपि स्पृहणीयमर्थसिद्धं न पश्यामि, येन लेशतोऽपि प्रत्युपकृत्य कृतघ्नकक्षायामपाङ्क्तेयः स्याम् । तद् आत्मनमिवाऽगणेयगुणगणगरिमाणं त्रिभुवनाभयदानशौण्डं, शन्तनुरिव भीष्मं, सुत्रामेव धनञ्जयं, भास्वानिव कर्णं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महेन्द्रविद्विषां विमर्दनलब्धलक्ष्यमात्मजरत्नं, जलनिधिरिव जैवातृकं,—जनय जगतो जीवातुमिति ॥३०॥

तब मैंने कहा—"जिस कारण से अनुचित समय में मुझे दबाने की इच्छा कर रहे हो, इसलिये बहुत समय पर्यन्त अपने कर्मों के अनुसार राक्षस भाव का ही तुम अनुभव करो।" इस पर उसने मेरे ऋषिगत सामर्थ्य को जानकर लज्जा और भय दोनों से विवशमन वाला होकर तुरन्त ही राक्षसता को प्राप्त हो जाने पर उस स्थान से अन्यत्र प्रयाण कर डाला। उसी बीच में मेरे आने में विलम्ब का कारण खोजते हुये भगवान् गृत्समद ने मेरे साथ वन में गये हुये मुनि बालकों से मेरे उस प्रकार के दुर्घटित वृत्तान्त को जानकर योग की दृष्टि से उसके उत्तर से समस्त वृत्त को विदित कर लेने पर कहा—"पुत्र माण्डव्य ! लज्जा से मुनि हमारे पास नहीं आ रहे हैं, इसलिये उनके पास जाकर कहो—"कि अज्ञान के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। इसलिए मैंने शाप की बाद की सीमा निहित की है, जो यह आपके ही शाप से गुह्यक निशाचर-भाव को प्राप्त हुआ है, उससे हरण किये जाते हुये तुझको जब कभी जो कोई भी लोक में श्रेष्ठतम पुरुषार्थ वाला उसको मारकर मुक्त करायेगा तब तुम्हारा स्वरूप प्रकट होवेगा। मानसकेतु के द्वारा भी वास्तविक रूप से स्त्री समझकर के ही तुममें प्रवृत्त होने के लिये चेष्टाशील होने पर तुम्हारे छुटकारे के साथ-साथ ही राक्षस योनि से छूट जाना चाहिये परन्तु दूसरे जन्म की रुकावट से उसको अपने स्वरूप की प्राप्ति हो जानी चाहिये।" मैं (मुनि) तो तुम्हारे मुख से ही भगवान् गृत्समद के करुणाजनक वचनों को सुनकर अपने को सफल समझता हुआ उसी महामुनि के आश्रम के समीप में पुण्यतम वन में रहता हुआ वहां पर के सुन्दर देवमन्दिर में भगवती पार्वती को स्त्री के स्वरूप के लिये उचित गान्धर्व विद्या (गायन नृत्यादि विद्या) से विशेष प्रकार सेवा शुश्रूषा करता हुआ बहुत दिनों तक रहा और वहाँ पर विद्याधरों के राजा चन्द्रकेतु की माता पार्वती के चरणों की शुश्रूषा के माहात्म्य से प्राप्त हुई पुत्री ने मन्दारमञ्जरी जिसका नाम था, सखियों के साथ, विशिष्ट गुणों वाले पति की कामना से उसी भगवती पार्वती को प्रतिदिन पूजती हुई, एक बार मुझको देखकर उत्पन्न विश्वास वाली और जान लिया है मेरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वतन कार्य जिसने, मुझे भी अपनी सहचरी अर्थात् सहेली बना लिया और बलपूर्वक अपने तुल्य आभूषण आदि से सम्मानित किया। वह राक्षस तो भिन्न अवस्था में होते हुये भी, पूर्व प्रबल संस्कारों के अधीन होने से मुझे पकड़ने के कष्ट से कतई विरत नहीं हुआ और न ही रक्षोघ्नमन्त्र (राक्षसों को मारने वाले मन्त्र) से स्वयं रक्षित मुझको बलपूर्वक अपहरण करने में ही समर्थ हुआ। आज किन्तु खिन्नतावश अथवा विरक्ति के कारण उसके द्वारा किये जाने वाले प्रयोग से विमुख मुझको, अकस्मात् मिल जाने पर, लेकर के न जाने कहाँ ले जाना चाहता है, अथवा आगे क्या करना चाहता है—इस उधेड़ बुन में जब तक आकाश मार्ग से विचरण कर रहा था कि उतने ही में देवता के समान प्रभावी एक दिव्य बाण के प्रहार से उसको मार कर हम दोनों ही अपने-अपने भिन्न रूपों से मुक्त कर दिये गये। सो, इस प्रकार के अति दुस्तर विपत्ति के सागर से पार करने में निमित्तभूत आपको स्पृहा करने योग्य कुछ भी अर्थसिद्ध वस्तु को मैं नहीं देख पा रहा हूं जिससे कि थोड़ा भी प्रत्युपकार के कृतघ्नों की कक्षा में न बैठने वाला बनूं। इसलिये आत्मा के समान असंख्य गुणराशि से महान् तीनों लोकों को अभय प्रदान करने में निपुण, शन्तनु ने जैसे भीष्म को, सुत्रामा (इन्द्र) ने जैसे धनञ्जय (अर्जुन) को, सूर्य ने जैसे कर्ण को उत्पन्न किया था वैसे ही महान् इन्द्र के शत्रु असुरों के विनाश करने के लक्ष्य को प्राप्त करने वाले पुत्ररत्न को, समुद्र ने जिस प्रकार से सोम को उत्पन्न किया था, उत्पन्न कीजिये, संसार के लोगों के जीवित रहने के लिये ॥३०॥

राजा त्वेवमभिहितवति महर्षौ हर्षोच्छ्वासपरवशोऽत्र-गाढगाढसुधारसह्रद इव रसातलात् सर्वलोकोपरिष्टान्नीत इव सविनयमभिहितवान्—'इदन्तदविलोकितबलाहकं वर्षं, अविभावितविभावरीकश्चन्द्रोल्लासः, अनाकलितकलेवरान्तरं नाकलोकावलोकम्, अनधिगतविबुधास्पदं सुधासमास्वादनं, यदस्माद्दशैर्मोहमिहिकापिहितदृष्टिभिः प्रत्यग्दृशां भवादृशां भगवतामवन्ध्यदर्शनानामवेक्षणं, तन्मात्रेण कृतकृत्यमात्मानं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्यमानानां च पुनर्मनोरथपथातिवर्त्ती वरलाभः सुतरामेव विस्मयप्रमोदौ समुद्वेलयति। न कलयामि च तथाविधमात्मनः सुचरितं, येनैतावतः प्रसादोत्कर्षस्य पात्रं भवेयम्। तथापि भगवतामनुपधिः परोपकारस्पृहैवात्र प्रभवति। एवमनुग्रहविषयतां नीते च मयि पुनस्तदापादनप्रार्थनामात्रन्तु तरलतानुबन्धिनि हृदयेऽनुबद्धमिति'। स तु मुनिर्निशाचरग्रहमोक्षापेक्षयाऽपि क्षितिपतेरनुभावविशेषेण सुतरां प्रीयमाणोऽनुभूतकुमारजन्मोत्सवं देव पुनरुपाध्यायसमीपोपसृतमेव द्रक्ष्यामि इत्यभिधाय तत्क्षणादेवात्मानम् अन्तर्हितवान् ॥३१॥

राजा (राजशेखर) ने इस प्रकार से महर्षि के कहने पर हर्ष की श्वास के अधीन होकर (अर्थात् पुत्रोत्पत्ति की प्राप्ति से होने वाले सन्तोष को पाकर) गम्भीर अमृत के सरोवर में स्नान किये हुये के समान तथा रसातल से सब लोकों के ऊपर ले जाये गये से होकर नम्रतापूर्वक कहा—"यह आपका दर्शन तो बिना दिखाई दिये बादलों की वर्षा के समान अतर्कितोपनत (ऐसी प्राप्ति जिसका पहले विचार भी नहीं था।) है, बिना जानी गई रात्रि के चन्द्रमा के उदय के समान है, बिना प्राप्त किये गये दूसरे शरीर के स्वर्गलोक का दर्शन है (बिना मरे स्वर्ग नहीं दिखाई देता—इस जनश्रुति के अभिप्राय से यह कहा गया है), बिना देवत्व प्राप्त किये अमृत का आस्वादन है, जो कि हमारे जैसे अज्ञान रूपी हिम से ढकी हुई दृष्टि वालों के द्वारा अन्तर्दृष्टि वाले आप जैसे अप्रतिहत दर्शन (विचार अथवा दृष्टि) वाले महात्माओं का दर्शन करना है, और उतने मात्र से अपने को कृतकृत्य समझने वालों का फिर मानसिक विचार के मार्ग का अतिक्रमण करने वाला दर्शनरूप श्रेष्ठ लाभ सर्वथा आश्चर्य और आनन्द को बढ़ा रहा है और अपना उस प्रकार का पूर्वकृत सुचरित्र नहीं देख पा रहा हूं। जिससे इतनी अधिक प्रसन्नता का पात्र हो सका हूं फिर भी आप महानुभावों की निर्निमित्तक परोपकार करने की चाह ही इस विषय में प्रभावकारी हो रही है। इस प्रकार मुझे कृपापात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनाये जाने पर फिर उसको प्राप्त करने की इच्छा तो तरलता से सम्बन्ध रखने वाले (अर्थात् सहृदय) हृदय में अनुकूलतया संजोई हुई है।" तब उस मुनि ने (गृत्समद) राक्षस के चंगुल से छूटने की अपेक्षा से भी राजा के विशिष्ट भाव से सर्वथा सन्तुष्ट होते हुये "बालक के जन्मोत्सव के सुख का अनुभव कर चुके राजा को फिर उपाध्याय के समीप में आये हुये देखेंगे" ऐसा कहकर उसी क्षण में अपने को अन्तर्ध्यान कर दिया ॥३१॥

अथ महाभुजो भावि-तनयविषयकप्रेमदर्शनाद् उद्बुद्ध-संस्कार इव मन्दतामाश्रयति हरिदश्वे, तदीयहृद्वृत्ताविव विरज्यमानायां सन्ध्यायां, तद्विकल्पेष्विव विघटमानेषु रथाङ्गमिथुनेषु सर्वात्मना राजानमुपपन्नायाः श्रियो वियोगादिव संकुचत् सुकुशेशयकुलेषु निशाचरनिबर्हणजनितरुषि, रजनिचरनिकर इव सन्निधानं दधाने तिमिरस्तोमे, एकाधिपतिकत्वसम्बन्धादिवैकीभवितुतारब्धासु हरित्सु, नृपतिरुत्थाय विसर्जितराजव्रजो बहलदीपिकालोकविलुप्यमानतमिस्रव्यामिश्रभावेनाध्वना प्रविश्यावरोधं देवीमपि विदितवृत्तान्तां व्यधात् ॥३२॥

तत्पश्चात् राजा के पुत्रोत्पत्ति विषयक प्रेम दिखाई देने से उत्पन्न संस्कार के समान पश्चात् मन्दता को प्राप्त होने वाले सूर्य के हो जाने पर (अर्थात् संध्या समय में) उसके हृदय के विचारों में जिस प्रकार विशेष प्रकार का अनुराग था, उसी प्रकार सन्ध्याकाल के विशेष राग वाले (लालिमायुक्त) होने पर, जिस प्रकार राजा के पुत्रोत्पत्ति विषयक सारे विकल्प विनष्ट हो गये थे, उसी प्रकार रात्रि के समय चक्रवाक पक्षियों के जोड़ों के अलग-थलग हो जाने पर, पूर्ण रूप से राजा को प्राप्त हुई सम्पत्ति के वियोग के समान कमल समूह के संकुचित होने पर, राक्षसों को प्रणष्ट करने से उत्पन्न क्रोध के होने पर राक्षसों के समूह के समान अन्धकार के समूह के समीपस्थ होने पर; एकाधिपत्य के सम्बन्ध के समान एक होने के लिये कर्म के आरम्भ करने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिशाओं के होने पर, राजा ने उठकर, अन्य सामन्त राजाओं के समूह को यथास्थान भेजकर असंख्येय दीपों के प्रकाश से लुप्त होने वाले अन्धकार से रहित मार्ग से अन्तःपुर में प्रवेश करके महारानी को भी समस्त वृत्तान्त को बतलाया ॥३२॥

———

पुत्रीयानुष्ठानवर्णनम्

ततः प्रभृति नरपतिरतिशयिततपोभिर्विधिवदधीत साङ्गनिगमैर्ब्रह्मकल्पैर्ब्राह्मणैरजिह्मवृत्तिभिः कृत्तिवाससो वासवानुजस्याऽन्यासां च देवतानां परितोषपोषकाणि कर्माणि निर्मापयामास ॥३३॥

तब से राजा अत्यधिक तपस्याओं से, विधिपूर्वक पढ़े हुये साङ्ग वेदों के द्वारा ब्रह्मा के तुल्य अकुटिल वृत्ति वाले ब्राह्मणों से मृगजिन धारण वाले शिव, इन्द्र के भाई विष्णु तथा अन्य देवताओं के सन्तोष को बढ़ाने वाले कर्मों का अनुष्ठान कराने लगा ॥३३॥

तथाहि—केचिदग्निहोत्रभसितभासुरभालभूमयो गृहीतरुद्राक्षस्रजो विधिवद्विहितव्रताः कृतप्रत्येकमन्त्रसिद्धयो यथावदनुष्ठितविविधन्यासाः क्रमोक्तमहापयन्तो विधिमहार्यमहिमानो महारुद्रप्रयोगमयोजयन्, केचन करकलितकनककलशनिष्क्रामदविच्छिन्नधारया ब्रह्माण्डमण्डलनिर्गच्छन्मन्दाकिनीस्रोतसेव भगवन्तं त्रिलोचनमभ्यषिञ्चन्, अपरे मन्दं मन्दं विस्पन्दमानाधरपुटा दशनदीधितिव्यपदेशोत्यन्तमवदातं मन्त्रार्थमिव विवृण्वानाः सन्तानगोपालविद्यामावर्तयाम्बभूवुः, अन्ये पदवाक्यप्रमाणेषु परां निष्ठामुपसेदिवांसो बहुवारपरिशीलित प्राज्यपुराणपारायणाः सुस्वराः सुयुक्तनिरुक्तवाचोयुक्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योऽभिधानवेदिनो मात्रामात्रमप्यभ्रंशयन्तो हरिवेशं शशेसुः, परे जातवेदसिद्धविधौ जातवेदसि हविर्जातं यथाभिहितं जुहवाम्बभूवुः, अन्ये शैवसिद्धान्तप्रसिद्धविज्ञानवैभवा अनुपजातविधिभङ्गं लिङ्गसमुदायं पर्यायेण सपर्यामासुः, कतिपये उपशमितडामरा डामराद्यागमकुशला धरामराः संभूय सहस्रादिसंख्यया चण्डीमाहात्म्यखण्डितमाम्रेऽयाञ्चक्रुः ॥३४॥

जैसे कि—कुछ लोग अग्निहोत्र की भस्म से चमकते हुये ललाट वाले, रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए, विधिपूर्वक व्रतों का अनुष्ठान किये हुए, प्रत्येक मन्त्र की सिद्धि किए हुए, ठीक प्रकार से विविध प्रकार के न्यासों का अनुष्ठान किए हुए क्रमशास्त्र के विधान का उल्लंघन न करने वाले, स्थिर महिमा वाले महारुद्राभिषेक के प्रयोग को करने लगे। कोई हाथों में रखे हुए सुवर्णमय कलशों से निकली हुई अविच्छिन्न जलधारा से ब्रह्माण्ड से निकलने वाली मन्दाकिनी की धारा के समान भगवान् शिव का अभिषेक करने लगे। दूसरे कोई धीरे-धीरे स्पन्दित होले अधरों से युक्त हुए दाँतों की किरणों के निमित्त से अत्यन्त शुद्ध मन्त्रार्थ के समान सन्तान तथा गोपालन विद्या की व्याख्या करते हुये उनका अभ्यास करने लगे। अन्य लोग पद (व्याकरण), वाक्य (मीमांसा), प्रमाण (न्याय) शास्त्रों में श्रेष्ठ निष्ठा को प्राप्त हुये। अनेक बार उत्तम पुराणों के परायण का परिशीलन कर चुके हुये, सुन्दर कण्ठस्वर वाले, सुन्दर रूप से निर्वचन की हुई वाणी का प्रयोग करने वाले, पदार्थों के नामों के विशेषज्ञ एक मात्रा तक को भ्रष्ट न करने वाले हरिवेश को पढ़ने लगे। दूसरे लोग वेदज्ञों के द्वारा सिद्ध की गई विधि वाली अग्नि में शास्त्रोदित हव्य पदार्थों का होम करने लगे। अन्य लोग शैव सिद्धान्त में प्रसिद्ध विज्ञान के वेत्ता बनकर विधि में कोई त्रुटि न करते हुये पार्थिव शिवलिंगों को बारी-बारी से पूजने लगे और कुछ डामरों (अर्थात् उपद्रवों, विघ्नों को शान्त किये हुये, डामरादि आगम शास्त्र में निपुण डामर यह काशीखण्ड २९/७० के अनुसार शिवोक्त तन्त्रशास्त्र है, जिसके योग-शिव-दुर्गा-सारस्वत-ब्रह्म-गन्धर्व नाम से ६ भेद हैं।), ब्राह्मण लोग, मिलकर के हजार इत्यादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की संख्या से अखण्डित रूप से भगवती चण्डी के महात्म्य का अभ्यास (पारायण) करने लगे ॥३४॥

इत्येवं प्रायेषु च प्रतायमानेषु कर्मसु कदाचिदुत्फुल्लविलोलविलोचनोत्पला श्रवणावतंसभ्रमन्मधुकरगुञ्जितंस्तारतरै रहस्यं जनान्तरश्रवणाद्रक्षन्तीव पुरस्तात् प्रसरता रदनकौमुदीसमुदायेनाददाततमां वाग्देवतामिव विषदयन्ती देव्याधात्रेयिका चन्द्रिका नाम रहसि राजानमभ्युपेत्यान्तःपुरजरतीभिरभियुक्ताभिः सर्वैकवाक्यतया विदितदोहदलक्षणां देवीं सविनयं निवेदयाम्बभूव ॥३५॥

इस प्रकार से सम्पन्न किये जा रहे कर्मों के अनन्तर किसी समय विकसित सुन्दर नेत्रकमल वाली, कर्णाभरणों में भ्रमण करने वाले भँवरों के उच्चावच गुञ्जार के द्वारा गोपनीय बात को अन्य लोगों के सुनने से मानो बचाती हुई, सामने की ओर फैलने वाले दाँतों की चन्द्रिका तुल्य प्रकाश के समुदाय से स्वच्छतम सरस्वती देवी के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करती हुई, महारानी की धायी चन्द्रिका नाम वाली ने एकान्त में राजा के पास जाकर अन्तःपुर की वृद्ध और विदुषी स्त्रियों के स्वर में स्वर मिलाकर गर्भवती होने के प्रकटित लक्षण वाली महादेवी मलयवती के बारे में विनम्रपूर्वक निवेदन किया ॥३५॥

पारितोषिकवितरणम्

ततो नरपतिरगृहीतप्रामाण्यकेनापि विषयविशेषवैभवादन्तःकरणोल्लासकारिणा किम्पुनरसम्भाव्यमानार्थव्यभिचारस्य महर्षिवचसः संवादादुपजातप्रामाण्यनिश्चयेन तेन तथाविधेन तद्वचसा निरन्तरममृतावगाहनेनेव बहिरिवान्तरपि शिशिरायमाणसर्वावयवः, प्ररूढकण्टकदन्तुरतया निर्गमयि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nara, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुमिष्यमाणमपि किञ्चिदिव विलम्बेन निर्गतं करेणादाय लोहितकांशुजालजटिलमंगुलीयकं तस्या वसन्तमास इव रक्ताशोकशारवायाः कुंकुमारुणं कोरकं प्रसादमकरोत् ॥३६॥

तत्पश्चात् राजा राजशेखर ने चन्द्रिका के कथन को यथार्थ रूप से ग्रहण न करने पर भी (अर्थात् उसके कथन को सत्य न मानते हुए भी), विशिष्ट प्रकार के ऐश्वर्य से चित्त को आनन्दित करने वाले, किन्तु गृत्समद मुनि के वचन के अर्थ की असत्यता की असम्भाव्यता के साथ मिलान करने से उस धायी के कथन की सत्यता का निश्चय हो जाने से, उसके उस प्रकार के दोहदलक्षण को बतलाने वाले वचन से, लगातार अमृतकुण्ड में स्नान करने के तुल्य, बाह्य अंगों के समान आन्तरिक अंगों में भी सर्वात्मना शीतलता का अनुभव करता हुआ, उन्नत रोमाञ्च होने के कारण बाहर ले जाने की इच्छा से युक्त होते हुये भी थोड़े विलम्ब से निकले हुये लाल किरण समूहों से सुशोभित अंगूठी को हाथ में लेकर उसके वसन्त ऋतु के समान लाल अशोक की शाखा के लिये केसर के समान लाल कली को परितोषिक के रूप में प्रदान किया ॥३६॥

सा तु सादरं परिगृह्य मकरन्दान्तरप्रतिबिम्बितबालमिहिरमण्डललोहितनलिनलीलाललितेन पाणिना भूमिस्पर्शपूर्वकमनेकवारान् प्रणमन्ती चरणादुत्तमाङ्गपर्यन्तमलातचक्ररेखावदखण्डदण्डायमानेन तत्कान्तिसन्तानेन समारोपितशिञ्जिनीगुणा, कुसुमविशिखशरासनलतेव लक्ष्यमाणा, पुरुषांगुलिग्रहणयोग्यतयाऽभ्यधिकपरिमाणमपि, प्रचुरमरीचिकराम्बितत्वेन सम्यग् मिलितमिव दृश्यमानमंगुलीयकमीषदाकुञ्चितशिखया करशाखया धृत्वा पूर्ववदेव प्रणम्य, राजसन्देशेनेव करवृत्तिना तेन देवीमानन्दयितुमन्तः पुरमेव प्रत्ययासीत् ॥३७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब उस (चन्द्रिका) ने बड़े आदर के साथ उस अंगठी को लेकर पराग के बीच में प्रतिबिम्बित हुये प्रातः कालीन सूर्य के बिम्ब से लाल रंग के हुये कमल की शोभा को लिये हुये हाथ से भूमि को स्पर्श करके अनेक बार प्रणाम करती हुई, पैर से शिर तक अलातचक्र की रेखा के समान पूर्ण दण्ड के समान होकर के उस (अंगूठी) की शोभा के फैलने से धनुष की डोरी के समान गुणों का अपने में आरोप करती हुई, कामदेव के धनुष की लता के समान दिखाई देती हुई, पुरुष की अंगुली में रहने की योग्यता से, अधिक परिमाण वाली होते हुये भी बहुत अधिक किरणों के समूह से अच्छी प्रकार मिले हुये से, किन्तु दिखाई देने वाली अंगूठी को कुछ मुड़ी हुई अंगुली वाले हाथ से धारण करके, पहले की तरह प्रणाम करके, राजा के सन्देश के सूचक हाथ में पहनी हुई उस अंगूठी से देवी मलयवती को प्रसन्न करने के लिये अन्तःपुर में ही लौट गई ॥३७॥

राजा तु तत्कालोपनतममात्यवर्यं बुद्धिनिधिं विलक्षणेन मुखोल्लासेन हेत्वन्तरबाधसहकारेणानुमिततद्वृत्तान्तमपि प्रत्यक्षिततद्वार्तमात्मानमिव मनोरथनिबन्धनेनाभ्यासेन पुनरपि शब्देन विदितवृत्तिं कृत्वा, तेन सममावश्यकानि राजकार्याणि च कृत्वा, चिन्तयित्वा श्रुत्वा च पूर्वोपक्रान्तानां कार्याणां बह्वीरवस्थाश्चिरन्तत्रैव विश्रम्योदतिष्ठत् ॥३८॥

उधर राजा उस समय पास में आये हुये श्रेष्ठ (प्रधान) मन्त्री बुद्धिनिधि को, विचित्र प्रकार की मुख की प्रसन्नता के द्वारा, पुत्र की उत्पत्ति रूप कारण से अन्य विषय के बाध अर्थात् अभाव की सहायता से देवी मलयवती के दोहदलक्षणरूप वृत्तान्त को जिसने जान लिया था, और कानों से उस बात को प्रत्यक्ष ही जिसने सुन लिया था, उसको अपने ही समान, मन के विचारों की आवृत्ति के द्वारा फिर भी शब्दों से मलयवती विषयक समाचारों को ज्ञात कराकर, और उसके साथ आवश्यक राज-कार्यों को सम्पन्न करके, विचार कर, पहले से आरम्भ किये गये राज-कार्यों की बहुत प्रकार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्थाओं को सुनकर और विचार करते हुये देर तक विश्राम करके खड़े हो गये ।।३८।।

शयनवर्णनम्

अथैकदा चरमाचलचूडातडागकृतक्रीडेन काननकुञ्जरकुलेन रक्तोत्पलैः सह मिश्रिते तद्भ्रमादिव करपुष्करव्यापारेणमग्ने मिहिरमण्डले मित्रवियोगापन्नवैराग्येण दिवसेन भूर्जत्वचीव परिगृह्यमाणायां सन्ध्यायां, तदभिवन्दनपरेण सिद्धजनेनाञ्जलिविक्षिप्तासु कुन्दकुसुमपङ्क्तिष्विव दृश्यमानासु तारकासु धूजटि नृत्योत्क्षिप्तायां गजत्वचीव चुम्बिताम्बरायां तिमिरलेखायां. कृतोचितक्रियो नृपतिरुदिते पूर्वदिगङ्गनाचन्दनाङ्गरागभाजने कुमुदबान्धवे, शयनोचितायां वेलायां, चन्द्रकिरणप्रसङ्गप्रवृत्तनिस्यन्दस्य स्फटिकपर्वतस्येव चन्द्रिकापुनरुक्तसुधालेपस्य प्रासादस्योपरितनाद्दचन्द्रशालायामवयव इव श्वेतद्वीपस्य, एकदेश इवेन्दुभुवनस्य, भागविशेष इव शेषनागस्य, अंशावतार इव दुग्धोदन्वतो, भागभेद इव गङ्गापुलिनस्य—शयनीय सकलभुवनविजयविश्रान्तो विश्रामकामुक इव मीनकेतनोऽभितो दीप्यमानैः प्रतापदहनप्ररोहैरिव प्रदीपैः परिवृतो, वासवलभीगवाक्षविवरप्रविष्टैरिन्दुकरैर्धवलबालव्यजनैरिव वीज्यमानो, जगद्विजयवैजयन्तीभिरिव वितानकलम्बमानमौक्तिकजालमञ्जरीभिरुपास्यमानो. यामिकैरिव दूरतरविलीनवृत्तिकैरिन्द्रियैरमुच्यमानो, मनोभवरूपाभिमानखण्डनकुपितेनेव मनसाऽभ्यन्तरनाडीविशेषप्रवेशान्निलीय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानेन प्रपञ्चान्तरभोगसाहायकसम्पादनोद्यताभ्यामिव बहिर्विषयविमुखाभ्यां लोचनाभ्यां निमीलिताभ्यां बहिरिन्द्रियनिरोधदौः साधिकैरिव मुहुर्गतागतवद्धावधानैः श्वासमारुतैर्विजयलक्ष्मीनिर्भरपरिम्भशिथिलितैरिगवयवैः सुखमस्वपत् ॥३९॥

"तत्पश्चात् एक बार को बात है राजा शयनोचित काल में सुखपूर्वक सोया"—इस बात को वर्णित करते हुये ग्रन्थकार लिखते हैं—तदनन्तर एक बार जब अस्ताचल के शिखर रूपी तालाब में क्रीड़ा कर चुके हुये वन के हाथियों के झुण्ड के द्वारा लाल कमलों के साथ मिश्रित होने पर उन रक्त-कमलों के मानो भ्रम से अपनी शूंडों के नोक की चेष्टा से सूर्यमण्डल को तोड़ दिया गया था, तब मित्र और सूर्य के वियोग के कारण उत्पन्न हुये वैराग्य वाले दिन के द्वारा भोजपत्र की छाल में मानो संध्या की प्रतीति होने पर, सन्ध्या-वन्दन में तत्पर सिद्ध लोगों के द्वारा हस्ताञ्जली से बिखेरी गई कुन्द के पुष्पों की पंक्ति के समान आकाश में) तारों के दिखाई देने पर तथा शिव के ताण्डव नृत्य के अवसर में ऊपर को उछाले गये गजचर्म में मानो आकाश को छूने वाली अन्धकार की रेखा के छा जाने पर, सन्ध्या-वन्दनादि उचित क्रियाओं को कर चुका हुआ राजा (राजशेखर), पूर्व दिशा रूपी स्त्री के चन्दन के लेप को रखने वाले शृंगारदान के समान चन्द्रमा के उदय होने पर, सोने के योग्य समय में (अर्थात् रात्रि के दूसरे प्रहर में) चन्द्रमा के किरणों के सम्पर्क से बहने वाले झरने के काँच के पर्वत के समान दिखाई देने पर, चन्द्रमा की चांदनी के द्वारा दुगुने किये गये अमृत के लेप वाले राजमहल की ऊपरी अट्टालिका के प्रकोष्ठ (शिरोगृह) में श्वेत द्वीप के अवयव के समान, चन्द्रलोक के एक हिस्से के समान, शेषनाग के अवयव विशेष के समान, क्षीरसागर के अंशावतार के समान (तथा) गंगा के तट के अंश विशेष के समान सेज (शय्या) में, सम्पूर्ण लोकों को विजित करने से थके हुये, विश्राम की इच्छा वाले कामदेव के समान, चारों ओर से प्रकाशित हो रहे प्रताप रूपी अग्नि के अंकुरों के समान दीपकों से घिरा हुआ, निवास स्थान की छतों पर के रोशनदानों के छिद्रों से अन्तः प्रविष्ट हुये चन्द्र-किरणों के द्वारा मानो श्वेतवर्ण के चामरों से सेवित किया जाता हुआ, संसार के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विजय की पताकाओं के समान शयनमण्डप में लटकती हुई मोतियों की मालाओं की मंजरियों से सेवित होता हुआ, प्रहर की सूचना देने वालों के समान अत्यन्त गुप्त वृत्ति वाली चक्षुः श्रोतादि इन्द्रियों के द्वारा न छोड़ा जाता हुआ, कामदेव के रूप सौन्दर्य के अभिमान को खण्डित करने के कारण क्रोधित हुये से मस्तिष्क की भीतरी पुरीतद्रूप नाड़ी विशेष में प्रविष्ट हो जाने से छिपे हुर मन के द्वारा, स्वप्ररूप दूसरे प्रपञ्च (जागरित प्रपञ्च से भिन्न) के भोग अर्थात् अनुभव की सहायता करने के लिये मानो उद्यत, बाहरी रूपादि विषयों की वृत्तियों से रहित, बन्द किये गये नेत्रों से, बाह्य इन्द्रियों के व्यापार को रोकने में मानो बाधक बार-बार आने जाने वाले श्वास-प्रश्वास में लगे हुये ध्यान वाले प्राणवायुओं से, विजय (करने से प्राप्त) लक्ष्मी के प्रगाढ़ आलिंगन से ढीले पड़े हुये हस्तपादादि शरीरावयवों के समान, सुखपूर्वक सोया ॥ (यहाँ 'लोचनाभ्याम्' इत्यादि में 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (अष्टाध्यायी 'वा २/३/१८) से उपलक्षण में तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।) ॥३९॥

स्वप्नवर्णनम्

अथ समास्फालितशेफालिकाकुसुमपरिमलोपनायिनि गृहीतावश्यायसीकरे कुमुदकमलपलाशानामन्योऽन्यसंमुख-विमुखक्रियाजनके निर्भरनिधुवनानुबन्धखिन्नयुवतिजनगात्रा-ह्लालकारिणि प्रवातुमुपक्रान्ते वैभातिके नभस्वति, चक्रवाक-विरहाभिचारमन्त्रमिव जपत्सु मुखरायमाणेषु कुशेशयकारे-कान्तरगर्भितेषु मधुकरेषु, विजातीयतत्तदनेकद्रव्यसमवेतरूप-सम्बन्धादिव विच्छायतामुपगच्छन्त्यां चन्द्रिकायां, मन्दाकि-नीपुलिनकोकमिथुनमुक्तविरहानलोष्णनिःश्वासपक्वतयेव धूस-रायमाणे चरमाचलशबरसुन्दरी कर्णवतंसकेतककिसलयाकारे लम्बमाने हरिणलाञ्छनबिम्बे, चक्रवाकविरहदहनविस्फुलिङ्ग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कणिकास्विव विरलायमानासु कतिपयावशिष्टासु तारकासु जरदनोकहकोटरप्रवेश व्यासवते, कौशिककुले, मन्दस्नेहतया निर्वाणाभिमुखेषु यतिजनात्मस्विव प्रदीपेषु, विरहितसंकेत-निकुञ्जकेतनासु स्वभवनाभिमुखीष्वभिसारिकासु, कमल-प्रबोधमङ्गलपाठकेष्विव विरुवत्सु तटतरुविहगेषु, तिमिर-स्तोमेष्विव भगवता भास्वता सह कलहायमानेषु मन्देह-वृन्देषु, तद्गात्रनिर्गलदसृग्धाराभिरिव लोहितायमानायां पुरु-हूतहरिति प्रवर्त्तमाने पापहारिणि स्वाध्यायकोलाहले त्रयीव-घूश्रवणावतंसपल्लवप्रायासूद्यमानासु अग्निहोत्रपावकधूम-लेखासु, प्रभातकल्पायां क्षपायां, स्वप्नदशाभ्यन्तरे प्रभाभ-रोद्भासितभुवनाभोगभागं, मुनिसमूहेन प्रणम्यमानमुदयद-हिममयूखमण्डलाभिर्गम्य महत्तरं महो महादेवीवदनपद्मया तदुत्तरदेशं प्रविशद्विलोकयाम्बभूव ॥४०॥

(इसके पश्चात् सोये हुये राजा ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में सूर्यमण्डल से निकले हुये विशाल तेजः समूह को महादेवी मलयवती के मुख से उदर की ओर प्रविष्ट होते हुये देखा—यह वक्ष्यमाण परिच्छेद का सारांश है।) सो-जाने के पश्चात् सुन्दर रूप से कँपाये गये शेफालिका (सुवहा) के फूलों की सुगन्ध को फैलाने वाली, ओस की बूंदों को ग्रहण की हुई, कुमुद और कमल के पत्तों के एक दूसरे के आमने सामने तथा विरुद्ध दिशा में होने वाली कम्पन क्रियः की उत्पादक, प्रगाढ़ सम्भोग के सम्बन्ध से क्लान्त युवतियों के शरीर को सुख देने वाली प्रभातकाल की वायु के बहने के लिये प्रवृत्त होने पर चक्रवाकों (चकवा पक्षियों) के वियोग को समाप्त करने के लिये उच्चाटन मंत्र को जपते हुये से कमलों की कलियों के भीतर पड़े हुये और (पंखुड़ियों का खिलना जान) मुखरित होने वाले भ्रमरों के अवस्थित होने पर, भिन्न-भिन्न जाति वाले उस-उस प्रकार के अनेक द्रव्यों में समवाय सम्बन्ध से विद्यमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो रूप उसके मानो सम्बन्ध से कान्ति रहितता को प्राप्त होने वाली चाँदनी के होने पर, मन्दाकिनी नदी के तट पर, चक्रवाक पक्षियों के नर मादा के जोड़ों के द्वारा छोड़े गये वियोगाग्नि के उष्ण श्वास में पक जाने के तुल्य मलिन हुये अस्ताचल में रहने वाली भिल्लिनियों के कर्णाभरणों की शोभा देने वाले केतकी के पत्रों के समान लटकने वाले चन्द्रबिम्ब के होने पर, चक्रवाकों के विरहाग्नि की चिनगारियों की किनकियों के समान कुछ थोड़े से ही बचे हुये तारों के होने पर जीर्ण पुराने वृक्षों के खोखलों में प्रवेश के लिये आतुर उल्लुओं के समूह के होने पर, स्नेह (राग या तैल) क्षीण हो जाने से मोक्षाभिमुख होने वाले सन्यासी लोगों के आत्माओं के समान दीपकों के होने पर, अभिसारिका-युवतियों के संकेत भवन को छोड़कर अपने भवन की ओर अभिमुख होने पर (अभिसारिका का लक्षण साहित्य दर्पण में इस प्रकार बतलाया गया है "अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा, स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका" ।), कमलों के खिलने पर मानो मंगल पाठ (स्वस्तिवाचनादि के तुल्य) करने वाले नदी-तट के वृक्षों के पक्षियों के चहचहाने पर अन्धकार के पुंजों के समान भगवान् सूर्यदेव के साथ, मन्देह नामक राक्षसों के समूहों के, कलह युक्त होने पर (पुराणादि के अनुसार अन्धकार के प्रेमी मन्देह नामक राक्षस सूर्योदय के समय सूर्यरथ को रोकने के लिये दौड़ते हैं।), और उन कलह करते हुये मन्देहों के शरीरों से निकले हुये खून की धाराओं से मानो पूर्व दिशा के लालिमा युक्त हो जाने पर, पाप को नष्ट करने वाले ब्रह्मचारियों के वेदाध्ययन रूप कोलाहल के आरम्भ होने पर ऋग्यजुःसामवेद रूपी वधू के कर्णाभरण के पत्रों के तुल्य अग्निहोत्र के धुयें की रेखाओं के ऊपर को उठने पर, रात्रि के प्रभातकाल वाली होने पर, स्वप्नावस्था के बीच में कान्ति के प्रसार से समस्त लोकमण्डल को चमका देने वाले, मुनियों (बालखिल्यादि) के समूह के द्वारा प्रणाम किये जाते हुये, सूर्यमण्डल से निकलते हुये बड़े भारी तेजः पुञ्ज को महादेवी मलयवती के मुख के मार्ग से अगले प्रदेश (अर्थात् गले से नीचे) की ओर प्रविष्ट होते हुये देखा। प्राभातिकः स्वप्नः शुभसूचको भवति'— इस आभाणक के अनुसार इस प्रकार के तेजः पुञ्ज का महारानी मलयवती के शरीर में प्रविष्ट होना पुत्ररत्न के गर्भ में आने का सूचक हुआ।) ॥४०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तावदेव प्राभातिकातोद्यनिनादेन नवघनस्तनितानुकारिणा जयशब्दमिश्रेणा च वैतालिकानां प्रबोधमंगलेन तत्प्राप्तिशेसिनेव निद्रामजहात् । अचिन्तयच्च चेतसा किमिदमीक्षितं मया स्वप्नप्रामाण्यमात्रेण फलोपधाननिश्चयस्तावद् विडम्बनमेव भुवनेषु भवति । स्वप्नश्चायं तात्कालिकभावनामूलकत्व सम्भावनायामपि मुनिवचनसेवादितया न केवलमप्रामाण्यकुक्षावेव निक्षेप्तुमर्हः सन्ति च तादृशानि कानिचित्सुकृतदुष्कृतानि सानि स्वप्नमात्रभोग्यमेव फलं प्रसुवत इत्यपि श्रूयन्त आगमप्रवादाः । वेला चेयं प्रभातप्राया, यस्यां स्वप्नदर्शनं फलं न व्यभिचरतीत्याक्षते विसंवादहीनवचस इत्यादि विकल्पयन्नेवोत्कटस्वप्नफलोपधानकोटिकज्ञानस्तिमितमानसो यथाविहितमहमुं खकार्यमन्वतिष्ठत् ॥४१॥

(राजा ने जैसे ही स्वप्न देखा, उसकी नींद खुल गई—इस कथन का विवरण अगली पंक्तियों में इस प्रकार है—) उतने ही में, प्रभात काल के सूचक वाद्यों की ध्वनि से, जो कि नवीन मेघों की गर्जना को अनुकरण कर रही थी और जय-जय की ध्वनि से युक्त थी, स्तुति करने वाले वैतालिकों के जागरणहेतु किये जाने वाले मंगल स्तुतियों से, जो मानो उस शुभ स्वप्न के फल की प्राप्ति का सूचक था, राजा ने निद्रा को त्याग दिया और मन से विचारने लगा—"मैंने यह क्या देखा ? स्वप्न की सत्यता मात्र से फल की प्राप्ति का निश्चय तो वंचनामात्र संसार में है, और यह स्वप्न तत्काल उत्पन्न भावना के फलस्वरूप हुआ—इस संम्भावना में भी मुनि (गृत्समद) के वचनों से मेल खाने के कारण न केवल अप्रामाणिक कोटि में ही रखे जाने योग्य है । उस प्रकार के भी कुछ पुण्य और पाप हैं, जो केवल स्वप्न के द्वारा ही भोग्य फल को उत्पन्न करते हैं- इस प्रकार की भी आगमशास्त्रों की बातें सुनी जाती हैं । इस समय तो लगभग प्रातःकाल हो रहा, जिसमें स्वप्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखने का फल झूठा नहीं होता ऐसा सत्यवक्ता आप्त लोग कहते हैं।" इत्यादि विचार (तर्क-वितर्क) करता हुआ ही उत्कृष्ट स्वप्न के फल की प्राप्ति से सम्बन्धित विषय की जानकारी के विषय में निश्चित बुद्धि वाला होकर राजा ने शास्त्रविहित प्रातः कालीन कार्यों को अनुष्ठित किया ॥४१॥

गर्भिणीकृत्यवर्णनम्

देवी तु ततः प्रभृति वृद्धैरुपदिष्टान् धर्मानन्वतिष्ठत्। तथा हि—प्राभातिकतरुच्छायेव न वृक्षमूलमाश्रयत्, चक्रवाकीव सन्ध्यासमये विमुक्ताहारा समभवत्, कृष्णलमयीव नोलूखलमुसलसेयोगं लेभे, स्थलकमलिनीव न जलाशयं जगाहे, विभातवेलेव न निर्जनं निशान्तमाससाद, पूगलतेव नोद्वेगमभजत्, बालाकुचस्थलीव न करजरसान्वयमसहिष्ट, पद्मिनीव न दिवसमशयिष्ट, शिशिरबिशीथिनीव न व्यायाममतनोत्, रेवतीव नोल्मुकमधश्चकार, द्वेषरहितेव न कुल्यमाचक्राम, विनीतेव न भूतौ विश्रममाततान, कलिभिन्नेव न तुषमाललम्बे, दमयन्तीव न कलिं सेहे. नैयायिकीव नावयवभङ्गमङ्गीचकार, देवयानीव न मुक्तकचा क्षणमप्यासां चक्रे, निदाघकालकलेव नाथुचित्वमाशिश्रिये, चन्द्रकलेव न निरम्बरा तस्थौ, परुषावृत्तत्तिरिव शयनवेलायां सरसपदा नासीत्, भूमिरिव नामङ्गलां गिरमुच्चारयामास, मुग्धेव न धीरं जहास, तारेव गुरुशुश्रूयामवधानं बबन्ध, अपि च सर्वौषधिमिश्रेण पवित्रेण वारिणा स्नातिस्म, मङ्गल्यतरा ओषधीर्मणींश्चाङ्गेषु दधार, अहरहर्महान्ति वस्तूनि श्रोत्रियेभ्यो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्रायायामास, तृतीयासु व्रतेन भगवतीं कुमारजननीं परितोषयाञ्चकार ॥४२॥

उधर देवी मलयवती भी तब से (गर्भ के लक्षणों के तथा राजा के स्वप्न के दिखाई देने के बाद) वृद्ध लोगों के द्वारा बतलाये गये धर्मों का अनुष्ठान करने लगी। जैसे कि प्रातः काल की वृक्ष की छाया अपने मूल का आश्रय नहीं लेती है (अर्थात् केवल मूल के नीचे न रहकर लम्बी रहती है) वैसे ही वृक्ष के मूल के आश्रय में (अर्थात् वृक्ष के नीचे) नहीं बैठा करती थी (गर्भवती के वृक्षमूल में बैठना निषिद्ध होने से)। चकवी जिस प्रकार से सन्ध्या समय में आहार को छोड़ देती है, वैसे ही मलयवती ने भी सन्ध्या काल में आहार छोड़ दिया। गुंजामयी के समान ऊखल और मूसल का संस्पर्श नहीं करने लगी। स्थल में उत्पन्न होने वाली कमलिनी की भाँति तालाब में अवगाहन न करने लगी (गर्भिणी के लिये ऊखल मूसल को पकड़ना तथा जलाशय में स्नान् निषिद्ध होने से)। प्रातर्वेला के समान निर्जन (एकान्त) भवन में नहीं जाया करती थी। (प्रातर्वेला जिस प्रकार निर्जन भवन को प्राप्त होती है, वैसे मलयवती निर्जन भवन में नहीं गई—यह व्यतिरेक उदाहरण है।) सुपारी की लता जिस प्रकार से अपने उद्वेग अर्थात् फल को धारण करती है, वैसे मलयवती ने उद्वेग अर्थात् क्षोभ को नहीं धारण किया (यह भी व्यतिरेक दृष्टान्त है।), बाला के स्तनयुग्म जिस प्रकार नखक्षत को सहन नहीं करते हैं, उसी प्रकार वह भी नखक्षतादि को सहन नहीं करती थी। कमलिनी जिस प्रकार दिन में नहीं सोती है अर्थात् खिलती रहती है, वैसे ही वह दिन में नहीं सोती थी दिन में सोना गर्भिणी के लिये वर्जित होने से)। शिशिर ऋतु की रात्रि जिस प्रकार से व्यायाम अर्थात् काल विस्तार वाली होती है, वैसे वह व्यायाम को नहीं किया करती थी। रेवती नामक नक्षत्र जिस प्रकार उल्मुक अर्थात् तारे को नीचे नहीं गिरने देता है, वैसे ही मलयवती भी उल्मुक—जलते अंगारे को पैर से स्पर्श नहीं करती थी। द्वेष से रहित व्यक्ति जैसे कुलीन का आक्रमण नहीं करता वैसे ही देवी कुल्या (नहर आदि) का लाँघने का कार्य नहीं करती थी। विनीता ने जिस प्रकार भूति—ऐश्वर्य में विश्रान्ति अथवा सन्तोष नहीं पाया (अधिकाधिक ऐश्वर्य की प्राप्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की कामना के कारण), वैसे ही महारानी ने भूति—भस्म में विश्रम—स्थिति नहीं की। कली जिसकी टूट गई हो, वह लता जैसे तुष अर्थात् बुस को नहीं धारण करती उसी प्रकार महारानी भी तुष में नहीं बैठती थी। दमयन्ती ने जिस प्रकार कलियुग को नहीं सहन किया था (कलियुग द्वारा अपनी माया से उसे विमुग्ध न कर सकने के कारण), वैसे ही देवी मलयवती भी कलि अर्थात् कलह को नहीं करती थी। न्यायस्त्रज्ञा विदुषी जिस प्रकार अवयव अर्थात् किसी भी द्रव्य के परमाणु के भंग—विनाश को स्वीकार नहीं करती है, वैसे ही महारानी ने अपने हस्तपादादि अवयवों के मर्दन को पसन्द नहीं किया। देवयानी (इन्द्र की पुत्री) जिस प्रकार कच (वृहस्पति के पुत्र) से रहित हो गई थी (पुराणों के अनुसार वृहस्पति का पुत्र एक बार शुक्राचार्य के पास विद्याध्ययन के लिये गया, उसी समय देवयानी ने कच से विवाहार्थ प्रार्थना की, जिसको कच ने स्वीकार नहीं किया, इसलिये वह मुक्तकचा कही गई है।) वैसे ही देवी क्षण भर के लिये कभी कचों—केशों को खुला नहीं रखती थी। ग्रीष्म ऋतु जिस प्रकार अशुचि (आषाढ मास रहित) नहीं होती, वैसे ही महारानी ने अपवित्रता का आश्रय नहीं लिया। चन्द्रमा की कला जिस प्रकार अम्बर—आकाश के बिना नहीं रहती है वैसे ही देवी अम्बर—वस्त्रों से रहित नहीं रहती थी। परुष वृत्ति अर्थात् गौडीरीति जिस प्रकार सरस पदों वाली नहीं होती (उसके आडम्बर-बन्धात्मक होने से), उसी प्रकार मलयवती सोते समय सरसपदा अर्थात् पैरों को गीला नहीं करती थी। भूमि अर्थात् पृथिवी जिस प्रकार मंगल (जो कि पृथ्वी का पुत्र माना जाता है) के अभाव वाली वाणी (गाली आदि) का उच्चारण नहीं करती, वैसे ही रानी भी अमंगल—अकल्याणकारी वाणी का उच्चारण नहीं करती थी। मुग्ध स्त्री जैसे धीर हास्य नहीं करती है, वैसे ही देवी भी धीर रूप से नहीं हंसती थी (उच्च स्वर से हंसने की तो बात ही दूर है—यह कथनाशय है)। तारा (वृहस्पति की पत्नी) जिस प्रकार वृहस्पति की सेवा शुश्रूषा में ध्यान देती है, वैसे ही महारानी अपने से बड़ों की सेवा और आज्ञापालन का ध्यान रखती थी तथा सब स्थानीय मुरा, मोटी आदि औषधियों से मिश्रित पवित्र जल से स्नान करती थी। अधिक मंगलकारी औषधि और रत्नों को शरीरांगों में धारण करती थी, प्रतिदिन बड़ी-बड़ी वस्तुयें वेदपाठियों के लिये प्रदान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करती थी, तृतीया तिथियों में व्रत के द्वारा भगवती कुमारजननी—पार्वती को परितुष्ट कराती थी ॥४२॥

राजापि गर्भवैगुण्यभयेन तदभिप्रायवेदिनीभिरान्तःपुरकीभिर्निवेद्यमानमर्थजातं प्रतिदिनमपरिहीयमानमाहारयाम्बभूव ॥४३॥

राजा राजशेखर भी गर्भ की विरुद्धगुणावत्ता के भय से उसके अभिप्राय को जानने वाली अन्तःपुर की परिचारिकाओं के द्वारा बतलाये जाते हुये पदार्थों (धन) को, प्रतिदिन, जो कि कम नहीं हो रहे थे, ग्रहण करने लगे ॥४३॥

दोहदलक्षणवर्णनम्

अथ देव्याः प्रवहत्यनेहसि निःश्वाससौरभानुसारिमधुकरनिकुरम्बकैतवेन चूचुकच्छलेन च तदन्तर्गतविवस्वदंशप्रसरदेशुजालविरस्तं तिमिरमिव निरगात्, तत्सन्निधाननिर्वृत्तं चक्रवाकमिथुनमिव पयोधरयुगं पीनतोपचयमापेदे; विकसितमुखकमलाम्भोजिनीवाजम्भृत, राजकरंग्रहयोग्या कुमुदिनीव कलेवरता मन्दतामापेदे, सन्निहिततदुदया पौरन्दरीहरिदिवावदाता बभूव, तन्मरीचिनिचयकञ्चुकिताद्यौरिव विभूषणनक्षत्रनिवहमजहात् तत्समाधिसमाहितमानसा तपस्विसंसदिव न वचनानि विरचयामास ॥४४॥

तदनन्तर कुछ समय बीतने पर देवी मलयवती के मुख की साँस की सुगन्ध का अनुसरण करने वाले भ्रमर-समूह के व्याज से, जो स्तनाग्रभाग का सा रूप प्रकट कर रहा था, उसके भीतर पहुंचे हुये सूर्य किरण के प्रसरण से किरण समूह द्वारा हटाया गया अन्धकार का सा बाहर निकला। उसके सामीप्य से सम्पन्न चक्रवाक के जोड़े के समान दोनों पयोधरों की मोटाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain: Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बढ़ने लगी। विकसित कमलिनी के समान रानी का मुख-कमल खिलने लगा और उसका शरीर नाच उठा। चन्द्रमा की किरणों के द्वारा ग्रहण के योग्य कुमुदिनी के समान राजा के हाथ से ग्रहण योग्य उसकी शरीर रूपी लता मन्दभाव को प्राप्त होने लगी। सूर्योदय के समीप वाली प्राची दिशा के समान उज्ज्वल वर्ण की हो गई और उसने सूर्य की किरणों से व्याप्त द्युलोक के समान आभूषण रूपी नक्षत्रों (तारों) के समूह को छोड़ दिया तथा उस सूर्य के ध्यान में मग्न चित्त वाली तपस्वियों की परिषद् के समान वचनोच्चारण करना छोड़ दिया अर्थात् मौन धारण कर लिया ॥४४॥

तदानीं च नृपतिस्त्रिविक्रमलीलामिव बलिविलयशालिनीं, कुनृपतिसम्पदमिव परिजनकरग्रहणमात्रसंचारिणीम्, असत्कवितामिव मन्दायमानपदन्यासां, पवनगतिमिव निसर्गादूर्ध्वगमनासमर्थां, भ्रमानुमितिमिव विरहितप्रसाधनग्रहां, मीमांसामिव प्रकरणदुर्बलक्रमां, सरसीमिव सुगुरुतरोदरां, मन्दाकिनीमिवान्तः सन्दानितकुमारां, कैकेयीमिव जातमन्थरोल्लासां, कुन्तीमिव धृतपाण्डुभावां, रुक्मिणीमिव कृष्णाकलितकुचाग्राम्, आस्तिकबुद्धिमिव निरालम्बनास्थितिमसहमानां, हिमवत्सानुभुवमिव निबद्धविविधसिद्धौषधिं, वेलामिव ग्रहापहारिमणिगणप्रसाधितां, नीतिमिव कृतमन्त्ररक्षां, गोपालबालकेलिमिव विहितपूतनानिरासोपायां—देवीं मलयवतीमाकलयन्निलयभूतः सकलानां श्वोवसीयानां समपद्यत ॥४५॥

और उस समय राजा महारानी मलयवती को वामन की बलि के विनाशशाली लीला के समान (जैसे कि वामन ने बलि को धर्षित करते हुये तीन लोकों में विक्रमण किया था) तीन बलियों (उदरगत रेखाओं) के विलय अर्थात् भ्रंश वाली, दुष्ट राजा की सम्पत्ति के समान सेवक-सेविकाओं के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाथ से पकड़े जाने पर ही संचरण करने में समर्थ, अप्रशस्त कविता के समान पदों (कविता पक्ष में शब्दों, रानी के पक्ष में पैरों) के मन्द (तुच्छ या हलके) विन्यास वाली, वायु की गति के समान स्वभावतः ऊपर को चलने में असमर्थ, भ्रम जन्य अनुमिति के समान (जैसे कि बिल में चूहे की पूंछ को देखने से सर्प का अनुमान होने लगे) प्रसाधन ग्रह (न्यायपक्ष में प्रकृष्ट, हेतु का ज्ञान, महारानी पक्ष में शृंगार-सजावट का आग्रह) को छोड़ी हुई, मीमांसा के समान प्रकरण (प्रमाण) से दुर्बल क्रम (प्रमाण) वाली (रानि के पक्ष में प्रकृष्ट अर्थात् भारी करण—कार्य को करने में दुर्बल अर्थात् असमर्थ क्रम—उद्योग वाली। पूर्वमीमांसा शास्त्र में श्रुतिलिंगवाक्यप्रकरण स्थान समाख्यानां पारदौर्बल्यमर्थविप्रकषात् (मी० द० ३/३/१४) इस वचन के अनुसार प्रकरण से क्रम—स्थान दुर्बल माना जाता है।), सरसी अर्थात् सरोवर के समान भारी उदर वाली (जलाशय पक्ष में बड़े आयतन वाले), मन्दाकिनी नदी के समान भीतर अवस्थित कुमार (मन्दाकिनी पक्ष में कार्त्तिकेय, तथा मलयवती पक्ष में शिशु) वाली, कैकेयी के समान मन्थरा (कैकेयी पक्ष में मन्थरा नाम की दासी, महारानी पक्ष में मन्थर-मंद-गति) के उल्लास को प्रकट करती हुई, कुन्ती के समान पाण्डुभाव को धारण की हुई (कुन्ती पक्ष में पाण्डु भाव से तात्पर्य पाण्डुपति के होने से है, तथा रानी के पक्ष में पीला वा धूसरित वर्ण को धारण करने वाली—यह तात्पर्य है।), रुक्मिणी के समान कृष्ण कुचाग्र वाली (मलयवती पक्ष में कृष्ण वर्ण के कुचाग्र वाली तथा रुक्मिणी के पक्ष में कृष्ण के द्वारा मर्दित कुचाग्र वाली), आस्तिक बुद्धि के समान आलम्बन से रहित स्थिति को न सहने वाली, हिमालय के शिखर की भूमि के समान विविध प्रकार की सिद्धौषधि (रानी पक्ष में ग्रन्थिबन्धन) को धारण करने वाली, समुद्र तट के समान ग्रहों के द्वारा अपहरण किये जाने योग्य मणि समूह से सुशोभित (समुद्र पक्ष में ग्रहणा योग्य मणियों से सुशोभित, रानी पक्ष में स्कन्द, अपस्मार आदि (बाल) ग्रहों को दूर करने वाले रत्नों से सुशोभित), नीति के समान मन्त्र की रक्षा करने वाली और श्रीकृष्ण रूप बालक की क्रीड़ा के समान पूतना के विनाश का उपाय की हुई (रानी के पक्ष में बालग्रह के निरास का उपाय की हुई), देवी मलयवती को विचारता हुआ, सम्पूर्ण कल्याणों का भण्डार सा हो गया ॥४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सा च निर्गमनसमसमयमेव कुमारमालिङ्गितुकामायाः कीर्त्तेः कान्त्येव, जगद्विजयश्रियः स्मितरुचेव, भूमेः कर्णावतंसकेतकपरागेणेव, सरस्वत्या गात्रविच्छुरिव घनसाररजसेव, धृतिवध्वाः कुचचन्दनद्रवेणेव, औदार्यचन्द्रमसश्चन्दनचन्द्रिकयेव, धैर्योदधेः फेनपटलेनेव माधुर्यमन्दारस्य कुसुमसमूहेनेव, स्वप्नकाले कवलीकृतस्य कुमुदबन्धोः कौमुदीसमुदयेनेव, अवगाह्यमानानन्ददुग्धोदन्वद्रुत्कलिकाकलापेनेव, दुह्यमानकेसरिकामिनीपयोरसेनेव, परितुष्टानां कुलप्रसूतिदेवानां, प्रसादावदाताभिरपाङ्गभङ्गिभिरिव धवलतामङ्गीचकार ॥४६॥

उस महारानी ने भी, उत्पत्ति तुल्य काल में ही कुमार को आलिङ्गित करने की इच्छुक कीर्ति की कान्ति के समान, जगत् के विजय की लक्ष्मी के मुस्कान की शोभा के समान, पृथ्वी के कर्णभूषण रूप केतकी के पुष्प के पराग के समान, वाणी के शरीर में मिश्रित कपूर की धूलि के समान, धैर्य रूपी वधू के स्तनों में लिप्त चन्दन के द्रव के समान, औदार्य (उदारता) रूपी चन्द्रमा के चन्दन रूप ज्योत्स्ना के समान, धैर्यरूपी समुद्र के झाग के पटल (समूह) के समान, माधुर्य रूपी मन्दार वृक्ष के फूलों के गुच्छों के समान, स्वप्न के समय में निगले गये चन्द्रमा की चाँदनी के समूह के समान, आलोडित किये जाते हुये आनन्द रूपी क्षीरसागर की लहरों के समूह के समान, दुही जाती हुई सिंहनी के दूध के समान, सन्तुष्ट हुये कुल-देवताओं की प्रसन्नता से ध्वलित नेत्रान्तों की भंगिमाओं के समान धवलता (श्वेतता) को स्वीकार किया। (यहाँ धवलता की प्राप्ति रूप वर्णन गर्भिणी के स्वभावानुकूल मानकर किया गया है।) ॥४६॥

— —

पुत्रजननोत्सववर्णनम्

अथाप्ततमेष्वनेकशः कृतकुमारभृत्याकर्मसु सन्निकर्षमा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलयत्स्वगदङ्कारेषु, अधिकबद्धावधानासु वृद्धधात्रीषु, प्राप्ते वैजनने मासि, शङ्कुयन्त्रादिभिरविसवादिभिरुपायैराकलितायां, ग्रहगतिगणितागमाग्रगण्यैर्गणकगणैर्भागशो गृहीते लग्ने, सार्वभौमाविर्भावयोग्यायां वेलायां समुपकल्पिते कुमारजन्मोपयोगिन्युपकरणजाते, मन्दंमन्दमनुभूयमानायां प्रसववेदनायामौत्सुक्याकलितेषु सकलान्तःपुरलोकेषु, मन्दाकिनीव स्कन्दं, रेणुकेव रामं, कौशल्येव दशास्यशासनं, रोहिणीव रेवतोरमणं, देवकीव दानवसूदनं, पुलोमजैव जयन्तं, शकुन्तलेव, भरतं, कुन्तिभोजसुतेव धनञ्जयं—महादेवी मलयवती सकलजलधिवलयवसुन्धरासुत्रामताहं सुतमसूत ॥४७॥

दोहद-चिव धारण करने के अनन्तर विद्वत्तम, अनेक बार बालक (उत्पन्न होने वाले) की रक्षा के कार्यों को कर चुके हुये, प्रसव समय के सामीप्य की गणना करने वाले वैद्यों की विद्यमानता में तथा अधिकतर सावधानी रखने वाली बूढ़ी (अनुभवी) धाइयों की विद्यमानता में, प्रसव होने सम्बन्धी दशवें मास के आने पर शंकु नामक यन्त्रों के द्वारा यथार्थ उपायों से समय की कला (सूक्ष्म क्षण) के ज्ञात होने पर, ग्रहों की गति के गणित से सम्बन्धित आगम (गणित-ज्योतिष-शास्त्र) में अग्रणी ज्योतिषियों के द्वारा अवयवतया (नवमाशादि भाग विशेष से) लग्न (राश्युदय) के ज्ञात किये जाने पर, समस्त पृथ्वी के स्वामी (राजपुत्र) के उत्पन्न होने योग्य मुहूर्त्त में, राजकुमार के जन्म के लिये उपयोगी सामग्रियों के संचित किये जाने पर, शनैः शनैः (रानी के द्वारा) प्रसव-वेदना के अनुभव किये जाने पर, सभी अन्तःपुरवासियों के उत्सुकता-युक्त होने पर, गंगा ने जैसे कार्त्तिकेय को, रेणुका ने जैसे परशुराम को, कौशल्या ने जैसे रामचन्द्र को, रोहिणी ने जैसे बलराम को, देवकी ने जैसे श्रीकृष्णचन्द्र को, पौलोमी ने जैसे जयन्त को, शकुन्तला ने जैसे भरत को और कुन्ती ने जैसे अर्जुन को जन्म दिया, वैसे ही महारानी मलयवती ने समस्त समुद्र हैं वलयों (कड़ों) के समान जिसके ऐसी पृथिवी की रक्षा के योग्य (अर्थात् इन्द्र के तुल्य) पुत्र को जन्म दिया ॥४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततः ससंभ्रमचलदवरोधसुन्दरीजनमुक्तावलीगलितमुक्ताजालकैर्लाजसुमनोभिश्च प्रकीर्यमाणावरोधाङ्गणः, समुन्मिषद्भिर्माणिक्यमयूखैः सिन्दूरपरागैश्च स्थगितगगनाभोगः, वादित्रसांराविणैर्लोककोलाहलैश्च समाक्रम्यमाणदिक्चक्रः, श्रोत्रियैर्धात्रीभिश्च समाधीयमानबालग्रहः, राज्ञो हृदयेन विग्रहेण च क्रियमाणरसावगाहनः, पुरोधसा वारवधूकरतालिकाभिश्च संप्रीयमाणशिखिमण्डलः, द्विजगणैः प्रियश्रोतृभिश्च यथा स्पृहगृह्यमाणमहाधनपूर्णपात्रः, कारानिरुद्धैर्जनानन्दैश्च विमुच्यमानशृंखलः, भूषणगणैर्जनसमाजैश्च कञ्चुकिताङ्गनः, समर इव विलुण्ठ्यमानरथ्यः, ग्रहग्रास इव वाच्यावाच्यविवेकविकलः, वसन्तोत्सव इव गीयमान बहलाश्लीलपदकः, कलिकाल इवानवबुध्यमानकुलयुतिवेश्याविशेषः, वेतालावेश इवोन्मादितजनः, जलधिरिव सर्वतोमुखदानतर्पितवाडवः, म्लेच्छदेश इव सञ्जायमानानेकमातङ्गब्राह्मणसम्बन्धः, सूर्योदय इव समन्ताद् विश्राण्यमानांशुकः, अविवेक इवाविशेषदृश्यमानसुवर्णदुर्वर्णः, अश्वमेधप्रयोग इव पुंश्चलीविधीयमानब्रह्मचारिसमाक्रोशः, पवनप्रचार इवानिवारित, बाह्याभ्यन्तरप्रवेशः, वृत्तसंघ इव माणवक्रीडिताकुलः, नभस्यनदीपूर इव निर्मर्यादिवृद्धः, वसुदेवोद्वाहविधिरिव दीयमानरोहिणीलक्षः, अद्भुतोदय इव दृश्यमानद्विजराजभूमिसंसर्गः, अष्टावक्रसंवाद इव महीयमानवन्द्युपशोभितः, रामायणसङ्ग्राम इव क्रियमाणयातुधानप्रतिकूलप्रयोगः, नाटकारम्भ इवानुष्ठीयमाननान्दीप्रयोगः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैयाकरणविषयविशेष इवान्तरङ्गबहिरङ्गविचारहीनः, शर्यातियाग इव प्रमोदोच्चलदस्त्रः, समुद्रकुक्षिदेश इवान्तर्गतानेकमहीभृत्प्रियः, यवक्रीतकथाबन्ध इवार्चावसुपरितोषितदेवपितृकः जैमनीयप्रयोग इव दुर्लभदृष्टान्तोपनयः अमृतमथनसमय इव विभाव्यमानलक्ष्मीस्वरूपः, वेदान्तनिबन्ध इवापरित्यक्तात्ममात्रसत्ताकः, दमयन्तीपरिणय इव दृष्टविधयानादृतदिक्पालः त्रिपुरदाह इव महासंभ्रममयः, राजसूय इव क्षत्रस्य धृतिमिष्टिं दधानः, सौमवध इव निहतप्रपिरूपानकदुन्दुभिः, निवातकवचनिबर्हणदिवस इव पुरुहूतसूताभिनन्द्यमानविजयः कुमारजननोत्सवः प्रावर्त्तत ॥४८॥

(तदनन्तर कुमारजन्मोत्सव मनाया जाने लगा—इस प्रकार का वर्णन करते हैं।) कुमारोत्पत्ति के अनन्तर बड़े आदर के साथ (अथवा शीघ्रता की घबड़ाहट से) चलने वाली अन्तःपुर की स्त्रियों की मोती की मालाओं से झरे हुये मोतियों तथा लाजा (खील) रूपी पुष्पों से अन्तःपुर का आँगन भर गया। ऊपर को उठे हुये लालमणि की किरणों तथा सिन्दूर की धूलि से समस्त आकाश ढक गया। विविध बाजों की आवाज तथा लोगों के कोलाहलों से सम्पूर्ण दिशायें व्याप्त हो गई। वेदपाठियों तथा धाइयों के द्वारा स्कन्द-पूतनादि, बालकों को हानि पहुंचाने वाले, ग्रहों को शान्त किया जाने लगा। राजा (राजशेखर) के हृदय और शरीर के द्वारा आनन्द रूपी सरोवर में स्नान किया जाने लगा। पुरोहित और वेश्याओं द्वारा हाथों से बजाई गई तालियों से अग्नियों तथा मोरों के समूह को प्रसन्न किया जाने लगा। ब्राह्मणों, तथा राजपुत्र के पैदा होने के प्रिय समाचार सुनने वालों के द्वारा, यथेच्छ रूप से, बहुत धन से परिपूर्ण पात्र ग्रहण किये जाने लगे। (कर्म के अन्त में, पूर्णपात्र द्विजों को देने का विधान है, इसी प्रकार खुशी का समाचार सुनने वालों को उपहार देना योग्य है।) कारागार में बन्द लोगों तथा अन्य लोगों के आनन्दों द्वारा बन्धन की बेड़ियों को खोला जाने लगा। (जनानन्दपक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में वेड़ी खोलने से अभिप्राय आनन्द की असीमता को प्राप्त करना है।) आभूषणों के समूह तथा जन समाजों के द्वारा आँगन मानो कंचुक युक्त हो गया। संग्राम में जिस प्रकार युद्ध-भूमि रौंदी जाती है, वैसे ही उस राज-पुत्रोत्सव में लोगों की भीड़भाड़ के कारण राजधानी की गलियाँ रौंदी जाने लगीं, जिस प्रकार राहु के द्वारा चन्द्र-सूर्यादि का ग्रास वाच्याऽवाच्य विकल है, उसी प्रकार उत्सव में कोलाहल के कारण कुछ शब्द स्पष्ट सुने जा रहे थे, कुछ अस्पष्ट, जिससे उनके अर्थ पूर्णतया नहीं ज्ञात हो रहे थे (राहु के ग्रास पक्ष में, राहु का शिर न होने से ग्रास यानी गले से नीचे सूर्य चन्द्र को निगलना उपपन्न न होने से वाच्यविकलता दोष है, ग्रास का अर्थ उपराग होने पर अवाच्य विकलता है।) वसन्तोत्सव—होलिकोत्सव के समान बहुत अश्लील (लज्जाजनक) शब्द गाये जा रहे थे। कलियुग के समान कुलीन स्त्रियों और वेश्याओं का भेद ज्ञात नहीं हो रहा था। वेताल अर्थात् भूत-विशेष के आवेश के समान लोग उन्मत्त हो गये थे। समुद्र जिस प्रकार चारों ओर से जल फैलाकर वाड़वाग्नि को तृप्त करता है, वैसे ही चारों ओर से दान देने के कारण वाड़व अर्थात् ब्राह्मण तृप्त किये जा रहे थे। आर्यनिवासेतर म्लेच्छ देश के समान अनेकों चाण्डालों और ब्राह्मणों का सम्पर्क हो रहा था। सूर्योदय में जिस प्रकार सूर्य द्वारा चारों ओर से अंशुक—किरणों को फैलाया जाता है, उसी प्रकार सब ओर से अंशुक—वस्त्रों का दान हो रहा था। अविवेक में जिस प्रकार सुवर्ण अभेद से दुर्वर्ण—चाँदी जैसा दिखाई देता है, वैसे ही सुवर्ण—ब्राह्मणादि और दुर्वर्ण—अधम जातियों के व्यक्तियों का भेद नहीं ज्ञात हो रहा था। अश्वमेध के प्रयोग के समान व्यभिचारियों के द्वारा ब्रह्मचारियों की निन्दा की जा रही थी। (अश्वमेध में पुंश्चली द्वारा ब्रह्मचारी की निन्दा की बात चिन्त्य है इसकी यथार्थता की छानबीन अपेक्षित है। सस्कृत की कुसुम टीका के कर्त्ता ने यजुर्वेद के २३ वें अध्याय का इस सम्बन्ध में सन्दर्भ दिया है। परन्तु यहां इस प्रकार की कोई बात नहीं मिलती। —लेखक), वायु की स्वच्छन्द गति के समान बाहर भीतर जाना-आना वर्जित नहीं था। पद्यों का समूह जिस प्रकार माणवका-क्रीडित नामक छन्दः से व्याप्त होता है, वैसे बालकों की क्रीडाओं से व्याप्त वह उत्सव था। भाद्रपद की नदी की बाढ़ के समान बिना किसी सीमा के बढ़ता जा रहा था। वसुदेव के विवाह में जिस प्रकार लक्ष्यभूत बलदेव की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माता रोहिणी को दिया गया, उसी प्रकार उस उत्सव में लक्ष (एक लाख) रोहिणी—गायों का दान किया जा रहा था। जिस उदय काल में अद्वितीय पौर्णमासी के चन्द्रमा का उदय क्षितिज का संसर्ग करता है, वैसे ही उत्सव में ब्राह्मणों का राजदरबार में, अद्भूत समागम हो रहा था। अष्टावक्र नामक ऋषि के संवाद के समान समादृत वैतालिकों से सुशोभित था। रामायण में वर्णित संग्रामों के समान राक्षसों के अपसारण हेतु मन्त्रों का प्रयोग किया जा रहा था। नाटक के आरम्भ में जैसे नान्दी—मंगलाचारण का प्रयोग होता है, वैसे ही उत्सव में नान्दी पूजन का प्रयोग चल रहा था। वैयाकरणों में विषय विशेष (अधीत्य, प्रेत्य इत्यादि प्रयोगों) में जिस प्रकार अन्तरंग बहिरंग का विचार नहीं होता (नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः—इस परिभाषा से) उसी प्रकार उत्सव में भी अन्दरूनी तथा बाहरी लोगों का कोई विचार नहीं किया जा रहा था। वैवस्वतमनु के तृतीय पुत्र शर्याति के यज्ञ में जिस प्रकार हर्ष से दस्र—अश्विनी कुमार आ गये थे वैसे ही उत्सव भी हर्षातिरेक से आनन्दाश्रु लाने वाला था। (यहाँ दस्र-अस्र में समंग श्लेष द्रष्टव्य है।) समुद्र के गर्भ में जिस प्रकार अनेकों पर्वतपुत्र मैनकादि रहते हैं, वैसे ही उत्सव में अनेकों राजाओं के प्रियजन मित्रादि आये हुये थे। यवक्रीत की कथा में जिस प्रकार अर्चावसु नामक मुनि के द्वारा देव और पितरों को परितुष्ट करने का वर्णन है, वैसे ही उत्सव में पूजा के द्वारा धनों से देवों तथा पितरों को प्रसन्न किया जा रहा था। पूर्वमीमांसा के अनुमान प्रयोग में जैसे दृष्टान्त और उपनय की दुर्लभता रहती है, वैसे उत्सव का भी दूसरा समान दृष्टान्त दुर्लभ था। अमृतमन्थन के समय जाने गये लक्ष्मी के स्वरूप के समान ही उत्सव में भी लक्ष्मी का स्वरूप परिज्ञान हो रहा था। वेदान्त के ग्रन्थ (ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्यादि) के समान आत्ममात्र की सत्ता का कोई त्याग नहीं कर रहा था। दमयन्ती के विवाह में जैसे प्रत्यक्ष की रीति से भिन्न निर्निमेषादि दृष्टि के कारण इन्द्रादि दिक्पालों का आदर किया गया था, वैसे ही उत्सव में इन्द्रादि दिक्पाल प्रत्यक्ष पूजादि विधि से अवश्य पूजे जा रहे थे। त्रिपुर नामक राक्षस का दाह जैसे भारी संभ्रम—साध्वस (भय) वाला था, वैसे ही उत्सव महान् संभ्रम—आदर वाला था। (संभ्रम—साध्वसेऽपि स्यात् संवेगादयोऽपि—इति मेदिनी) राजसूय यज्ञ के समान क्षत्रिय के धैर्य और इष्टि (राजसूयपक्ष में यज्ञ विशेष, उत्सव पक्ष में वांछित) को धारण करने वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। सौभवधोपाख्यान (शाल्व के विमान के विनाश की कथा) के समान, अनुकूल ढोल और नगाड़ों के ताड़न से युक्त था। (सौभवध पक्ष में, कृत्रिम अनेक दुन्दुभि अर्थात् वसुदेव के विनाश से तात्पर्य है।) निवातकवच नामक असुरों के विनाश के दिन के समान इन्द्र के सूत मातलि के द्वारा विजय—अर्जुन के अभिनन्दन के समान उत्सव में बहुत जगह से बुलाये गये बन्दीजनों के द्वारा राजा के विजय का अनुमोदन हो रहा था। इस प्रकार का वह पुत्रजन्मोत्सव हो रहा था ॥४८॥

यत्र स्वतन्त्रकृतगतयश्चित्ररथाग्रेसरा गन्धर्वादिवि गायन्तो भुवि च दीयमाना अदृश्यन्त, लक्ष्यतिलका बहिर्मुखदृश्याश्चाप्सरोगमा अन्तरिक्षे नृत्यन्तः क्षितौ च प्रवहन्तोऽलक्ष्यन्त। यत्र च सुरासुरमथ्यमानमहार्णवसमुद्गीर्णकोलाहलाशङ्कया मन्दरकन्दराभ्यन्तरनिवासिना केसरिकुलेन, कैटभान्तकप्रयुक्तसुदर्शनोन्मुक्तदानवीजनगर्भस्रावनिदानप्रचण्डाट्टहासविभ्रमेण बलिनिलयालयेन दानवगणेन, समसुप्तिसमयसमुदितपुष्करावर्तकप्रभृतिपयोधरस्तनितप्रतिपत्त्यादिग्वारणनिवहेन, हिरण्यपुरमथनप्रवृत्तपार्थप्रयुक्तपाशुपतप्रहरणप्रकाशितविशृङ्खलप्रणादबुद्ध्या पारावारोदरवृत्तिभिर्जरत्तरग्राहैः, ओषधीसमाहरणोद्यतहनुमत्सिंहनादभ्रान्त्यालङ्कानिलयेन निशाचरनिचयेन, दाशरथिभुजसमाकर्षणभज्यमानधूर्जटिधनुर्ध्वनिधिया महेन्द्राद्रिबद्धसमाधिना भगवता भार्गवेण, खण्डपरशुचरणङ्गुष्ठपोडितदशवदननिष्ठ्यूतनिष्ठुरनिनादमनीषया कैलासवासिना प्रमथयूथेन श्रूयमाणो महतामातोद्यानां निनादः समुल्लसितवान् ॥४९॥

जिस उत्सव में, स्वाधीन किये गये मार्गों वाले, चित्ररथप्रभृति गन्धर्व लोग आकाश में गाते हुए और पृथिवी में जाते हुए दिखाई दिए। (अर्थात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथिवी में विचित्र रथों के आगे चलने वाले गन्धर्व—घोड़े वितरण किए जाते हुए दिखाई दिए, 'चित्रोगदश्चित्ररथः प्रियंवद सुदर्शनः', 'हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वा यक्षकिन्नराः' 'वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः"—इत्यमरः) लक्ष्य है तिलक—तमालपत्र, जिनका वैसी तथा वाहर को अवगुण्ठन के कारण मुख है दृश्य जिनका, वैसी अप्सरायें, अन्तरिक्ष में नाचती हुई और भूमि पर राजभवन की ओर चलती हुई दिखाई दीं। जहाँ देव तथा असुरों के द्वारा मथे जा रहे महासमुद्र से उत्पन्न कोलाहल की आशङ्का भय) से मन्दराचल की गुहाओं के भीतर निवास करने वाले सिंहों के समूह के द्वारा तथा कैटभ के अन्तक श्रीकृष्ण के द्वारा प्रयुक्त सुदर्शनचक्र से छोड़े गये वलि के विरुद्ध जनों के भ्रूणों के पतन के कारण से उत्पन्न भारी अट्टहास के सम्भ्रम से वलिनिलयालय अर्थात् पाताल लोक में गए हुए दानवों के समूह के द्वारा, तथा सब के सोने के समय में उदित हुए पुष्करार्वक इत्यादि नाम वाले मेघों की गजना को जानने से दिग्गजों के समूह के द्वारा तथा हिरण्यपुर नामक असुर के विनाश में प्रवृत्त अर्जुन द्वारा प्रयुक्त पाशुपतास्त्र के प्रहार से प्रकट हुई खलबली की आवाज की वृद्धि से समुद्र के भीतर रहने वाले बहुत बूढ़े मगरों के द्वारा, तथा ओषधी (संजीवनी नामक) को लाने के लिए हनुमान् की सिंहवद् गर्जना से लङ्कावासी राक्षसों के समूह के द्वारा, तथा श्री रामचन्द्र की भुजाओं के खींचने से टूटे जा रहे शिव-धनुष की आवाज के विचार से महेन्द्र पर्वत में लगाई गई समाधि वाले भगवान परशुराम के द्वारा, तथा शिव के पैर के अंगूठे से दबाये गए रावण के थूकने के कठोर शब्द की वृद्धि से कैलास में निवास करने वाले शिव के अनुचरों के समूह के द्वारा सुना गया बड़े भारी बाजों का शब्द प्रकट हुआ ॥४९॥

जातकर्मादिवर्णनम्

यत्र च सविलासबाहुवल्लिसमुद्वेलनविधासु चम्पकदोलामयमिव, विलोचनावर्तितेषु नीलोत्पलमयमिवमिवाऽऽकाशं दर्शयन्त्यो; मञ्जीरशिञ्जितेषु चरणभूमितलाभिहतिवेदना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिवावेदयन्त्यो, निःश्वासमारुतामोदसमावर्जितमधुकरकुल-गरदुदयदनरुन्तुदमरुद्विधीयमानस्वेदवारिबिन्दुप्रतिक्रियास्तद्-भयमूलास्विव भ्रमणलीलासु निपतितकर्णावतंसकेतकीकिस-लयैर्यूनां मनांसि करपत्रैरिव दारयन्त्यो, भ्रमिविभ्रमेष्वपि-कर्णोत्पलकबरीकुसुममिलनेनावाप्तमुखवियोगदुःखभ्रमरारभ-सभग्नहारमौक्तिकजालकैः सामाजिकानां मनोनिवासिनं मकरकेतनं कुसुमांजलिभिरिवार्चयन्त्यो, वलयावलीकलकलैः सहस्रदीधितिमिलनवाञ्छयेवोपरिप्रतिष्ठासमानामम्बरकोक-नदानामुद्गमननान्दीमिव विभावयन्त्यो वारवरवर्णिन्यः सम-नृत्यन् ॥५०॥

और जहाँ पर विलास से युक्त बाहुरूपी वल्लियों के सुन्दर रूप से चलाने के प्रकारों में चम्पक के फूल के बने डोले के समान, नेत्रों की चंचलताओं में नीलकमल के समान आकाश को दिखाने वाली, नूपरों की ध्वनियों में पैरों से भूतल पर होने वाले आघात से पीड़ा को मानो बतलाने वाली, मुख से छोड़ी जाने वाली साँस (निःश्वास) की सुगन्धि से आकृष्ट भ्रमरों के समूहों के पंखों से पैदा की गई कोमल वायु से जिनके पसीने को दूर किया जा रहा था, वैसी सुन्दर वारांगनायें, उन भ्रमरों के समूहों से होने वाला भय मानो जिनका कारण हो, ऐसी मण्डलाकार नृत्यलीलाओं में गिरे हुए कर्णाभरण रूपी केतकियों के पत्तों से युवकों के मनों को मानो आरों से काटती हुई, नृत्य के हावों में भी कान रूपी कमलों तथा कबरी के पुष्पों के मिलने से नहीं प्राप्त हुआ मुख के वियोग का दुःख जिनको, ऐसे भ्रमरों वाली वेग से टूटी हुई मालाओं के मोतियों के छेदों से सामाजिक लोगों के मन में बसे हुए कामदेव को पुष्पांजलियों की भाँति अर्चित करती हुई, कंकणों की पंक्तियों की कलकल ध्वनियों से सूर्य से मिलने की इच्छा से मानो ऊपर को स्थिति के तुल्य आकाशारविन्द के प्रादुर्भाव के समय की मंगल-स्तुति का (स्वस्तिवाचन, आदि) मानो बोध कराती हुई गणों की विलासिनी स्त्रियों का नृत्य हुआ ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ प्रमदपरवशो नरपतिराहितस्नानो विशदाम्बर-संवीतस्सौरभेयीरपरिभेयास्तपनीयं चागणनीयं श्रोत्रियेभ्यो विश्राण्य, बुद्धिनिधिना सार्द्धं मन्तः प्रविश्य, प्रसवपीडया परिक्षामशिथिलावयां, प्रभायाः प्रभावस्य चातिशयशालिभिर्मणिगणैर्मङ्गलप्रदीपप्रतिबिम्बैरिव शोभमानां, समुद्रान्तर्भूमिमिवोत्पादितपीयूषाम्, इन्दुकलामिव विभावितप्रकाशां, वीरुधमिव स्फुटीकृतफलां, बुद्धिमिव विहितानुव्यवसायां, सुरभिसहकार वल्लीमिवानुभूतप्रसवोदयावस्थां, सुमेरुमूर्तिमिव धात्रीमध्यवृत्तिं, नन्दनभुवमिव संगतसन्तानां देवीं, तदेकवर्तिनमेकीभूतमिव स्वानुरागसमुदायं, प्रसादवशात् प्रत्यासन्नमिव विभातविवस्वन्तं, तदौदार्यविर्जितमिव कल्पपादपल्लवं, न्यग्रोधदलशयनलीला कालिकमिव बालवेषमादिपुरुषं, त्रिदशमोहनाय गृहीतार्भकभावमिव नीललोहितं, तिरोहितमुखान्तरमिव कार्त्तिकेयं-कुमारञ्चाकलयंश्चक्षुषि निमेषविरहानन्दवाष्पाभ्यां, चेतसि कन्दलवताऽऽनन्देन, वचसि गद्गदिकया, वपुषि वेपथुना च युगपत्पर्यगृह्यत ॥५१॥

तदनन्तर प्रकर्ष हर्ष के वशीभूत राजा (राजशेखर) स्नान करने के पश्चात् स्वच्छ वस्त्रों को पहना हुआ असंख्य गायों तथा अनगिनत स्वर्णों (तन्नामक मुद्राओं) को वेदपाठी और वेदज्ञ ब्राह्मणों को दान करके, प्रसव की पीड़ा से अतिकृश और शिथिल शरीरावयवों वाली, कान्ति और तेज के आधिक्य वाले रत्नों के समूहों के, जो मांगलिक दीपकों के प्रतिबिम्बों के तुल्य दिखाई दे रहे थे, द्वारा शोभित होती हुई, अमृत को उत्पन्न करने वाली समुद्र के भीतर की भूमि के समान हुई, चन्द्रमा की कला के समान प्रकाश को प्रकट करने वाली, वनस्पति के समान व्यक्त-फल वाली, बुद्धि के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यभिज्ञा का विधान की हुई, वसन्त ऋतु के सुगन्धित आम की (वल्ली) (मंजरी) के समान फल की उत्पत्ति की अवस्था का अनुभव की हुई, सुमेरु पर्वत की मूर्ति के समान धात्री- पृथ्वी के बीच में विद्यमान (रानी के पक्ष में धाइयों के बीच में बैठी हुई), नन्दनवन के समान सन्तान-पुत्र से समन्वित (नन्दनवन के पक्ष में सन्तान से अभिप्राय देववृक्षों से है। अतः इस प्रकरण में धात्री संतान शब्दों में श्लेष अलंकार है।), देवी मलयवती को, और उस (देवी) की गोद में रहने वाले अपने प्रेम के समुदाय के एकत्रित रूप के समान, प्रसन्नता के कारण समीप में प्राप्त प्रातःकाल के सूर्य के समान, देवी की उदारता से आकर्षित कल्पवृक्ष के पुष्पपत्र के समान, वटवृक्ष के पत्ते में सोने की लीला के समय के शिशुवेषधारी विष्णु के समान, देवों को मोहित करने के लिए बालक के रूप को धारण किए हुए शिव के समान, अन्य मुख लुप्त हुए कुमार-कार्तिकेय के समान, बालक (निज पुत्र) को देखता हुआ, नेत्र में निर्निमेषता और आनन्दाश्रुओं से, मन अंकुरित हुए आनन्द से, वचन में गद्गद्युक्त स्वर से, और शरीर में कम्पन से एक साथ ही व्याप्त हो गया ॥५१॥

कुमारमहानुभाववर्णनम्

ततो बुद्धिनिधिः सानन्दं राजानमभ्यधत्त—"देव ! दृश्यतामस्य कुमारस्य जननाव्यवहितोत्तरमेव कुमारस्येव सर्वाभिभावी महाननुभावविशेषः। तथाहि—प्रभातप्रभाकरस्येव प्रसर्पन्तो प्रभाप्रदीपानां प्रकाशमपकर्षमापादयति; अस्फुटकण्ठस्यापि रुदितध्वनिर्बालकेसरिगर्जितमनुहरति; गम्भीरतया लोचनानन्दजनकोऽपि तेजोविशेषो विशेषेणभिलक्ष्यमाणश्चक्षुषोः परिक्षोभमिव प्रसूते; कौस्तुभमणिरिव नारायणवक्षःस्थलम्—अहमुखमिहिर इव गगनतलं प्रभया वासभवनान्तरमभितः समुद्भासयति, इमेऽस्यान्धकाराहंका-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

रतिरोधानकुशलाः कुञ्चिताः केशाः, इदं च चक्रवाकचञ्चु-दलितमृणालसम्बन्धिकतिपयसूत्रसमुदायचिह्नं पद्माकरप्रति-बिम्बितं शशलाञ्छनशकलमिवास्य विभात्यूर्णारमणीयं भालतलम्; इयञ्च तनीयसी नीलमणिमरीचिशलाकेव विभ्राजतेऽस्य भ्रूलेखा, इदमस्यावदातीकरोति गर्भनिकेतनं विकचकेतकीकुसुमकिसलयानुकारि लोचनयुगम्; एषाऽस्य नासाऽनासादितातिदीर्घह्रस्वभावा स्वभावादेव भावुकमद्-भावयति; एतदस्यानतिचिरसमास्वादितस्तन्यरससीकरकर-म्बितं रदनव्यतिरेकेऽपि स्मितच्छायाच्छुरितमिव विलसति विन्यस्तमौक्तिकपद्मरागरुचकरुचिरमधरबिम्बम्; इदमस्य बालरूपस्य भगवतो विश्वरूपस्य शयनानुरूपतया संक्षिप्त-शेषभोगसमानाभोगं भाति भुजद्वयम्; इदञ्चास्य कुलिश-लाञ्छितं कौशिकस्येव, कुशेशयमधुरं मधुरिपोरिव प्रशस्त-लेखं स्त्रिरिव, स्फुरति—मीनसगतं कमलमिव, पुरस्तादत्य-न्तनिरवकाशतया भीतयेव बद्धमुष्टितया परिगृहीतं करयुग-लम्, इमेऽस्य करतलमिलिताङ्गुलीदलतया तत्संगता नख-मयूखा हस्तसरोरुहकेसरप्रसरा इव प्रसर्पन्ति; इदमस्य साम्प्र-तिकपरिणाहानुसारेणानुमेयभाविपरिणाहमालक्ष्यते वक्षःस्थ-लम्; एतदस्याचिरविनाकृतनाल नारायणीयमिव नाभि-मण्डलम्; इदं च कोकनदकोमलमूर्ध्वरेखावैजयन्तीशतकोटि-च्छत्रलाञ्छनं राजसमाजशेखरकुसुमकेसरकदम्बपुनरुक्तियो-ग्यनखमयूखनिकुरम्बकं चरणद्वयम्; इदञ्च सुन्दरीवदनमिव सिन्दूरबिन्दुना, गिरिगुहागृहमिव केसरिकिशोरकेण, धूर्जटि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जटामण्डलमिव कलामात्रेण प्रालेयभानुना, शखणमिव स्कन्देन, नन्दगोपमन्दिरमिवारविन्दनयनेन स्तनन्धयेनाप्यधिष्ठितमनेन धाम समधिकं मधुरत्त्वमधृष्यभावं च दधाति; अयञ्च कर्ण इवात्यर्जुनदृष्टिः, अर्जुन इव निर्जितपरिणतमहिमहिरण्यपुरः, भीष्म इव वाहिनीपतिमहिषीसम्प्रसूतः, नल इव निरस्तद्वापरसहायतेजोविशेषः, भरत इव बाल्य एवाधिगतसर्वदमनभावः, हरिश्चन्द्र इव विश्वामित्रपरितोषणयोग्यः, प्रद्युम्न इव शम्बराऽऽजिकरः, हनुमानिवार्भकभावेऽपि भास्वत्पराभवाभिमानः, स्कन्द इवावज्ञातवज्राङ्गसंभवः प्रतिभाति कुमारः, दुग्धसिन्धुसधर्मा धन्योऽयमन्वायो, यतः सुधादोधितिरिव महेश्वरशिरोमहितोऽयं प्रादुर्भूतः, पुण्यवती चेयं वसुन्धरा, यत्रायं बाललीलावहेलितमहेन्द्रानुभावो भगवान् कैटभारातिरिवावतीर्णः, सुकृतविशेषशालीनि च लोकलोचनानि, यानि दर्शनमात्रापकृष्टमदनं मृगाङ्कमौलिमिवैनमनन्तरायमाकलयिष्यन्तीति ।" ॥५२॥

जातकर्मादि के अनन्तर प्रधान मन्त्री बुद्धिनिधि ने राजा से बड़ी प्रसन्नता से कहा—"महाराज ! देखिये इस बालक का पैदा होने के तत्काल बाद ही कार्त्तिकेय के समान सबको वशीभूत करने वाला बड़ा ही विशिष्ट प्रकार का प्रताप है। जैसे कि प्रातः कालिक सूर्य के समान (इसकी) फैलती हुई प्रभा दीपकों के प्रकाश को भी तुच्छ कर रही है, कण्ठ विशेष स्फुट (स्पष्ट) न होने पर भी रोने की आवाज सिंह के बच्चे की गर्जना का अनुकरण कर रही है; गम्भीरता के कारण नेत्रों को आनन्द देने वाला विशिष्ट प्रकार का तेज विशेष रूप से अभिलक्षित होता हुआ आँखों में चकाचौंध सी पैदा कर रहा है; कौस्तुभमणि जैसे अपनी प्रभा से विष्णु के वक्षःस्थल को और प्रभातकालिक सूर्य अपनी प्रभा से आकाश को प्रकाशित करते हैं, वैसे ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(यह बालक अपनी प्रभा से) निवास-स्थान को सामने से प्रकाशित कर रहा है, ये इसके अन्धकार के अविर्भाव (कालेपन) के अहंकार को तिरस्कृत करने में कुशल घुंघराले बाल हैं, और यह चक्रवाक की चोंच से तोड़े गये कमल-नालों के रेशों के समूह के समान चिह्न वाला, कमलों के तालाब में प्रतिबिम्बित चन्द्रखण्ड के तुल्य ललाटपट्टल सुन्दर रोमों से सज्जित हुआ सुशोभित हो रहा है; और वह पतली नीलमणि की किरण की रेखा के समान सुशोभित हो रही हैं इसकी भौंहों की रेखायें; इसकी ये दो आँखें, जो कि विकसित केतकी के पुष्प की पंखुड़ियों का अनुकरण कर ही हैं, सूतिकागृह को स्वच्छ और शुद्ध बना रही हैं, यह इसकी नाक जो न अधिक लम्बी और न अधिक छोटी है, स्वभाव से ही कुशल की संभावना की सूचना दे रही है, यह इसके सद्यः पीत स्तन दुग्ध की बूंदों से मिश्रित, दांतों के न होने पर भी मुस्कराने की शोभा लिये हुये सा पद्मरागमणि के मोतियों से जड़े हुये कंकण के समान सुन्दर ओठ शोभित हो रहे हैं, ये इसके भगवान् विष्णु के सोने की अनुरूपता से छोटे किये हुये शेषनाग के फण के समान विस्तार वाले दो बाहु सुशोभित हो रहे हैं, और ये इसके इन्द्र के (वज्र युक्त हाथों के) समान वज्र धारण से चिह्नित, विष्णु के पद्म के समान कोमल, स्वर्ग के समान उत्तम लेखों—देवताओं वाले (कुमार कर पक्ष में उत्तम रेखाओं वाले) मछलियों से युक्त कमल के समान (हस्त पक्ष में, मत्स्य रेखा से युक्त), आगे की ओर अत्यन्त अवकाश रहित होने से डरी हुई सी बंधी मुट्ठी वाले सुशोभित हो रहे हैं दो हाथ; ये इसके हथेली से मिले हुये अंगुलियों के समूह से सुसंगत नाखूनों की किरणें, हाथ रूपी कमल के केसर के प्रसार के समान प्रकृष्टता से फैल रही हैं; यह इसका इस समय की लम्बाई-चौड़ाई के अनुसार भावी लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान कराने वाला दिखाई दे रहा है, वृक्षःस्थल; यह इसका तुरन्त ही कटी हुई नाल वाला विष्णु के (नाभि मण्डल के) समान नाभि स्थान है, और ये लाल कमल की कोमलता वाले, ऊपर की ओर रेखा वाली वैजयन्ती माला के वज्र के छत्र के चिह्न से युक्त राजाओं के समूहों के मुकुट के पुष्पों के पराग के समूहों की पुनरुक्ति के योग्य नाखूनों की किरणों के समूह वाले दो चरण हैं, और यह, सुन्दर स्त्री का मुख जैसे सिन्दूर के बिन्दु से, पर्वत की गुफा रूप घर जैसे सिंह शावक से, शिव की जटाओं का घेरा जैसे थोड़ी कला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले चन्द्रमा से, शखण जैसे कार्त्तिकेय से, नन्द के ग्वालों का घर जैसे पुण्डरीकाक्ष (कृष्ण) से, स्तनपाल करने वाले इस छोटे से ही शिशु से अधिष्ठित राजप्रासाद अत्यधिक मधुरता और सुन्दरता को धारण कर रहा है; और यह कर्ण के समान अत्यर्जुन दृष्टि है (कर्ण के पक्ष में अर्जुन को अतिक्रान्त है दृष्टि जिसकी यह अर्थ है, तथा बालक के पक्ष में धवलदृष्टि अर्थात् अत्यधिक उज्ज्वल दृष्टि वाला यह अर्थ है। वलक्षो धवलोऽर्जुनः इत्यमरः) अर्जुन के समान प्राचीन बड़े हिरण्यपुर को जीता हुआ (बालक पक्ष में अपने वर्ण से सुवर्णनगर को भी तिरस्कृत करने वाला -- वह अर्थ है।), भीष्म के समान गगा नामक रानी से उत्पन्न हुआ (वाहिनीनां नदीनां पतिर्गङ्गा एव या शन्तनुमहिषी, तस्याः सम्प्रसूतो देवव्रतो भीष्मः—यह भीष्म पक्ष में अर्थ है, बालक पक्ष में वाहिनीपति अर्थात् सेना का स्वामी जो राजा उसकी रानी (मलयवती) से उत्पन्न—यह अर्थ है, वाहिनीपृतना चमूः, स्रवन्त्यामेपि वाहिनी— इत्यमरः), नल के समान द्वापर के सहायक कलियुग के विशेष प्रताप को, समाप्त करने वाला, भरत के समान बाल्यावस्था में ही सर्वदमन भाव को प्राप्त होने वाला दुष्यन्त के पुत्र भरत का बचपन का नाम वीरता के कार्यों को करने के कारण सर्वदमन था, बालक भी उसी प्रकार के गुणों वाला होने से सर्वदमन भाव को प्राप्त हुआ था।), हरिश्चन्द्र के समान विश्वामित्र के परितोषण के योग्य था (हरिश्चन्द्र पक्ष में विश्वामित्र से अभिप्राय तन्नामक ऋषि विशेष से है, बालकपक्ष में, विश्व के अमित्र अर्थात् शत्रुओं के परितोषण—विनयाधान के योग्य—यह अर्थ है।), प्रद्युम्न के समान शम्बराजिकर है (कृष्णपुत्र प्रद्युम्न ने शम्बर नामक असुर से आजि—युद्ध किया था, बालक पक्ष में शम्बर—मृग विशेष के साथ आजि मृगया (शिकार) खेलने वाला अर्थात् तल्लक्षण वाला है।), हनुमान् के समान बाल्यावस्था में भी सूर्य के तिरस्कार करने के अभिमान वाला (बालकपक्ष में सूर्य से भी अधिक प्रताप के अभिमान वाला—यह भाव है।) कार्त्तिकेय के समान वज्रवद् दृढांग की संभावना को तिरस्कृत करने वाला (अर्थात् दृढ अंगों वाला), क्षीर सागर के समान धर्म (यशो धवलतादि गुणों) वाला यह वंश धन्य है, जिससे चन्द्रमा के समान शिव के मस्तक में पूजित यह बालक उत्पन्न हुआ है, और पुण्य की भागिनी है यह पृथिवी, जहाँ यह बाललीला से इन्द्र के प्रताप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को भी तिरस्कृत करने वाला भगवान कृष्ण के समान अवतीर्ण हुआ है, और पुण्य विशेष वाले हैं लोगों के (ये) नेत्र जो कि इस बालक को देखने मात्र से कामदेव के सौन्दर्य को भी तुच्छ समझते हुये शिव के समान इसको निर्विघ्न रूप से देखेंगे ॥५२॥

राजा तु 'नन्वन्ध्यप्रसादास्तपोधना' इत्यभिधाय काञ्चित् कालकलां विश्रम्य ततो निरगात् ॥ ३॥

तब राजा ने भी "अजी तपस्वी लोगों की प्रसन्नता व्यर्थ नहीं जाती" ऐसा कहकर कुछ समय तक विश्राम करके वहाँ (अन्तःपुर) से बाहर निकला ॥५३॥

षष्ठीमहोत्सववर्णनम्

अथ च पञ्चमाव्यवहितोत्तरवृत्तौ समुपागते दिवस उत्सवावशात् स्वर्लोकेऽपि दीप्यमानासु दीपिकास्विव तारकासु, खचिततारकावराटकावयवायामतिरोहितगोमयमूर्तौ साक्षात् षष्ठीदेव्यामिव प्रकाशमानायां प्रदोषसन्ध्यायां, प्रत्यूहकारिषु निशाचरेष्विव दीपप्रकाशेन निराक्रियमाणेषु तिमिरनिकुरम्बकेषु परितुष्टबालमातृकाहासीव ककुभि पूर्वस्यां दृश्यमानायां कुमुदबान्धवज्योत्स्नायां, सन्निहितषण्मुखेष्विव परितोषान्नृत्यत्सु वादित्रनादश्राविषु कलापिकुलेषु, स्वलक्ष्मीविलुण्ठनभयादिव दत्तमुद्रेष्वरविन्देषु, शब्दागम इवासमासपूज्यमानषष्ठीकः, तारकवधसमय इवाभ्यर्च्यमानबाहुलेयः, मायावतीप्रयत्न इव महीयमानप्रद्युम्नः, ज्वलनप्रयाणसमय इव विजृम्भमाणमहाच्छागशब्दः, साहित्यप्रयञ्च इव दीपकाविर्भावभव्यः, समर इव दृश्यमानप्रचुरतरोपदः, हल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धरनिवास इव सन्निहितमुशलः, लिङ्गागम इव श्रूयमाणानेकस्त्रीपुंनपुंसकशब्दः, विद्वत्प्रसंग इव विधीयमानविविधपदार्थप्रतिपादनः, देव्या वाससि वेश्मनि च विलोक्यमानवरवर्णिनीमयभावः, सूतिकागृहे जनहृदये च दृश्यमानारिष्टसिद्धार्थसद्भावः, कोषागारैर्लोकलोचनैश्च विमुक्तमुद्रः, स्वरूपतः, प्रतिकृतौ चावेक्ष्यमाणकुमारसहायदेवीकः, श्रोत्रियैर्लोकैश्च कल्प्यमानागमकोलाहलः, ब्राह्मणैर्वादिकैश्च समुद्घुष्यमाणमुरजाभिधानसहस्रः पुरोहितैर्मल्लजनैश्च क्रियमाणदोषाभिघातः सुमहानुत्सवः प्रववृते ॥५४॥

तत्पश्चात् जन्म के पांच दिन पूरे होने के अनन्तर छठे दिन के प्राप्त होने पर उत्सव के कारण स्वर्ग में भी दीपकों के समान तारों के चमकने पर, सम्बद्ध तारे रूपी कौड़ियों के अवयव वाली, गोबर की मूर्ति जिसकी स्पष्ट दिखाई दे रही थी, वैसी साक्षात् षष्ठी देवी जैसी सन्ध्या की वेला के प्रकाशित होने पर, विघ्नकारी निशाचरों के समान अन्धकार के समूहों के दीपक के प्रकाश से दूर किये जाने पर, प्रसन्न हुई बालक की माता की हँसी की शोभा के समान, पूर्व दिशा में, चन्द्रमा की चाँदनी के दिखाई देने पर, समीप में विद्यमान कार्त्तिकियों के समान, आनन्द से बाजों के शब्दों को सुनने वाले मोरों के समूहों के नाचने पर, (षष्ठीमहोत्सव में स्कन्द का समीप में होना सम्बद्ध ग्रन्थ में प्रसिद्ध है।) अपनी शोभा के विनष्ट होने के भय से मानो कमलों के (विकास के) बन्द होने पर, शब्दानुशासन (व्याकरण शास्त्र) में जिस प्रकार 'क्तेन च पूजायाम्' (२-२-१२) सूत्र वशात् पूजार्थ में विद्यमान क्तान्त शब्द के साथ षष्ठी समास का अभाव (निषेध) होता है, उसी प्रकार असमास अर्थात् विस्तार से पूजी जा रही है षष्ठीदेवी जिसमें ('नद्यृतश्च' ५-४-१५३ से समासान्त कप् प्रत्यय होने पर असमासपूज्यमानषष्ठीकः प्रयोग बना है।) ऐसा वह महोत्सव था। (यहां से आगे सम्पूर्ण प्रथमान्त पद विशेषण हैं "सुमहानुत्सवः" इस विशेष्य के)। तारकासुर के वध के समय में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे तारकजित् की पूजा—प्रशंसा हुई वैसे ही उस उत्सव में बहुत से लोगों को पूजित अर्थात् सत्कृत किया जा रहा था। मायावती अर्थात् कामदेव की पत्नी रति के प्रयत्न के समान प्रद्युम्न (कृष्णात्मज) की सी पूजा वाला वह महोत्सव था, अर्थात् उसमें राजकुमार की पूजा हो रही थी। अग्नि के बुझने के समय में जैसे बड़े बकरे के शब्द की ध्वनि होती है उसके तुल्य ध्वनि वाला वह महोत्सव था। साहित्य के विस्तार के समान दीपक के आविर्भाव से सुन्दर (साहित्य में दीपकालंकार जैसे सुन्दरता का हेतु है, वैसे ही वह महोत्सव भी दीपकों के कारण सुन्दर था—यह आशय है।), युद्ध में जिस प्रकार जीतने वालों के द्वारा अत्यधिक उपहार बाँटे जाते हैं, वैसे अत्यधिक उपहारों से युक्त दिखाई देने वाला, बलराम के निवास के समान समीप में रखे मुशल वाला, लिङ्गानुशासन की भाँति अनेक स्त्रीलिंग, पुल्लिग तथा नपुंसक लिंग के शब्द सुनाई देने वाला, विद्वानों के प्रसंग के समान नाना प्रकार के पदार्थों के विवेचनों के विधान वाला, देवी (—षष्ठी देवी) के वस्त्र और मन्दिर में वरवर्णिनी युक्त भाव वाला वह उत्सव था। (वरवर्णिनीमय भाव का अर्थ लाक्षारोचनामयभाव तथा उत्तमांगनामयभाव है—'उत्तमा वरवर्णिनी', इत्यमरः 'वरवर्णिनी तु लाक्षाहरिद्रारोचनासु च' इति मेदिनी।) प्रसूतिगृह में तथा लोगों के हृदय में अरिष्ट और सिद्धार्थ के अस्तित्व वाला (प्रसूतिगृह में अरिष्टों अर्थात् आसवों का तथा सिद्धार्थ अर्थात् सरसों का सद्भाव था, आसव सूतिका के पीने के लिये और सरसों बाल ग्रहों को हटाने के लिये; उत्सव में भी अरिष्ट अर्थात् शुभकामना तथा सिद्ध कार्य की सद्भावना थी।) कोषागार और लोगों के नेत्रों से मुद्रा का विमोचन वाला (कोषगृहों में सुवर्णादि का वितरण हो रहा था तथा लोगों के नेत्रों की पलकें भी झुक रही थीं) और षष्ठी देवी की प्रतिकृति—मूर्ति में कार्त्तिकेय के सहित दर्शन वाला, वेदपाठियों और अन्य लोगों के द्वारा किये जा रहे भारी कोलाहल वाला, ब्राह्मणों और बाजे बजाने वालों के द्वारा मुरज के बड़े घोष वाला, ब्राह्मण मुर को जीतने वाले कृष्ण—विष्णु के सहस्रनाम का पाठ कर रहे थे। मुरजयतीति मुरजः अन्यष्वपि दृश्यते इति कर्त्तरि डः प्रत्ययोऽत्र द्रष्टव्यः। वादक लोग सहस्रों मुरज (खड़ताल) नामक बाजों को बजा रहे थे—यह अभिप्राय है।) पुरोहित और पहलवान लोगों के द्वारा किये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा रहे दोषाभिघात वाला (पुरोहित तो पूजा द्वारा विघ्नों का निवारण कर रहे थे और मल्ल लोग अपनी दोषा—बाहुओं का आस्फोट अर्थात् कुश्ती के समय में भुजाओं तथा जंघाओं पर ताली मारने का कार्य कर रहे थे।) इत्यादि प्रकार का वह महान् उत्सव होने लगा। इस गद्य खण्ड में श्लेषालंकार का विशेष प्रयोग किया गया है ॥५४॥

नामकर्मवर्णनम्

ततोऽतिक्रान्ते दशमेऽहनि शोभनायां वेलायाङ्कर्मणि परां निष्ठामासेदुषा ब्राह्मणजनेन सम्पादितेषु यथायोग्येषु कर्मसु, कुलाचारकुशलाभिश्चाविच्छिन्नसंप्रदायाभिर्जरतीभिरनुष्ठितेषु लौकिकाचरणेषु, राजा नानाजातीयमर्थसार्थं सार्थवेदाध्यायिभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रतिपाद्य चित्रभानुरिति स्वयमनुरूपं नामतनुजस्य व्यतनुत ॥५५॥

तब दशवें दिन के बीतने पर प्रशस्त समय में कर्म में पूर्ण निष्ठा रखने वाले ब्राह्मणों के द्वारा यथायोग्य कर्मों को कर लेने पर. स्वकुल क्रमागत आचरण में कुशल, न टूटे हुये सम्प्रदाय—धर्मोपदेशादि क्रम वाली वृद्ध स्त्रियों के द्वारा लौकिक आचरण नृत्य-गीतादि का अनुष्ठान कर चुकने पर; राजा ने नाना प्रकार के सार्थक धनादि को अर्थ सहित वेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मणों को दक्षिणात्वेन प्रदान करके अपने पुत्र का, स्वयम् ही, गुणानुरूप 'चित्रभानु' यह नाम रखा ॥५५॥

बालप्रतापवर्णनम्

स्तन्यपानदशायाञ्च मिलिताग्रं तदधरबिम्बं मधुकरचुम्बितं बन्धुजीवकुसुममिव रराजः ततः क्रमेण प्रावृषमिव दृश्यनीरदां तस्य तामवस्थां पश्यन्तौ पितरौ चातकाविव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तापमुज्झाम्बभूवतुः। रक्षासूत्रैर्मृणालगुणैरिव तत्कर-सरोरुहमराजत्। तेन चोपमृद्यमानं महादेवीकलेवरं वीर-सेनतनयेन कुसुमदामेव संमधिकं मधुरभावमेव धारयाञ्च-कार कदाचिन्मातृपयोधरविन्यस्तहस्तपल्लवं कनककमल-कोरकोपरि परिकीर्णमयूखमण्डलो बालभास्कर इव व्यलसत्, जातुचिज् जननीविभूषणमणिकिरणगणान्तरितो मञ्जूषाम-ध्यवर्ती कर्ण इव व्यरोचिष्ट। कदापि पिपासया मातुर्वक्षो-रुहं करेण सविलासमुदस्यन् गोवर्द्धनोद्धरणबद्धकक्षः पुण्डरी-काक्ष इवालक्ष्यत। कदाचिन्मातृदशनदीधितिवृन्दान्तरितः केसरिणीसटान्तरालवर्ती बालमृगराज इव रराज। जातु-चित्पितुरङ्गुलिं वदने विन्यस्य पिबन् विबुधपतिकरशाखा-मास्वादयन् मान्धातेवानुसन्धीयते स्म। एकदा पद्मरागगरी-चिविच्छुरितो निर्गच्छन्नांशुक्षणिकुक्षेर्ध्रष्टद्युम्न इव व्यद्यो-तिष्ट। अन्यदाकरेण मातुर्मुक्तावलीमवलम्बमानो मन्दा-किनीमनुस्मरन् भीष्म इवारोचिष्ट। कदाचिदम्बिकाक्रो-डवर्ती तत्स्तनमण्डलमणिषु प्रतिबिम्बिततया बहुली भूताननो विततान बाहुलेयलीलाम्। कदाचिज्जिष्णुना तातेनोपलालि-तोऽभिमन्युरिव मन्यते स्म। कदाचिच्छूरसुतया जनन्या सविशेषस्नेहं निरूप्यमाणो धनञ्जय इव रराज। जातुचिदु-दीक्ष्यमाणैकदन्ताङ्कुरो हेरम्बं विडम्बयामास। कदाचन सङ्क्रन्दनाभिमुखो जयन्तमनुचकार। कदापि सुमित्रोत्संग-गतो लक्ष्मण इवालक्षि। एकदा महागदाभिरक्षितः परीक्षि-दिवैक्षि ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'स्तन्यपानदशायाम्' इससे आरम्भ करके 'परीक्षिदिवैक्षि' पर्यन्त गद्य खण्ड में मालोपमा से राज-पुत्र का वर्णन किया गया है। स्तनपान की अवस्था में चूचुक (स्तनाग्रभाग) से मिला हुआ बालक का ओठ भ्रमर के द्वारा चूमे जा रहे बन्धूक के पुष्प के समान सुशोभित हुआ। तब निरन्तर वर्षा ऋतु के समान दर्शनीय मेघों वाली उसकी उस अवस्था को देखते हुये उसके माता-पिता ने चातक पक्षी के समान सन्ताप को त्याग दिया। कमलनाल के रेशों के समान रक्षा के तांगों से उसका कर कमल शोभित हुआ। उस बालक के द्वारा मर्दित किया जाता हुआ भी महादेवी मलयवती का शरीर वीरसेन पुत्र नल के द्वारा मर्दित की जीती हुई पुष्पमाला की भाँति और अधिक मधुरता को ही धारण करने लगा। वह बालक कभी तो माता के स्तन पर हस्त रूपी पल्लव को रखा हुआ, सुवर्ण के कमल की कली के ऊपर किरणों को फैलाये हुये प्रातःकाल के सूर्य के समान शोभित हुआ। कभी माता के आभूषण के रत्नों की किरणों के बीच में पड़ा हुआ पेटी के बीच में स्थित हत्थे (हैण्डिल) की भाँति शोभित हुआ। कभी प्यास से माता के स्तन को हाथ से, खेलते हुये उठाता हुआ गोवर्धन पर्वत को उठाने के लिए कमर कसे हुए श्रीकृष्ण के समान दिखाई देता था। कभी माता के दाँतों की किरणों के समूह के बीच में पड़ा हुआ, सिंहनी की सटाओं (केशरों) के बीच में विद्यमान सिंह के बच्चे के समान शोभित होता था। कभी पिता की अंगुली को मुख में रखकर पीता हुआ सूर्य की किरणों की शाखा का स्वाद लेते हुए मान्धाता के समान प्रतीत होता था। (महाराज मान्धाता का सूर्यवशीय होना सुप्रसिद्ध है।) एक बार पद्मराग मणि की किरणों से मिश्रित हुआ बाहर की जाते हुए अग्नि-कुण्ड से द्रौपदी के भ्राता धृष्टद्युम्न के समान चमक पड़ा। दूसरे अवसर पर माता की मोतियों की लड़ी को पकड़ा हुआ गंगा (स्वमाता) का अनुसरण करने वाले भीष्म के समान शोभित हुआ। कभी माता की गोद में बैठा हुआ उसके स्तनमण्डल पर लटकती हुई हार की मणियों में प्रतिबिम्बित होने से बहुत मुख दिखाई देने के कारण कार्त्तिकेय की लीला को मानो फैलाता था। कभी विजय की कामना वाले पिता के द्वारा प्यार-दुलार किये जाने पर अभिमन्यु के समान समझा जाता था। (जिष्णु नाम अर्जुन का भी है, उसके द्वारा उपलालित पुत्र भी अभिमन्यु ही था।) कभी शूरसुता कुन्ती माता के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा विशेष स्नेह से देखा जाता हुआ अर्जुन के समान शोभित होता था। कभी ऊपर को उठते हुये एक दाँत रूपी अंकुर वाला होकर गणेश को विडम्बित करता था। कभी सङ्क्रन्दन—रोदन के अभिमुख होकर जयन्त—इन्द्रपुत्र का अनुकरण करता था (संक्रन्दन यह नाम इन्द्र का भी है, उसके पुत्र जयन्त का इन्द्राभिमुख होना स्वाभाविक है।), कभी सुमित्रोत्संग—अच्छे मित्र की गोद में बैठा हुआ लक्ष्मण के समान दिखाई देता था (सुमित्रा माता की गोद में लक्ष्मण का विराजना सिद्ध है।) और एक बार महागद बड़े वैद्य से रक्षित हुआ वह बालक (चित्रभानु) बड़ी गदा से रक्षित हुए राजा परीक्षित् के समान दिखाई दिया ॥५६॥

अथ समयक्रमवशाद्राजा धात्रीसविधे क्रीडमानं प्रसारितकरसरोजया जनन्या सनामग्रहमाहूयमानं जानुभ्यां चङ्क्रम्यमाणं तन्मुखनिहितस्नेहविकासित-तरलतारकं मुग्धस्मित-दृश्यमान-कुन्द-कुड्मल-कोमलकतिपयरदनप्ररोहमन्तरिव बहिरपि सुवर्णान् सिद्धार्थान् भालेन धारयन्तं, मध्यमणिभूमिषु स्वकीय एव प्रतिबिम्बे सजातीयान्तरभ्रमेण कल्लोल्लाय-प्रसंगेन विलम्बमानं, वसन्तावतारमिव शुकतुण्डकिंशुकमुकुल-रमणीयकरचरणं, स्कन्दमिव पचाननखराभिलक्ष्यमाणं, प्रभा-ततपनमिव प्रत्यग्रकराक्रान्तभूतलं तमालोकयन् सर्वलोकाना-मुपरि वर्त्तमानमात्मानं मेने ॥५७॥

तत्पश्चात् राजा कालक्रमवश धाई के पास खेलते हुए, फैलाये हुए कर कमलों वाली माता के द्वारा नाम लेकर बुलाये जाते हुये, घुटनों के बल चलने वाले, माता के मुख में निहित स्नेह से विकासित कर दी गई हैं आँखों की चंचल पुतलियाँ जिसकी, उस (बालक) को, सुन्दर मुस्कान से दिखलाई देने वाले कुन्द की श्वेत पंखुड़ियों के समान कोमल उगे हुये कुछ दाँतों वाले, भीतर की भाँति बाहर भी सुन्दर वर्ण वाले सिद्धार्थों को कपाल से धारण करते हुये (ललाट के भीतर सुन्दर अक्षर अक्षरों में सिद्ध पदार्थों का उल्लेख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था और बाहर सुन्दर वर्ण – रंग वाले सिद्धार्थ – सरसों को बालक ने धारण किया हुआ था।) आंगन के मणिजटित मध्य भाग में अपने ही प्रतिबिम्ब में समान प्रकार के अन्य बालकों के भ्रम से अव्यक्त ध्वनि करने के प्रसंग से विलम्ब करने वाले, वसन्त ऋतु के प्रादुर्भाव के समान तोते की चोंच और किंशुक के फूल के पंखुड़ी के समान सुन्दर हाथ पैर वाले, कार्तिकेय के समान गले में लगे हुये सिंह के नाखूनों से अभिरक्षित हुआ, प्रातः काल के सूर्य के समान नवीन किरणों से पृथ्वीतल को व्याप्त किये हुये (बालक पक्ष में, नये-नये हाथों से भूतल में रेंगने का अभ्यास करते हुये) उस बालक को देखता हुआ सब लोकों के (अथवा लोगों के) ऊपर विद्यमान अपने को समझने लगा ॥५७॥

क्रमाच्च सञ्जातनवीनपदन्यासं धृतालङ्कारं सत्काव्यमिव प्रचरदवस्थं, गूढवाक्यमिव किञ्चित्संवृतवस्तुसंकेतग्रहं, प्रथमचित्रमिव व्यक्ताव्यक्तवर्णविन्यासं, वैशेषिकमिवानुमानगम्य शब्दार्थं, कर्णमिव कुण्डलरमणीयं कर्णाभरणमरकतमरीचिरेखया कपोलतलावलग्नया कृतशिखण्डकावतंसं बालगोपालमिव समालक्ष्यमाणं, मञ्जीरशिञ्जितानुसारिभिर्भवनकलहंसकैर्भाग्यैरिवाऽत्यन्तमवदातैरनुगम्यमानं, कुमुदमिव ग्रहणप्रणयेन प्रसार्यमाणराजकरनिकर, ग्रैवेयकपद्मरागरुचिशलाकया दीपिकयेव नातिचिरादागमिष्यतो गुणगणस्यानुरोधेन विधीयमानमहाप्रकाशं भूषणमणिमयूखसूत्रैस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च भाविस्वपरिणाहमिव सूत्रयन्तम् आस्थानमण्डपं मण्डयन्तं तं निभालयमानो देवस्त्रिदिवालय सुखपपि न गणयाम्बभूव ॥५८॥

क्रम से, नये-नये कदमों को रखने वाले, सुन्दर सजे हुये वस्त्राभरणों को धारण करने वाले (काव्य पक्ष में नवीन शब्दों के विन्यास से युक्त, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपमादि अलंकारों से युक्त) अच्छे काव्य के समान, चलने की अथवा बढ़ती हुई अवस्था वाले (काव्यपक्ष में नयन प्रीत्यादि अवस्थायें जिसमें हों, वह), गूढ़ वाक्य (काव्यपक्ष में व्यंग्यवाक्य) के समान, जिसमें कि पदार्थ के संकेत का ग्रहण कुछ गुप्त रहता है, प्रथमतः बनाये जा रहे चित्र के समान जिसके अक्षरों का लेखन स्पष्टता और अस्पष्टता को लिये हुये या (चित्रपक्ष में, रंगों का विन्यास स्पष्ट और अस्पष्ट होना—आशय है), वैशेषिकदर्शन के समान अनुमान से पिता आदि पदार्थों को जानने वाले, (वैशेषिकशास्त्र में अनुमान का शब्द में अन्तर्भाव होने से शक्तिग्रह के अन्यतम उपाय व्यवहार से, बालक शब्दार्थों को जानता था—यह दोनों में साम्य है।) कुन्ती पुत्र कर्ण जैसे सूर्यप्रदत्त कुण्डलों से सुन्दर था वैसे ही कुण्डलों को पहनने के कारण सुन्दर आकृति वाले, कानों के आभूषणों की मरकत मणि की किरणों की गाल पर पड़ी हुई रेखा से काव्यपक्ष के आभूषण सा बनाये हुये छोटे ग्वाले के समान दिखाई देने वाले, भाग्यों के समान नूपुरों की ध्वनि का अनुसरण करने वाले राजभवन के अति स्वच्छ और सुन्दर हंसों के द्वारा अनुगत हो रहे, कुमुद के समान, फैली हुई चन्द्रमा की किरणों द्वारा प्यार से ग्रहण किये जाते हुये (बालकपक्ष में, राजाओं के हाथ उस बालक को प्यार से पकड़ने के लिये फैले रहते थे।) दीपिका के समान वाले हार के द्वारा निकट भविष्य में प्राप्त होने वाले अनेक गुणों के अनुरोध से किये जा रहे महान् प्रकाश वाले, आभूषणों के रत्नों के किरणरूपी तागों से तिरछे, ऊँचे और नीचे की ओर अपने भविष्य में होनी वाली लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई को मानो, बुनते हुये और सभाभवन के कक्ष को शोभित करते हुये उस बालक को देखने वाले राजा ने स्वर्ग के सुख को भी कुछ हीं समझा ॥५८॥

कुमारविद्याग्रहणवर्णनम्

तत उपदेशग्रहणोर्हऽनेहसि यथानुरूपं पितुरन्येभ्यश्चाचार्यवर्येभ्यस्तास्तां विद्या अनायासादुपगृह्णानः स्वाभाविकानामागन्तुकानाञ्च गुणानां परमं प्रकर्षमापेदे ॥५९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब उपदेश ग्रहण करने योग्य समय में वह बालक चित्रभानु पिता के अनुकल, अन्य श्रेष्ठ आचार्यों से उन विद्याओं को बिना अधिक परिश्रम से ग्रहण करता हुआ स्वाभाविक और आधेय गुणों के परम प्रकर्ष—अत्यन्त श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ ॥५९॥

तथाहि भीमसेन इव महाप्राणतायां, लक्ष्मण इव मेघनादभिभवे, बलिरिवोदारतायां, कोकिल इव प्रियालापे, मदन इव सौन्दर्ये, सरस्वानिव गम्भीरतायां, सुधादीधितिरिव माधुर्ये, हरिदश्व इव तेजस्वितायां, पुरूरवा इव सौम्यजन्मतायाम्, आकाश इव शब्दागमे, चित्रगुप्त इव कर्ममीमांसायां, हृदयमिवात्मविद्यायां, आत्मेव प्रमाणोत्कर्षे, भगदत्त इव गजपृष्ठे, नकुल इव हयाधिरोहणे, नल इवाश्वाभिप्रापज्ञाने, ऋतुपर्ण इवाक्षहृदयबोधे, शरदारम्भ इव ज्योतिषामागमे, द्रोण इव धनुर्विद्यायां, कार्त्तवीर्य इव शरोत्सर्गयौगपद्ये, मधुसूदन इव चक्रप्रचारे, त्र्यम्बक इव शूलोत्सर्गे, हलधर इव मुशलमोक्षे, नरान्तक इव प्रासमोक्षे, निकुम्भ इव परिघाभिघाते, रावण इव चन्द्रहासप्रहारे, दुर्योधन इव गदासंप्रयोगे, भीष्म इवोग्रायुधनिपाते, कर्ण इव महास्त्रशिक्षायाम्, अश्वत्थामेव युधिष्ठिरबलोपमर्दे, राम इव निशाचरोज्जासने, भरत इव शैलूषतिरस्कारे, शत्रुघ्न इव कुम्भीनसीसुतमदापहारे, शुक्र इव कवित्वे, वामदेव इव सकलाक्षरविद्यायां, ब्रह्मदत्त इव तिर्यग्रुतज्ञाने, गणेश इव लेखनाभ्यासे, स्कन्द इव सर्वदेशभाषाविज्ञाने, बृहस्पतिरिव सुमनोऽनुशासने, मधुकर इव गन्धतत्त्वज्ञाने, हनुमानिव जल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राशितरणे, गरुत्मानिवोद्गमने, किं बहुना राकासुधानिधिरिव सकलास्वपि कलास्वासीत् ॥६०॥

जैसे कि भीमसेन के समान बलवत्ता में (वह बालक हुआ—इस वाक्य का प्रत्येक से सम्बन्ध है), लक्षण के समान मेघनाद (मेघ की गर्जना—बालक पक्ष में) के तिरस्कार में, बलि के समान उदारता—दानशीलता में, कोयल के समान प्रिय बोलने में, कामदेव के समान सुन्दरता में, समुद्र के समान गम्भीरता में, चन्द्रमा के समान मधुरता में, सूर्य के समान तेजस्विता में, इन्द्र के समान सौम्य जन्म होने में (पक्ष में, सौम्य—बुध के जन्म में), आकाश के समान शब्दागम—ध्वनि के निस्सारण में (पक्ष में, व्याकरण शास्त्र में—सिद्ध था— यह आशय है।), चित्रगुप्त के समान कर्ममीमांसा—कर्मों के शुभाशुभ फल के विचार के विषय में (पुराणों के अनुसार ललाट पर भाग्य की बातों से सम्बद्ध अक्षरों का लेखक चित्रगुप्त है, तद्वत पूर्वमीमांसा शास्त्र का वह बालक ज्ञाता हुआ—यह आशय है।), हृदय के समान आध्यात्मिक ज्ञान में, आत्मा (जीवात्मा) के समान प्रमाणों के प्रामाण्य व श्रेष्ठत्व को जानने में, भगदत्त के समान हाथी की सवारी में, नकुल के समान घुड़सवारी में, नल के समान घोड़े के अभिप्राय की जानकारी में, ऋतुपर्ण के समान जुये के पाशों के सार को जानने में, शरद ऋतु के आरम्भ के समान नक्षत्रागम (बालक पक्ष में ज्योतिषशास्त्र) में, कृष्ण के समान रथ संचालन में, द्रोणाचार्य के समान धनुर्विद्या में, सहस्रार्जुन के समान एक साथ बाण छोड़ने में, कृष्ण के समान चक्र को चलाने में, शिव के समान त्रिशूल को फेंकने में, बलराम के समान मूसल को छोड़ने में, यमराज के समान प्रास (बन्धन की बेड़ी) को फेंकने में, रावण के मन्त्री निकुम्भ के समान परिघ से मारने में, रावण के समान खड्ग के प्रहार में, दुर्योधन के समान गदा के प्रयोग में, भीष्म के समान भयंकर अस्त्र को चलाने में, कर्ण के समान महान् अस्त्रों की शिक्षा में, अश्वत्थामा के समान युधिष्ठिर की सेना के विनाश में (बालक पक्ष में युद्ध में स्थिर शत्रु-व्यक्ति की शक्ति का दमन करने में), राम के समान राक्षसों को नष्ट करने में, भरत के समान नट के पुत्र के तिरस्कार में, शत्रुघ्न के समान लवणासुर के मद को अपहरण करने में,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुक्राचार्य के समान कविता में (शुक्राचार्य का एक नाम कवि भी है)। वामदेव के समान सम्पूण अक्षर (अविनाशी ब्रह्म के) ज्ञान में, ब्रह्मदत्त राजा के समान पशु-पक्षियों के शब्दों के ज्ञान में, गणेश के समान लिखने के अभ्यास में, कार्त्तिकेय के समान सब देशों की भाषा को जानने में, बृहस्पति के समान देवों के अनुशासन में (बालक पक्ष में पुष्पविद्या में), भ्रमर के समान गन्ध के तत्त्व के ज्ञान में, हनुमान् के समान समुद्र के सन्तरण में, गरुड़ के समान ऊपर को चलने में, अधिक क्या, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण कलाओं में (प्रवीण) था ॥६०॥

———

कुमारशिक्षणवर्णनम्

तं कदाचिद्रहसि सविनयमासीनं सप्रणयबहुमानं बुद्धिनिधिरवोचत्—"कुमार ! निष्णात एवासि नीतिशास्त्रेषु, परिचितान्येव धर्मशास्त्रमर्माणि, विधेयीकृतान्येवेन्द्रियाणि, निगृहीतमेव हृदयं, बद्धमेवावधानम्, आश्रित एव प्रश्रयः, आहित एवोत्साहः; तथापि—चापलं स्नेहो वा, राजादेशो वा, स्वामिभक्तिर्वा, स्वाधिकारो वाऽत्राऽपराध्यति, अतो न मामनभिधेयाभिधेयतया ग्रहीतुमर्हसि।" श्रूयतां महात्मनां महीभुजां वृत्तं—"ते हि जगज्जीवभूता अपि नाल्पक्षणमात्रावस्थायिनीं संविदं संविदधति; मृणालमृदुहृदया अपि भङ्गुरान् गुणान्नाङ्गीकुर्वन्ति; न्यायानुसारिणोऽपि न मनसि क्षुद्रभावमुपगच्छन्ति; साङ्ख्ये संख्यावन्तोऽपि न प्रधानभावानुरोधेन जल्पन्ति; शब्दानुशासनशीला अपि नासमर्थस्य वृत्तिमपहरन्ति, मीमांसका अपि नित्यकृतिं न विद्विषन्ति; विभुत्वभाजोऽपि नाभ्यर्हितं कर्मविरहयन्ति; स्थूललक्ष्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपि सूक्ष्मदर्शितां न मुञ्चन्ति; महापुरुषा अपि नोदारतां त्यजन्ति; नरेन्द्रा अपि न भूतनिग्रह कुर्वन्ति; विग्रहप्रीतयोऽपि यतास्येवानुरज्यन्ते; महिषीसमुद्भवा अपि वृषभावमवलम्बन्ते; गुणास्वभावा अपि न द्रव्यमात्रभिनिवेशिनो भवन्ति; नदीप्रवाहवद्विश्रृंखलसर्वतोमुखसम्पदोऽपि न सेतुं भिन्दन्ति; त्रेतावद् दृश्यराघवचरित्रा अपि न कृतघ्नभावं भजन्ते; कृष्णवत्परिपालितगोकुलां अपि न निहतपूतनाका भवन्ति; संकर्षणवत्पूजितरोहिणीका अपि न निरस्तधेनुकाः सम्पद्यन्ते; ऋतुपर्णवत्पुरस्कृतबाहुका अपि न कोशलेशत्वं प्रतिपद्यन्ते; परीक्षिद्वद्धृतोत्तरोदया अपि न व्यालगृहीतजीवना भवन्ति; जनमेजयवद्विहितभुजंगोज्जासना अपि न वपुष्टमारतयो वर्त्तन्ते; नलवद्वीरसेनभूतयोऽपि नक्षत्राधीनप्रवृत्तिका भवन्ति; हनुमद्वत्कृतसागरोल्लंघनयशसोऽपि न कापेयवृत्तेयो भवन्ति; अम्बरविशेषवद्धरामुपभुञ्जाना अपि न रजसा संसृज्यन्ते; सूर्यवद्गृहीतसहस्रकरा अपि न मन्दं जनयन्ति; चन्द्रवत् कलानिधयोऽपि न कलङ्क–सङ्करं लभन्ते; भौमवन्मंगलस्वभावा अपि न निजकुलेंऽगारका भवन्ति; बुधवद्गृहीतसौम्यभावा अपि न परिगृहीतामिलां मुञ्चन्ति; बृहस्पतिवद्गृहीतविबुधगुरुभावा अपि नांगिरसत्वं वहन्ति; शुक्रवत्काव्याभिधेया अपि उदयमारभ्य वार्द्धकावधि धर्मकार्यं न प्रतिबध्नन्ति; इन्द्रवच्छतमखा अपि न यथारुचि प्रवर्त्तन्ते; दहनवत्काष्ठान्वयवद्वर्धमानतेजसोऽपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न कृष्णवर्त्मानो भवन्ति; यमवद्धर्माधर्मविचारका अपि नान्तकत्वं वहन्ति; निर्ऋतिवन्महाशरपक्षपातिनोऽपि न कर्बुरवृत्तयो भवन्ति; वरुणवच्चतुःसमुद्राधिपतयोऽपि न जडेश्वरतां कलयन्ति; पवनवत् साङ्कुशा अपि न तिर्यग्वृत्तयो भवन्ति; कुबेरवद्धनेश्वरा अपि न द्रव्यप्राप्तिप्रतिबन्धकानुचरवन्तो भवन्ति; ब्रह्मवत् प्रजासर्गकारिणोऽपि नावदातपक्षवृत्तितां श्रयन्ते; मदनवद्रूपशालिनोऽपि न यौवनवशविश्रृंखलप्रवृत्तयो भवन्ति; चक्षुर्वत् तेजस्विप्रकृतयोऽपि न रूपमात्रमाद्रियन्ते; बुद्धवत्सर्वज्ञा अपि न क्षणिकभावाः सम्पद्यन्ते; स्फटिकवद्विशदान्तररागा अपि न जवान्वितं रागमुद्गृह्णन्ति; शब्दवच्छक्तिमन्तोऽपि न स्वार्थमात्रपरतां भजन्ते; वेदान्तिवदात्मवेदिनोऽपि न मिथ्याभावमुरीकुर्वन्ति; सरोवद्गम्भीरा अपि न पङ्ककलुषाशया भवन्ति; पद्मवत्श्रीवसतयोऽपि न द्विजराजदर्शनेन बद्धकोशतामाप्नुवन्ति; दक्षवत् प्रजापतयोऽपि न परशिवद्रोहिणो भवन्ति; परशुरामवद्बद्धयुद्धादरो अपि नाकृतव्रणशरीरे प्रणयं कुर्वन्ति; आत्मवच्चैतन्यभाजोऽपि न परार्थतां परिहरन्ति, अर्जुनवत्सदा समरविजयिनोऽपि न कदाचित् क्लीवतां प्रतिपद्यन्ते, गरुडवत्पुराणपुरुषानुचरा अपि न सत्यपध्यानेन पक्षहानिमनुभवन्ति, समयवत् सर्वाश्रया अपि न विशेषगुणराहित्यमभ्युपयन्ति, समुद्रवत्सरस्वतीनिलया अपि न बलभिदभियोगं लभन्ते, कोकिलवद्रागिदृष्टयोऽपि न मलिनदर्शना भवन्ति, नृगवद्दत्तानेक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुरभयोऽपि न गोव्यत्ययादसदवस्थां प्रपद्यन्ते, उशनोवद्विहितविबुधविपक्षानुशासना अपि न धिषणावमोहप्रकारा भवन्ति, कर्णवद्धृतराष्ट्रोदयानुकूलवृत्तयोऽपि न विजयं विरुन्धन्ति, इक्ष्वाकुवन्मन्वनुसारिणोऽपि नानुचित्तवृत्तिं दण्डं जनयन्ति, गजवद्दानस्पृशोऽपि न करव्यापारोद्वेजितसमाश्रितालयो भवन्ति, विष्णुवद्बलिनिग्रहविधायिनोऽपि न विषमक्रमा भवन्ति। अपि च चापवत् सद्वंशा गुणप्रसगादेव समाकृष्यन्ते, प्रातिपदिकवदर्थवन्तः सुप्रत्यय प्रकृतयो भवन्ति, शुकवत्स्वपक्षहरितो रक्तलपना भवन्ति, समुद्रवद्रत्नाकरा अहार्यपक्षरक्षिणः सम्पद्यन्ते, साङ्ख्यवत्प्रकृतिजनितबुद्धयः पुरुषान्तरमुरीकुर्वन्ति, जातिवत् सर्वसामान्योः स्वयमसामान्य भवन्ति। किञ्च तेषां समविषमावगाहिनी बुद्धिरेव विजयं जनयति—मनीषितविलासमात्रमनीकिन्यः, सर्वदा सर्वदिग्व्यापी गुणगण एव जनान् वशयति—प्रपञ्च एव परिच्छिन्नवृत्तिः परिजनः, लोकोत्तरप्रकाशजनकानि शास्त्राण्येव विग्रहं विभूषयन्ति—विलोचनचमत्कारचतुराण्याभरणानि, दिग्वारणाभिभावी बाहुरेव दानजलं विसृजति—बुद्धिबन्धमात्रं सिन्धुराः, लोकलोचनातिलङ्घनजङ्घालस्तेजोविशेष एव जनानुपगन्तुं न ददातिं—साधनसम्पत्तिमात्रं प्रतिहाराः, अवदाततममौदार्यमेव जगत्प्राणजनकं—बालबुद्धिव्यमोहनमात्रं बालव्यजनानि, सुगृहीतशलाकं नीतितन्त्रमेव सन्तापवारणकारणं—प्रभुत्वप्रकाशकमात्रमातपपत्रं, सरसीकरणलब्धघुर्यभावं माधु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र्यमेव पदेप्रतिष्ठापयति—परिभाषामात्रमभिषेकः, सुवर्णमयी भाग्यलिपिरेवफलानुमेया भालं विभूषयति—खलावधरिणोपाया वीरपट्टिका, अनेकशिखं सच्चरित्रमेवोच्चैःशिरस्कतां सम्पादयति—कूटमेव मुकुटम्, दिगन्तरव्यापी समुत्सृष्टगन्धसिन्धुमधुकरध्वनिरेव यशो विशदयति—स्वजीविकामात्राभिनन्दिनो वन्दिनः, अविच्छिन्नोध्वरदहनधूमसन्तान एव दिङ्मुखानि समावृणोति—पुनरुक्तिमात्रमक्षौहिणीक्षतक्षितितलोत्प्रेक्षितः क्षोदः, अविच्छिन्नज्वलनः प्रताप एव प्रकाशमापादयति-अनुवादमात्रं दीपिकासमुदायः, शरच्चद्रिकाभासुरो यशोराशिरेव धावल्यं विभावयति—प्रकारमात्रं हाराः, भयपलायितो वैरिवरवर्णिनीविसर एव दिगन्तपर्वतानधरयति—आवृत्तिमात्रं वाहसमूहः, शरदम्बरभासुरः स्वकरवर्त्ती महाऽसिरेव विपक्षान् क्षपयति, उपकरणमात्रं सुभटकरवालमण्डलम्, अनेकमन्त्रसाध्याः क्रतुक्रिया एव हव्यवाहं तर्पयन्ति—वोप्सामात्रसम्पादिका वैरिनगर्यः, अतिक्रूरा निर्घातसधर्माणो धनुर्निर्घोषा एव विरोधिवारणमदवाहिनः शोषयन्ति—अन्यथासिद्धा विजयदुन्दुभिनादाः, वीररसप्राया विपक्षा एव गिरिगुहागृहान्तर्गताः शौर्योष्माणं प्रमाणयन्ति—संस्तवमात्रं कविजनाभिलापाः प्रत्यक्षग्राह्यो विनय एवाभिजाततामाचष्टे—उपायान्तरमेव पुराविदुक्ताः शब्दसन्दर्भाः, अर्थगौरवशाली वचनोपन्यास एवान्तर्वृत्तिमौदार्यविशेषं विशदयति—उपचारमात्रं बाह्योपचारः, सार्वकालिक्यसद्वृत्तनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तिरेवास्तिकताङ्गमयति—संवादापेक्षा यागादिक्रिया, सकटका अनेकजनपदवृत्तयो यूपा एव दिग्विजयमाचक्षते—कण्टकशुद्धिमात्रफलका अधिकारिणः ॥६१॥

उस कुमार चित्रभानु को, किसी अवसर पर एकान्त में विनयपूर्वक बैठे हुये, स्नेह और विशेष प्रशंसा के सहित, प्रधान मंत्री बुद्धिनिधि ने कहा—"हे राजकुमार ! तुम निश्चय ही नीतिशास्त्रों में पारंगत हो; धर्मशास्त्र तुम्हारे परिचित (—पहचाने हुये) ही हैं, इन्द्रियाँ भी तुम्हारी वशीकृत ही हैं, हृदय स्वाधीन ही है; अवधान अर्थात् चित्तैकाग्रता भी बँधी ही है; स्नेह और आदर का भाव भी बना ही हुआ है, तथा उत्साह भी विद्यमान ही है,—फिर भी चपलता का दोष मानो अथवा स्नेह का, अथवा राजा की आज्ञा का, अथवा स्वामिभक्ति का अथवा अपने अधिकार का, इसलिये मुझे न कहने योग्य को कहने वाला मत समझना।" सुनो ! महान् आत्मा वाले राजाओं का चरित्र (कैसा हुआ करता है ? यह वाक्य शेष है।) —वे निश्चय से संसार के प्राणस्वरूप (—बड़े प्रिय) होते हुये भी अल्पकाल में ही नष्ट होने वाली संविद (—ज्ञान) को नहीं धारण करते, अर्थात् वैसे लोगों का ज्ञान दूर दिनों तक स्थिर रहता है। कमल नाल के समान कोमल हृदय वाले होते हुये भी कमल नाल के शीघ्र टूटने वाले रेशों के समान नष्ट होने वाले गुणों को नहीं स्वीकार करते अर्थात् उनके गुण चिरस्थायी होते हैं। न्याय का अनुसरण करने वाले—न्यायकारी होते हुये भी मन में क्षुद्रभाव अर्थात् नीचता को नहीं प्राप्त होते (न्याय शास्त्र का अनुगामी क्षुद्रभाव अर्थात्—सूक्ष्म परमाणु—नामक पदार्थ को अन्यतम पदार्थ रूप में मानता है। इसलिये इस प्रसंग में कवि द्वारा विरोधाभास अलंकार की छटा दर्शायी गई है।], युद्ध और सांख्यशास्त्र में निपुण होते हुये भी प्रधान अर्थात् स्वामी के भाव के विरोध रूप में नहीं बोलते (सांख्यशास्त्र पक्ष में प्रधान भावानुरोध से अभिप्राय प्रकृति के अनुरोध से है। व्याकरणशास्त्रज्ञ होते हुये भी असमर्थ—दीन व्यक्ति की वृत्ति—आजीविका का अपहरण नहीं करते हैं (व्याकरण शास्त्र में, असमर्थ पद की समासादि वृत्ति नहीं प्रतिपादित की जाति 'समर्थः पदविधिः' (अष्टाध्यायी २-१-१) सूत्रोक्त परिभाषावशात्।], मीमांसाशास्त्रज्ञ होते हुये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नित्यकर्म से द्वेष नहीं करते अर्थात् दुरितक्षेयनिमित्तक नित्यनैमित्तिक कर्मों को सदा किया करते हैं (मीमांसाशास्त्र पक्ष में, नित्यकर्मों को फलरहित माने जाने के कारण प्रशस्त नहीं समझा जाता यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है।), प्रभावशाली होते हुये भी श्रेष्ठ कर्म को नहीं छोड़ते (जबकि विभुत्व अर्थात् व्यापकत्व का आश्रय लेने वाले काल, आकाशादि क्रिया रहित होते हैं।), स्थूल अर्थात् बड़े लक्ष्य वाले होते हुये भी सूक्ष्मदृष्टिता अर्थात् विचारशीलता को नहीं छोड़ते (स्थूललक्ष्य वालों की सूक्ष्मदर्शिता होना यह विरोध है, जिसका परिहार उक्त रूप में किया गया है।), महापुरुष होते हुये भी उदारता को नहीं त्यागते (जब कि महा अपुरुष अर्थात् निन्दित जन उदारता को छोड़े रहते हैं।), नरेन्द्र (नरश्रेष्ठ) होते हुये भी प्राणियों को बाँधते नहीं है (जब कि नरेन्द्र अर्थात् इन्द्रजाल का प्रयोग करने वाले प्राणियों को निगृहीत कर डालते हैं।), विग्रह – शरीर या युद्ध से प्रीति करने वाले होते हुये भी यश में ही अनुरक्त रहते हैं। महिषी—रानी से उत्पन्न होते हुये भी श्रेष्ठता का आश्रय लेते हैं (महिषी अर्थात् भैंस से उत्पन्न हुआ वृषभाव अर्थात् बैल का अवलम्बन ले—यह विरोध है, उसका उक्त रीति से परिहार है।), गुणों से युक्त स्वभाव वाले होते हुये भी द्रव्यमात्र में आग्रह वाले नहीं होते हैं, अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा गुणों को अधिक महत्व देते हैं (जब कि गुण स्वभाव वालों का द्रव्यत्वाभाव नहीं होता इस विरोध का उक्त रीति से परिहार है।), नदी के प्रवाह के समान स्वच्छन्द रूप से चारों ओर को मुख लिये हुई सम्पत्ति वाले होते हुये भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते (नदी का प्रवाह तीव्र होने पर सेतु—पुल को नष्ट कर देता है।), त्रेता के समान रामचन्द्र के चरित्र का दर्शन अर्थात् अनुकरण किये हुये होने पर भी कृतघ्नता का व्यवहार नहीं करते (जबकि त्रेतायुग में कृत अर्थात् सत्ययुग के नष्ट हो जाने से कृतघ्नता भाव स्पष्ट है।), कृष्ण के समान गायों के समूह को पालन करने वाले होते हुये भी पवित्र स्वर्ग का विघात करने वाले नहीं होते (कृष्ण जबकि पूतना को मारने वाले थे।), संकर्षण— बलदेव के समान रोहिणी— लाल रंग की गाय को पूजने वाले होते हुये भी धेनु— नवप्रसूता गौ का निराकरण करने वाले नहीं होते (जब कि संकर्षण अर्थात् बलदेव ने धेनुक नामक असुर का परास्त कर दिया था, राजा लोग बलदेव के तुल्य होते हुये भी तद्वत् धेनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कासुर के वधक नहीं थे। इस प्रकार भाग—त्याग रूप उपमा और विरोधाभास का इस वाक्य में निदर्शन है।), ऋतुपर्ण के समान बाहुक (मल्ल) को पुरस्कृत करने वाले होते हुये भी कोशलेशत्व—खजाने की अल्पता को नहीं प्राप्त होते हैं (राजा ऋतुपर्ण ने बाहुक अर्थात् गुप्त नल अश्वसेवक को पुरस्कृत किया था और वह अयोध्या का राजा था, अतः ऋतुपर्ण की उपमा देने में श्लेष द्वारा बाहुक को पुरस्कृत करना मात्र साधर्म्य है अन्यत्र विरोध है।), परीक्षित् राजा के समान उत्तरोदय (परीक्षित् पक्ष में उत्तरा नाम की माता का उदय) करने वाले होते हुये भी सर्प से मारे जाने वाले नहीं होते हैं (महान् राजाओं के पक्ष में उत्तरोदय धारण से आशय है, श्रेष्ठ अभ्युदय को धारण करने वाले; राजा परीक्षित की मृत्यु सर्पदंश से हुई थी, अतः इस अंश में विरोधाभासालंकार है। परीक्षित् के पुत्र जनमेजय के समान भुजंगों परीक्षित् पक्ष में सर्पों, महान् राजाओं के पक्ष में विटादि कण्टकों) के विनाशक होते हुये भी वपुष्टमा अच्छे शरीर में (परीक्षित् पक्ष में, परीक्षित् की पत्नी) में आरति अनुराग वाले नहीं होते, अपितु परोपकार प्रिय होते हैं। राजा नल के समान वीरसेनोद्भूति (नल पक्ष में, वीरसेन का पुत्र; महात्माओं के पक्ष में वीरों की सेना से सम्पत्ति की प्राप्ति वाले) होते हुये भी जुये के पाशों के अधीन प्रवृत्ति वाले नहीं होते, अर्थात् नल के समान जुआ नामक व्यसन के अधीन नहीं होते। हनुमान् के समान समुद्र को लाँघने से प्राप्त यश वाले होते हुये भी वन्दर के समान चंचल प्रवृत्ति वाले नहीं होते। अम्बर विशेष के समान (वस्त्र विशेष—ऊन आदि के, अथवा आकाश विशेष—तत्तद् देश सम्बन्ध से) पृथिवी का उपभोग करते हुये भी रजोगुणों से (वस्त्र और आकाश पक्ष में धूल से) ससृष्ट नहीं होते। सूर्य के समान हजारों कर=किरणों (महात्माओं के पक्ष में, राजाओं के द्वारा जनता से ग्रहण किये जाने वाले भाग) वाले होते हुये भी मन्द (सूर्यपक्ष में, शनैश्चर) को नहीं पैदा करते। अर्थात् मूर्ख व्यक्ति को अथवा अल्प सम्पत्ति को नहीं पैदा करते, प्रत्युत विद्वानों का और अधिक सम्पत्ति का आविर्भाव कराते हैं—यह महात्म पक्ष में अभिप्राय है। चन्द्रमा के समान कलाओं की निधि (चन्द्रमा की शुक्ल पक्ष में बढ़ने वाली और कृष्णपक्ष में घटने वाली कलायें प्रसिद्ध हैं; राजा लोग नृत्य-गीत-वादित्रादि अनेक कलाओं में प्रवीण होते हैं—यह श्लेषवशात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वयर्थकता है) होते हुये भी चन्द्रवत् कलङ्क (मृगलांछन) के संसर्ग को नहीं प्राप्त होते, अर्थात् दोष के संसर्ग को नहीं प्राप्त होते। (यहाँ कलंक शब्द भी श्लेषवश द्वयर्थक है।) भौम अर्थात् मंगल के समान कल्याणकारी स्वभाव वाले होते हुये भी अपने कुल में अंगारक (अंगारों के समान दाहक) अपकारक नहीं होते (भौम-पक्ष में वह स्वयम् अंगारक है—'अंकारकः कुजेऽपि स्याद् दग्धकाष्ठे' इति मेदिनी।) बुध के समान सौम्यभाव (बुध पक्ष में सोम से उत्पन्न होना और राजाओं के पक्ष में अच्छा होना) वाले होते हुये भी स्वीकृत की गई अथवा पकड़ी गई इला को (बुध पक्ष में पुरुरवा की माता को, राजपक्ष में पृथ्वी को) नहीं छोड़ते। बृहस्पति के समान देवों के गुरु होते हुये भी (राजाओं के पक्ष में, विद्वानों में गौरव प्राप्त होते हुये भी) अंगिरसत्व (बृहस्पति पक्ष में अंगिरा का सन्तान होना, राजपक्ष में प्रधान रस का होना) को नहीं प्राप्त करते, प्रत्युत राजभाव को प्राप्त करते हैं। शुक्राचार्य के समान काव्याभिधेय वाले होते हुये भी, शुक्र पक्ष में काव्य यह शुक्र का ही पर्याय है, राजपक्ष में काव्य है अभिधेय अर्थात् पाठ्य जिनका वे—यह तात्पर्य है।) उदय से लेकर वृद्धावस्थापर्यन्त धर्मकार्यों को बन्द नहीं करते हैं (जब कि शुक्र के उदय, अर्थात् बालभाव एवं वृद्धभाव तथा अस्त होने पर ज्योतिष (फलित) के अनुसार धर्म कार्य नहीं किये जा सकते, जैसा कि कहा गया है—"वृद्धत्वास्तशिशुत्वइज्यसितयो-र्न्यूनाधिमासे तथा" इत्यादि।) ' इन्द्र के समान सौ यज्ञ वाले होते हुये भी, इच्छानुसार कर्मों में प्रवृत्त नहीं होते, शास्त्राधीनता में बँधे होने के कारण, जब कि इन्द्र, देव होने के कारण कर्मों में इच्छानुसार प्रवृत्त होता है। अग्नि के समान काष्ठों के सम्बन्ध से अपना तेज बढ़ाने वाले होते हुये भी (राज पक्ष में, दिशाओं में विद्यमान राजवंशों में अपने प्रताप को बढ़ाने वाले होते हुये भी) कृष्णवर्त्मा अर्थात् कलुषित मार्गाचरण वाले नहीं होते, जबकि अग्नि काला धूम उगलने के कारण कृष्णवर्त्मा कहलाता है। यम के समान धर्म और अधर्म का विचार करने वाले होते हुये भी अन्तकत्व अर्थात नाश-कत्व को नहीं दर्शाते, जबकि यम का अन्तक नाम प्रसिद्ध है। राक्षसों के समान महान् बाणों को फेंकने वाले होते हुये भी राक्षसों की वृत्ति वाले नहीं होते। वरुण के समान चारों समुद्रों के स्वामी होते हुये भी जड़ेश्वरता अर्थात् मूर्खाधिपत्य या जलाधिपत्य (डलयोरैक्यस्मरणात्) को नहीं प्रदर्शित करते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायु की भाँति अंकुश (राजपक्ष में दण्डप्रदान सामर्थ्य) से युक्त होते हुये भी तिर्यग्वृत्ति अर्थात् पशुओं के समान व्यवहार करने वाले नहीं होते (वायु पक्ष में, तिर्यग्वृत्ति से तात्पर्य तिरछे चलने से है।)। कुवेर के समान धनों के स्वामी होते हुये भी द्रव्य की प्राप्ति के बाधक सेवकों वाले (कुवेर के गुह्यकों के समान) नहीं होते। ब्रह्मा के समान प्रजा की सृष्टि करने वाले और प्रजा को देने वाले होते हुये भी स्वच्छ—श्वेत पंखों वाले हंस की वृत्ति वाले (जैसे कि ब्रह्मा हंसपक्षवृत्ति होता है) नहीं होते। कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले होते हुये भी युवावस्था के कारण स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति वाले नहीं होते। चक्षुरिन्द्रिय के समान तेजस्वि-स्वभाव वाले होते हुये भी न केवल रूपमात्र का आदर करते हैं, अपितु रसादि का भी आदर करते हैं। बुद्ध के समान सर्वज्ञ होते हुये भी बौद्ध दार्शनिकों के समान पदार्थों को क्षणिक नहीं मानते। स्फटिक (काँच) के समान स्पष्ट रूप से जवाकुसुम आदि के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने के समान अनेक रंग वाले होते हुये भी वेग वाले राग को नहीं ग्रहण करते। शब्द के समान शक्तिशाली होते हुये भी स्वार्थमात्र को सिद्ध करने वाले नहीं होते (शब्द में संकेत सम्बन्धरूप शक्ति मानी जाती है, जिसके द्वारा शक्त पद स्वार्थ को प्रतिपादित करता है। महात्मा राजा लोग प्रभु-उत्साह मंत्र रूप शक्ति वाले होते हुये भी स्वार्थ (अपने कार्यों) के साथ परार्थ (दूसरों के कार्य) भी सिद्ध करते हैं। इस प्रकार उपमा जन्य विरोधाभास का परिहार स्फुट है।) वेदान्तियों के समान आत्मा को जानने वाले होते हुये भी मिथ्यावाद—असत्यता को स्वीकार नहीं करते, जब कि वेदान्तियों में शांकर मतानुयायी 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इत्यादि कथन द्वारा संसार का मिथ्यात्व असत्यत्व स्वीकार करते हैं। सरोवर के समान गम्भीर होते हुये भी पंक हेतुक कलुष आशय वाले नहीं होते। (तालाबों में कीचड़ रहने से उससे मलिन उनका अन्तर्भाग रहता है, जब कि श्रेष्ठ राजा लोग पाप से कलुषित विचार वाले नहीं होते।) पद्म—कमल के समान लक्ष्मी के निवासंस्थान होते हुये भी द्विजराज (पद्मपक्ष में चन्द्रमा तथा श्रेष्ठ राजा पक्ष में ब्राह्मण) के दर्शन से अपने कोश को नहीं बन्द करते (कमल सूर्यास्त व चन्द्रदर्शन होने पर संकुचित हो जाता है, जब कि श्रेष्ठ राजा लोग ब्राह्मण के दर्शन होने पर अपना कोश बन्द नहीं करते, प्रत्युत खुला रखते हैं)। दक्ष के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रजापति—प्रजा के स्वामी होते हुये भी परशिव (श्रेष्ठ शिव या सदाशिव दक्ष-पक्ष में, श्रेष्ठराज पक्ष में दूसरे के शिव अर्थात् कल्याण) से द्रोह करने वाले नहीं होते। (दक्षप्रजापति ने शिव से द्रोह किया था—यह पुराण प्रसिद्ध कथा है।) परशुराम के समान युद्ध के प्रति उत्साह वाले होते हुये भी, जिसके शरीर में घाव नहीं किया गया है, उससे (परशुराम पक्ष में—ब्राह्मणादि से तथा श्रेष्ठ राजाओं के पक्ष में—कायर से) प्रेम नहीं करते। आत्मा के समान चैतन्य युक्त होते हुये भी परार्थता का परित्याग नहीं करते (आत्मा चैतन्ययुक्त होते हुये भी दूसरे की आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं करता, किन्तु अनुमान से परात्मा को जानता है। श्रेष्ठ राजा लोग परकार्य को सम्पन्न करना नहीं छोड़ते।) अर्जुन के समान सदा युद्ध में जीतने वाले होते हुये भी कभी नपुंसकता को नहीं प्राप्त होते (अर्जुन विराड् राजा का कर्मचारी 'बृहन्नला' के रूप में बना था—ऐसी महाभारतीय प्रसिद्धि है।) गरुड़ के समान विष्णु के सेवक होते हुये भी सती के अपध्यान अपने वर्ग की हानि का अनुभव नहीं करते। (विष्णु के सेवक या भक्त गरुड़ ने सती को अनुचित दृष्टि से देखा, इसलिये उसके पंख काट दिये गये और पक्ष-हानि का अनुभव किया; श्रेष्ठ राजा लोग विष्णु के भक्त होते हुये भी सती अर्थात् पतिव्रता स्त्रियों का अपध्यान न करने से अपने वर्ग की हानि का अनुभव नहीं करते।) समय के समान सब संसार के आश्रय होते हुये भी शौर्य, औदार्य आदि विशेष गुणों की रहितता को नहीं स्वीकार करते (समय को न्याय शास्त्र में स्नेहादि विशेष गुणों से रहित माना जाता है।) समुद्र के समान सरस्वती नदी के निवास स्थान होते हुये भी मार्गणक्षोभ अर्थात् याचकों के क्षोभ को नहीं प्राप्त होते (समुद्र पक्ष में मार्गणक्षोभ से आशय है परशुराम और लक्ष्मण के द्वारा छोड़े गये बाण का क्षोभ।। (मार्गणो याचके शरे—इति मेदिनी) पर्वतों के समान ऊँचे होते हुये भी, इन्द्र के अभियोग-आक्रमण को नहीं प्राप्त होते। (पर्वत पक्ष में इन्द्र का पर्वतों के पंख काटना वेद प्रसिद्ध है; राजपक्ष में बलभिदभियोग से तात्पर्य है बल को नष्ट करने वाले शत्रु।) कोयल के समान रागयुक्त दृष्टि वाले होते हुये भी मलिन दर्शन वाले नहीं होते (कोयल का रंग काला होता है, इसलिये वे मलिन दर्शन हैं, किन्तु श्रेष्ठ राजा लोग दोष-पूर्ण दर्शन वाले नहीं होते—यह आशय है।) नृग के समान अनेक गायों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दान करने वाले होते हुये भी गोव्यत्यय से अनुचित अवस्था को नहीं प्राप्त होते। वैवस्वत मनु के द्वितीय पुत्र राजा नृग अनेक गोदान करते हुये भी एक गाय को बदल देने के कारण गिरगिट योनि को प्राप्त हुये थे, उसके समान गो—चक्षुरादि इन्द्रिय के विकल होने से काणत्वादि दुरवस्था को नहीं प्राप्त होते। शुक्राचार्य के समान देवों के विपक्षियों—असुरों (राजपक्ष में दुष्टों) के अनुशासन – दण्डित करने वाले होते हुये भी बुद्धि के अवमोह के प्रकार वाले नहीं होते। कर्ण के समान धृतराष्ट्र के उदय के अनुकूलवृत्ति वाले होते हुये भी विजय का विरोध नहीं करते; (श्रेष्ठ राजपक्ष में, धृतराष्ट्र आदि का अर्थ है—राष्ट्र के उदय के अनुकूल वृत्ति को धारण किये हुये भी; कर्ण-पक्ष में, विजय का अर्थ अर्जुन है।), इक्ष्वाकु के समान मनु का अनुसरण करने वाले होते हुये भी अनुचित वृत्ति दण्ड को नहीं दर्शाते (इक्ष्वाकु राजा ने अनुचित वृत्ति अर्थात् दुष्ट के प्रति दण्ड की व्यवस्था की थी, किन्तु श्रेष्ठ राजा लोग अनुचित रूप से दण्ड अर्थात् शासन को नहीं करते हैं—यह भाव है।) हाथी के समान दान का स्पर्श करने वाले होते हुये भी, कर के व्यापार से खिन्न किये गये आलि वाले नहीं होते (हाथी दानवारि का स्पर्श करते हैं और उनके कर—शूंड के हिलाने से गण्डस्थल पर बैठे हुये आलि—भौंरे भगा दिये जाते हैं। किन्तु श्रेष्ठ राजा लोग दानी होते हुये भी कर—प्रजा से लिये जाने वाले भाग से, अपने आश्रित आलि—शिल्पी जनों को दुःखी नहीं करते।) विष्णु के समान बलिनिग्रह करने वाले होते हुये भी विषम गति वाले नहीं होते (विष्णु ने राजा बलि का निग्रह किया था और वे विषम—तीन कदम चलने वाले थे। किन्तु राजा लोग बलवान् शत्रु का निग्रह करते हुये भी विषम अर्थात् कुटिल या अनुचित क्रम—कार्य को करने वाले नहीं होते। अपितु अच्छे वंश (धनुष् पक्ष में, बांस) वाले धनुष् के समान गुणों (धनुष्-पक्ष में, डोरी) से ही खींचे जाते हैं। अर्थवान् प्रातिपदिकों के समान सुन्दर प्रत्यय और प्रकृति वाले होते हैं। (जिस प्रकार सार्थक प्रातिपदिक रूप शब्द–प्रकृति से सुन्दर या 'सु' प्रत्यय जुड़ता है, उसी प्रकार राजा लोग अर्थ—प्रशस्त धन वाले और सुन्दर विश्वास और स्वभाव वाले होते हैं।) तोते के समान अपने हरे रंग के पक्ष वाले और लाल मुख वाले होते हैं। (राजपक्ष में, प्रसन्न स्वपक्ष वाले और समस्त दिशाओं में अपना पक्ष बनाये हुये होते हैं तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुरक्त भाषण वाले होते हैं—यह तात्पर्य है।) समुद्र के समान रत्नों के खजाने वाले होते हुये भी अपने वर्ग के रक्षकों को स्वीकार करने वाले होते हैं। सांख्यशास्त्र के समान प्रकृति—प्रधान से उत्पन्न बुद्धि वाले होते हुये भी प्रकृतिभिन्न पुरुष को स्वीकार करते हैं (राजा लोग प्रकृति अर्थात् स्वभाव से उत्पन्न सद्बुद्धि वाले होते हुये भी शरणागत अन्य पुरुष को स्वीकार करते हैं।) ज ति के समान सामान्य होते हुये भी स्वयम् असाधारण होते हैं (जिस प्रकार प्रत्येक गौ में गोत्व रहता है और वह सामान्य धर्म कहलाता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ राजा लोग सब लोगों में समानवृत्ति वाले होते हैं, तथापि सबसे बढ़कर होने से असामान्य होते हैं।) यही नहीं, अपितु उनकी सम-विषम अर्थात् उच्चावच विषयों को जानने वाली बुद्धि ही विजय प्रदान करती है। इच्छानुसार क्रीड़ा के साधन मात्र सेनायें होती हैं; सदा सर्वत्र फैले हुये उनके गुणों का समूह ही लोगों को वश में करता है। सीमित वृत्ति वाले परिजन (सेवक) ही उनका विस्तार है। अलौकिक प्रकाश को उत्पन्न करने वाले शास्त्र ही शरीर को शोभित करते हैं, आभूषण तो नेत्रों को आनन्दमात्र देने में निपुण होते है। दिग्गजों को जीतने वाला बाहु ही दान के जल को छोड़ता है—हाथी तो केवल ये जानने के लिये हैं कि हाथी हैं। लोगों की दृष्टि को अतिक्रमण करने वाला प्रताप विशेष ही लोगों को पास आने नहीं देता—द्वारपाल तो उपकरणों की विभूतिमात्र हैं। स्वच्छतम उदारता ही लोगों के लिये प्राणप्रद है—बालों युक्त पंखे अर्थात् चंवर तो बच्चों की बुद्धि को मुग्ध करने भर के लिये हैं। दण्डविधान रूपी शलका को सुन्दर रूप से पकड़ा हो जिसमें, ऐसा नीतिशास्त्र ही दुःखों को दूर करने का कारण होता है, छत्र तो केवल प्रभुत्व का द्योतक भर है। सरस बनने में श्रेष्ठतम मधुर भाषण ही पद पर प्रतिष्ठा दिलाता है—राज्याभिषेक तो कहने भर की वस्तु है। सुन्दर अक्षरों वाली और हेममयी भाग्यलिपि ही, जो फल के द्वारा अनुमेय होती है, ललाट को शोभित करती है—वीरत्व का सूचक मुकुट और कवच तो तिरस्कार करने के उपाय हैं। अनेक प्रकार का सच्चरित्र ही ऊँचा शिर बनाता है—मुकुट तो एक चोटी मात्र है। दिग्दिगन्तरों में व्याप्त, गन्धगजों को छोड़ चुके हुये मधुकरों की ध्वनि ही यश को प्रकाशित करती है, वन्दिगण तो राजाओं की स्तुति अपनी आजीविका भर के लिये करते हैं। निरन्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलता हुआ यज्ञाग्नि के धुयें का फैलाव ही दिशाओं को व्याप्त करता है—अक्षौहिणी सेना से रौंदे गये भूतल से उठी हुई धूल तो पुनरुक्ति मात्र है। निरन्तर चमकता हुआ प्रताप ही प्रकाश फैलाता है—दीपकों की पंक्ति तो अनुकथन मात्र है। शरदृतु की चन्द्रिका के समान चमकने वाली यश की राशि ही धवलता को बतलाती है—मोतियों की मालायें तो प्रकार मात्र हैं। भय से भागा हुआ शत्रुओं की स्त्रियों का समूह ही दिशाओं के पर्वतों को तिरस्कृत करता है—वाहनों का समूह तो आवृत्तिमात्र है। शरत्काल के आकाश के समान स्वच्छ अपने हाथ में स्थित बड़ी तलवार ही शत्रुओं को नष्ट करती है—सुन्दर वीरों के खड्ग का समूह तो सामग्री मात्र है। अनेक मंत्रों से साध्य यज्ञक्रिया ही अग्नि को तृप्त करती हैं, शत्रुओं की नगरियाँ तो उसकी पौनः पुन्यता को सम्पादित करती हैं। अति उग्र व कठोर आँधी के धक्के के समान धनुष् के शब्द ही शत्रुओं के हाथियों के मद की नदियों को सुखाते हैं—विजय काल के नगाड़ों की ध्वनि तो अन्यथासिद्ध अर्थात् पुनरुक्त हैं। वीररसयुक्त शत्रु ही पर्वतों की गुफाओं के भीतर गये हुये शौर्य की ऊष्मा को सत्यापित करते हैं—कवियों के काव्य तो स्तुतिमात्र हैं। प्रत्यक्ष द्वारा ग्राह्य विनय ही कुलीनता को बतलाता है—ऐतिहासिकों के द्वारा किये गये वंशवर्णन तो दूसरे ही उपाय हैं। अर्थ और गौरव से युक्त वचनों का प्रयोग ही मानसिक वृत्ति और उदारता विशेष को प्रकाशित करती है बाहरी उपचार तो नियमों की पूर्त्ति मात्र है। सर्वदा असदाचरण की निवृत्ति ही आस्तिकता को प्रकट करती है—याग आदि क्रियायें तो संवाद की अपेक्षा मात्र रखती हैं। चषाल (यूपकटक) से युक्त अनेक जनपदों में स्थित यज्ञ के स्तम्भ ही दिग्विजय का वर्णन करते हैं—अधिकारिगण तो लुण्ठकादि की निवृत्ति मात्र फल वाले होते हैं ॥६१॥

असन्तस्तु भीमस्वभावा अपि न धर्मोद्भवमपेक्षन्ते, दुःशासना अपि न नकुलं विद्विषन्ति, जातिमन्तो निर्गुणा अपि न गुणशब्दमर्हन्ति, समरभीरवोऽपि विग्रहप्रिया भवन्ति, पदवन्तोऽपि न गतिं लभन्ते, गुरुत्वहीनां अपि पार्थिवा इत्युच्यन्ते, अस्नेहा अपि जडा भवन्ति, निसर्गनिष्ठुरा अपि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दहनत्वं. वहन्ति, नयनग्राह्या अपि पवनप्रकृतिका भवन्ति, परलोकादबिभ्यतोऽपि विपक्षमाश्रयन्ते, अलीकबाह्यार्थवादिनोऽपि न योगाचारतां धारयन्ति, परमहत्त्वशालिनोऽपि न श्रोत्रमनोग्राह्यविशेषगुणा भवन्ति, कालस्वभावा अपि नातीतानागतवर्त्तमानप्रत्ययान्निर्वहियन्ति, परोपतापिनोऽपि न प्रौढप्रतापा भवन्ति, मितम्पचा अपि न स्तोकमूष्मायन्ते, महाविटपा अपि नाश्रयणीयच्छायतामायान्ति, असितकर्माणोऽपि न शिष्टपरिग्रहमर्हन्ति, अप्रसक्तोत्सर्गा अपि अपवादविषया भवन्ति, दग्धवंशा अपि न स्तब्धतां मुञ्चन्ति, अहमित्यवगच्छन्तोऽपि नात्मानं जानन्ति, अतिक्षुद्रा अपि न विशेषं धारयन्ति, द्रव्यात्मिका अपि न संख्यां लभन्ते, सत्त्वरहिता अपि न द्वेषं रहयन्ति, साकांक्षा अपि नान्वयानुकूला भवन्ति, असद्धेतुकपरामर्शा अपि न साध्यभ्रमं जनयन्ति, अहङ्कारोत्पादका अपि न महत्त्वं सहन्ते, अपि च नहुषवत् परकलत्र जिघृक्षवोऽपि न सौम्यान्वया भवन्ति, शब्दविशेषवत्परार्थग्राहिणोऽपि न कृतलक्षणत्वं भजन्ते, दुर्योधनवज्जनितलक्ष्मण अपि न सवितृनयहितत्वं वहन्ति, विरोचनवत् संवर्धितवलयोऽपि न प्रह्लादोद्भवा भवन्ति, शम्बरवन्मायाविदोऽपि न दानवशताश्रया भवन्ति, गृध्रवत्प्रियामिषा अपि न दूरदर्शना भवन्ति, शैलूषवद्वेषग्राहिणोऽपि न स्वयं सच्चरिता भवन्ति, पर्वतवद्गह्वरबहुला अपि नाचलत्वमिव प्रपद्यन्ते, जलवन्नीचगतयोऽपि न शीततामनुमन्यन्ते, तेजोवन्नीरसा अपि न किञ्चिदपि प्रकाशयन्ति, वायुवदनीक्षणीया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपि न नवगुणा भवन्ति, शब्दवद्विहायसीयां वृत्तिं वहन्तोऽपि न श्रुतिग्राह्यतामापद्यन्ते, इक्षुवद्ग्रन्थिला अपि न माधुर्यमुद्वहन्ति, कीकचवदन्तःशून्या अपि न मरुद्योगेन शब्दायन्ते, तालवत्तृणराजा अपि न महत्फलं दर्शयन्ति, कदलीवदसारा अपि न सदारम्भा भवन्ति, केतकवत् कण्टकप्राया अपि नोज्ज्वलत्वं लभन्ते, कुमुदवत्त्रयीमूर्ति विरोधिनोऽपि न विधावादर बध्नन्ति, अश्वत्थवन्मन्दमात्रसेव्या अपि न सत्कुञ्जरैरुपजीव्यन्ते, कमलवद्बहुवराटका अपि न भास्वद्वल्लभा भवन्ति, किंशुकवत्पलाशवृत्तयोऽपि न सुरभिसमुल्लासित्वं भजन्ते, रसालवन्माकन्दभूता अपि न प्रमदवनानुकूलतां कलयन्ति, कुन्दवदीश्वरानाद्दता अपि न तपसा युज्यन्ते, सप्तच्छदवत् सम्पन्नशरद्वृद्धयोऽपि न दानगन्धेन संसृजयन्ते, परमात्मवद्धर्मरहिता अपि न शुद्धिं भजन्ति, जीववदविद्याविषया अपि न तात्त्विकं ब्रह्मभावं लभन्ते, शुक्तिरूप्यवत् प्रातिभासिकसद्भावा अपि न व्यवहारविसंवादं कुर्वन्ति, चित्रवच्चारुचक्षुषोऽपि न किञ्चिद्विवेचयन्ति, सिंहवत् प्रसह्यकारिणोऽपि नानेकपवित्रासनयोग्यतां प्रतिपद्यन्ते, शुकवन्मृषा प्रियवादिनोऽपि न हरिद्गरुतो भवन्ति, बालकवत्पूर्वापरानुसन्धानरहिता अपि न मातर्यनुरज्यन्ते, प्रदोषवद्रागं दर्शयन्तोऽपि न सन्तापमपहरन्ति तिलकवदलीकवृत्तयोऽपि न विशेषका भवन्ति, हारवद्हृदयं प्रसाधयन्तोऽपि न तरलभावं वहन्ति, खड्गवद्बद्धमुष्टयोऽपि न सदसिपदवीं लभन्ते, शरवत्तीक्ष्णमुखा अपि नाजिह्मगत्वं भजन्ते,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मधुवद् क्षुद्रानुषङ्गिणोऽपि न कुटभावं त्यजन्ति, मिबादिवदाख्यातान्तवृत्तयोऽपि नोत्तमपुरुषगणनामर्हन्ति, शकरादिवद्धतोष्मभावा अपि न महाप्राणा भवन्ति, वैशेषिकवत् सकणभुगनुचरा अपि न सद्दर्शनेषु संख्यायन्ते। अपि च निभालनीयो वैभवस्य स्वभावः, येन ज्ञानवतोऽप्यात्मनो द्वेषोऽधर्मो महामानत्वं चेति त्रयमुद्भवति। विभावनीयञ्च यौवनमयं स्वरूपम्—तत्र हि दशाविशेषवति वाससीव चेतसि प्रविशन्ती वरवर्णिनी रागमुद्भावयति, स्नेहातिशयशालिन्यां मनोवृत्तिवर्त्तिकायां प्रदीप इव ज्वलत्यहंकारः, अपगच्छति बालभावबलाहकावरणे बहुविधाः स्पष्टीभवन्त्पाशाः, आविर्भवन्त्यां सरस्यामिव सरसतायां गुरूपदेशास्तृणवद्बहिरेव परिप्लवन्ते, समुन्मिषदुज्ज्वलभावे चाभिनिवेशनिसर्गकठिने हृदयदर्पणे प्रतिबिम्बितमपि शास्त्रचित्रं नान्तःप्रवेशावकाशं लभते, दीप्यमाने च सन्तापकारिणि जीवनव्याप्याश्रये विषयाभिलाषचित्रभानौ समुल्लसन्महामोहधूमसमूहो विवेकदर्शनान्यकिंचित् कराणि समाचरति, द्रव्यभेदसमाश्रये च मनसि प्रतीयमानापि सख्या न साक्षात्सम्बन्धेनावतिष्ठते, अविच्छिन्नमदप्रवाहं च कुञ्जरकपोलतलमिव मनो मलिनपक्षा भ्रमरा इव पुमांसः समाकुलयन्ति। अपि च यौवनोदयो हि बहुरागपल्लवोऽशोकतरुरिव मलिनानि फलानि प्रसूते, महामानसो धनददिग्विभाग इव सुमेरुमपि स्वात्मनि स्थापयितुमीहते; मांसलस्कन्धबन्धो महामतङ्ग इव मन्दतामुद्भावयति मकरकेतनसहायो वसन्तसमय इव जातिप्रति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कूलमाचरति, सुविहितार्यमतापसारो निदाघदिवस इव तृष्णामुद्भावयति, विभावितादभ्रविभ्रमो दोष इव व्याकुलयति विवेकम्, सुलभरोषोदयो दुर्वासा इव सुमनसां धुर्यमप्याक्षिपति, कृतक्षमाभृत्स्तम्भोऽगस्त्य इव न सरस्वत्यनुगुणमाचरति, विस्तारितोरुदण्डो दुरीश्वर इव जनानुद्वेजयति, गम्भीरतापन्ननिर्घोषो घन इव चपलोल्लासमुज्जीवयति, सम्पूर्णवियत्रो राकेन्दुरिवान्तर्मालिन्यमुल्लासयति, प्रसारितनेत्रो जवनिकाविन्यास इव दर्शनं विरुणद्धि, विहितबाहुवृद्धिर्गोत्रप्रत्यय इव स्वान्तस्योदात्तत्वमापादयति ।

अवधार्यतां च लक्ष्मीः, इयं हि दुर्वासोदत्तशापानलकवलितेव जडेष्वेव पदमादधाति, पुण्डरीकाक्षवक्षःस्थलावस्थायिनी तत्कण्ठवासि-सरस्वती समक्षमनुभूतभृगुचरणप्रहाराभिभवेव ततो लज्जामाना दूरादेव परिहरति विद्वांसम् कमलवननिवासजाताभ्यासेव न पङ्कसंसर्गम्, कुशेशयपरागदूषितेक्षणेव न पुरुषाणां गुणदोषान् गणयति, महावीरकृपाणसंचारसंस्कारादिव बद्धमुष्टिषु नितान्तमनुरज्यते, हिरण्यकशिपुवक्षोविश्रामावसरे तत्कररुहांकुशैः कृतभेदेव द्वेषान्नृसिंहेषु न स्थितिं बध्नाति, वनमालासाहचर्यपर्याप्त परिचयेव भृङ्गेषु सज्जते, जानकीजन्मनि निष्कारणनिराकरणकुपितेव निरस्तदूषणे पुंसि नादरमादत्ते, रुक्मिणीदशायां जातविद्वेषेव न श्रुतश्रवो भुवि तिष्ठंति, पितृपक्षपातिनी कुम्भसम्भवविभ्रमविदिव सर्वसंहाधरनिरोधिनं विरोधिनं गणयति, आतपत्रच्छायावलम्बिनो सततमपरिचितातपेव तेजस्विना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न संयुज्यते, बालव्यजनपवनबीजनव्यसनसम्पन्नतरलमात्रपरिचयस्वभावेन स्थिरप्रकृतिषु लवमपि नावतिष्ठते, पुराणपुरुषमनोनिवासव्यसनितया समधिगतक्षुद्रस्थितिनियमेव महामानवत्सु न पदमपि न्यस्यति, सरस्वदवच्छिन्नेन समनाधिकरण्येनैरावतादिव मदं, पारिजातादिवाविवेकम्, उच्चैःश्रवस इव सदावेगजनकत्वं, चन्द्रादिव कलङ्कं, कालकूटादिव प्राणहरणं, मदिराया इवासम्बद्धभाषाम्, अप्सरोभ्य इवालीकपुरुषानुरागितां, कौस्तुभादिव प्रग्रहजालं, मैनाकादिवं पक्षप्रावण्यं, दानवेभ्य इव मायां, ग्राहेभ्य इव निर्दयत्वं, वाडवादिवातिदाहकत्वं, भुजंगेभ्य इव जिह्मगामित्वं, शंखेभ्य इवान्तःकौटिल्यं, शुक्तिभय इव पृष्ठतोऽनच्छत्वं, नदीभ्य इव नीचाभिमुखत्वं, विद्रुमेभ्य इवातिरागित्वं, मौक्तिकेभ्य इव स्वच्छत्वविशिष्टं काठिन्यं स्वाश्रये प्रकटयति । अपि च भीरुत्वादेव न सदा सौजन्यमनुमन्यते, स्त्रैत्वादेव नोदारसंसर्गासक्ता भवति, कमलालयत्वादेव न कलानिधावनुरागमेति, सामान्यत्वादेव न जातिं गणयति, चन्द्रसहजत्वादेव न नालीकेषु रज्यते, मिथ्यावादप्रियत्वादेव न्यायविदो नानुसरति, असाधुसंसर्गादेव शब्दशास्त्रविदः परित्यजति, बुद्धितत्त्वविरोधादेव सांख्यविदो नाश्रयति, विशेषानभिज्ञत्वादेव वैशेषिकान् मुञ्चति, संज्ञापहारादेव मीमांसकेभ्यो बीभत्सते, दोषवदात्मकत्वादेव वैयासविधिकान् परिहरति, अहृदयभावादेव काव्यासक्तान् परिहति । किञ्चेयं तुषारवृष्टिर्बुद्धिकमलिनीनाम्, भुजङ्गी परुषव्याहारहालाहलानां, कुलविद्या कौटिल्यस्य, आयुष्येष्टिः पारुष्यस्य, वसन्तवेला कामस्य, दुर्वासोमनोभूमिः क्रोधस्य, सौभाग्यसिद्धिर्लो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भस्य, तमःपरिणतिर्मोहस्य, करिकुम्भस्थली मदाविर्भावस्य, वात्सल्यचर्या मात्सर्यस्य, साङ्ख्यपद्धतिः पुरुषगुणानङ्गीकारस्य, शब्दविद्या प्रत्ययविकाराणां, लङ्काऽहंकारराक्षसानां विभावरी विवेकविवस्वतः, अमावास्या विनयसुधाकरस्य सुयोधनसमृद्धिर्दुःशासनोल्लासस्य, कृपाणधारातीक्ष्णभावस्य। अपि चेय ताटकेव मृगतृष्णा दर्शनोत्पत्तियोग्यापि न सुन्दरतोचितचरिता भवति, सूर्पणखेव जनकात्मजातिभयहेतुरपि न खरदूषणोच्छेदे पर्यवस्यति, हिडिम्बेव स्वतन्त्रप्रवृत्ताऽपि न वकवृत्तिविरोधशालिन्यनुरज्यते, विद्युदिव क्षणमात्रोल्लासशीलाऽपि न घनासङ्गिनी भवति, सरसीवान्तःपङ्कप्रयापि जीवनार्थिभि, स्वच्छन्दमवगाह्यते, उपनिषदिव मिथ्याभावबहलापि तत्त्वपरिच्छेदायवभवति, द्यौरिवान्तर्गतवसुरपि लोकान्तरोपभोग्या संपद्यते, कमलिनीव सतामरसभावमावहन्त्यपि न शूरमात्रविकासितां लभते, व्याप्तिरिवानुमानेन पजोव्यापि नानैकान्तिकत्वं परिहरति ॥६२॥

असज्जन राजा लोग भीम स्वभाव वाले होते हुये भी धर्म के उद्भव अपेक्षा नहीं करते (भीमसेन धर्म अर्थात् युधिष्ठिर के अभ्युदय को चाहता थ किन्तु दुष्ट राजा भयंकर स्वभाव होने के कारण धर्म अर्थात् पुण्य की उत्प और वृद्धि की अपेक्षा नहीं करते।) दुःशासन नकुल से द्वेष करता था, कि वे दुष्ट शासन (आज्ञा) वाले होते हुये भी नकुल (न्यौले से बैर नहीं करते जाति वाले और गुणों से रहित रूपत्व-रसत्व आदि शब्द गुणशब्द रूप-र आदि नाम का आदर करते हैं, किन्तु वे क्षत्रिय जाति वाले होते हुये त शौर्यौदार्य आदि गुणों से रहित होते हुये भी गुणशब्द की वाच्यता के यो नहीं होते। संग्राम से डरने वाले होते हुये भी देह से प्रेम करने वाले होते युद्ध से नहीं। पैर वाले गति (गमन) को प्राप्त करते हैं। किन्तु वे पैर वा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हुये भी गति (ज्ञान) को नहीं प्राप्त करते। गुरुत्वहीन कोई वस्तु पार्थिव (पृथिवी का विकार) नहीं बनती, किन्तु गौरव (बड़प्पन) से रहित वे लोग पार्थिव (राजा) कहलाते हैं। जड़ अर्थात् जल स्नेह रहित (अद्रवत्वयुक्त) नहीं होता, किन्तु वे लोग स्नेह (प्रेम) से रहित होते हुये भी जड़ अर्थात् मूर्ख होते हैं। अग्नि निसर्गतः—स्वभावतः निष्ठुर—कठोर नहीं होता, किन्तु वे स्वभाव से कठोर होते हुये भी दहनत्व अर्थात् सन्तापकत्व को धारण करते हैं। नेत्र से बाह्य रूपादि विषय वस्तु से उत्पन्न नहीं होते, किन्तु वे नयनग्राह्य—मनोहर होते हुये भी वायु की प्रकृति वाले अर्थात् चंचल होते हैं। परलोक से न डरते हुये भी विपक्ष—शत्रुपक्ष का आश्रय लेते हैं। योगाचार (बौद्धदर्शन का भेद विशेष) वाह्य घट-पट आदि पदार्थों को असत मानता है। वे राजा लोग बाह्य वस्तुओं की सत्ता को मिथ्या बतलाते हुये भी योग और सदाचार का पालन नहीं करते हैं। परम महत्वशाली आकाश और आत्मा क्रमशः शब्द गुणक और चैतन्यादि गुणक होने के कारण श्रोत्रेन्द्रिय और मन से ग्रहण किये जाते हैं, असज्जन बड़े महत्व वाले होते हुये भी किसी कवित्वादि ऐसे गुण को धारण नहीं करते, जो कान अथवा मन से ग्रहण किया जा सके। काल अर्थात् यम के समान स्वभाव वाले होते हुये भी भूत-भविष्य-वर्तमान काल के लोगों के विश्वासों को नहीं पालते हैं, अविश्वस्त होने से, जब कि काल—समय स्वविषयक भूतादि प्रत्ययों—ज्ञानों का निर्वाह कराता ही है। दूसरों को कष्ट देने वाले होते हुये भी प्रौढ़ प्रभाव वाले नहीं होते। जो थोड़ा पकाता है, उसकी आग थोड़ी होने से थोड़ी से गर्मी उससे निकलती है, परन्तु ये तो थोड़ा पकाते हुये भी थोड़ी भी कान्ति को धारण नहीं करते। बड़े विटप—वृक्ष आश्रय योग्य छाया देते हैं, किन्तु वे बड़े विटों की रक्षा करते हुये भी आश्रय योग्य पंक्ति को नहीं प्राप्त होते। अग्नि अपने द्वारा भुक्त वस्तु को काला अंगार बना छोड़ता है, इसलिये कृष्णकर्मा कहलाता है, और शिष्टों द्वारा उसको ग्रहण भी किया जाता है, परन्तु वे कुत्सित कर्म वाले होते हुये भी शिष्ट जनों द्वारा स्वीकार योग्य नहीं होते। व्याकरण शास्त्र में अनेक औत्सर्गिक विधियाँ अपवाद के भी विषय बनती हैं, परन्तु वे उपद्रव प्राप्त न होते हुये भी निन्दा के विषय होते हैं। जला हुआ बाँस उन्नति को छोड़ देता है, परन्तु वे कुल के जलने पर भी स्तम्भवत् मौन बने रहते हैं। जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अहम्' को सही जानता है, वह आत्मा को जानता है, परन्तु अहंकार युक्त होते हुये भी आत्मा का कोई ज्ञान नहीं रखते। जो अतिक्षुद्र परमाणु है, वह 'विशेष' नामक पदार्थ को धारण करता है विशेष नित्यवृत्ति होने से परन्तु वे अतिनीच होते हुये भी विशेषता को धारण नहीं करते। पृथिव्यादि पदार्थ द्रव्यात्मक होने से एकत्वादि संख्या के व्यपदेश को प्राप्त होते हैं, संख्या गुण-रूप होने से और गुण के द्रव्य-वृत्तिक होने से, परन्तु वे द्रव्य—धन वाले होते हुये भी संख्या—प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते। सत्त्व—बल से रहित व्यक्ति द्वेष को छोड़ देता है, परन्तु वे सत्त्वगुण से रहित होते हुये भी द्वेष को नहीं छोड़ते। वाक्य में साकाङ्क्ष पद (सः पठति—इत्यादि में) अन्वय—संसर्ग के अनुकूल होते हैं, किन्तु वे साकांक्ष—साभिलाष होते हुये भी वंश या संसर्ग के अनुकूल सुख के जनक नहीं होते। असद्धेतुक परामर्श अर्थात् व्याप्ति-विशिष्ट पक्षधर्मता का बोध साध्यविषयक भ्रम प्रमा को उत्पन्न करता है, परन्तु वे असत् कारणक विचार वाले होते हुये भी साध्य कार्य में भ्रम को नहीं पैदा करते प्रत्युत कार्य को करते ही हैं। अहंकार का उत्पादक महत्तत्त्व होता है (सांख्य शास्त्रानुसार) परन्तु वे अभिमान के उत्पादक होते हुये भी महात्म्य को प्राप्त नहीं होते। और भी. सोमवंशोद्भव पुरुरवा के पौत्र नहुष के समान परस्त्री को ग्रहण करने की इच्छा वाले होते हुये भी (नहुष इन्द्रासन में आरूढ़ होकर इन्द्राणी का जिघृक्षु हो गया था—ऐसी कथा सुनी जाती है) शुभ वंश वाले नहीं होते। समास युक्त शब्द विशेष परार्थग्राही (जैसे पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः, उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः, अन्यपदार्थ-प्रधानो बहुव्रीहिः, उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः) होता है और सूत्रानुसारी होता है, परन्तु वे दूसरों का धन लेने वाले होते हुये भी साधुत्व को धारण नहीं करते। दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण था और सविता का पुत्र दुर्योधन का मित्र कर्ण, परन्तु वे परार्थग्राहित्वादि लक्ष्मण—चिह्न को धारण करते हुये भी सवितृतनयत्वादि को धारण नहीं करते। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन और विरोचन का पुत्र बलि था, परन्तु वे विरोचन के समान बलि—कर को बढ़ाने वाले होते हुये भी प्रह्लाद—आनन्द के उद्भव वाले नहीं होते। शम्बर मायावी तथा सैकड़ों दानवों का आश्रय था, परन्तु वे मायावी होते हुये भी दान और राजाधीनता के आश्रय नहीं होते। गिद्ध आमिष-प्रिय होते हुये भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत दूर तक देखते हैं, परन्तु वे आमिष (मांस) और भोग्य वस्तु के प्रेमी होते हुये भी दूरदर्शी नहीं होते। नट के समान वेष के ग्राहक होते हुये भी स्वयं सच्चरित नहीं होते। पर्वतों के समान अनेक गह्वरों (पर्वतपक्ष में गुफाओं, असज्जनों के पक्ष में कुटिलताओं) से युक्त होते हुये भी अचलता अर्थात् स्थिरता को मानो धारण नहीं करते। जल के समान नीचे की ओर गति वाले होते हुये भी शीतता (मृदुता को धारण नहीं करते। तेज के समान नीरस (शुष्क, राजपक्ष में कठोर) होते हुये भी कुछ भी नहीं प्रकाशित करते। वायु के समान आँखों से देखने योग्य न होते हुये भी नये गुणों वाले नहीं होते (वायु के स्पर्शादि नौ गुण होते हैं।) शब्द आकाशवृत्तिक तथा श्रोत्रग्राह्य होता है, परन्तु विहायसीय अर्थात् गगनचारी पक्षियों का आचरण करते हुये भी सुनने योग्य नहीं होते—अव्यवस्थित होने से। गन्ने के समान गाँठों वाले (राजपक्ष में अस्पष्ट व्यवहार वाले) होते हुये भी मधुरता (मधुरवाणी) को धारण नहीं करते। बांस के समान भीतर से खोखले (हृदयशून्य) होते हुये भी वायु के संयोग से कोई शब्द नहीं बोलते। ताड़ वृक्ष के समान तृणों में श्रेष्ठ (तृणतुल्य राजा) होते हुये भी बड़े फल को नहीं दिखाते (ताड़ का फल भारी होता है, किन्तु वे राजा लोग किसी शुभकर्म के भारी फल को प्रकट नहीं कर सकते।) केले के समान सार से रहित होते हुये भी सदारम्भा (शुभकर्म वाले) नहीं होते, जबकि केले को सदारम्भा शब्द से भी अभिहित किया जाता है। केतकी के फल के समान काँटों (दुःखों) से युक्त होते हुये भी तत्-समान उज्ज्वल—सुफेद (सुन्दर गुण वाले) नहीं होते। कुमुद के समान त्रयीमूर्ति (सूर्य के) विरोधी होते हुये भी विधि या विधु में आदर नहीं बाधते। जब कि वे त्रयीमूर्ति अर्थात् वेद के विरोधी होते हैं. और कुमुद विधु अर्थात् चन्द्रमा में बद्धादर होता है। पीपल के समान मन्द (शनि पीपल पक्ष में, मूर्ख असत् पक्ष में) के द्वारा ही सेवनीय होते हुये भी श्रेष्ठ सज्जनों के द्वारा आश्रित नहीं होते। कमल के समान बहुत बीज कोशों से युक्त होते हुये भी (राजपक्ष में वराटक—कौड़ी वाले सूर्य से (राजपक्ष में दीप्तिमान् पुरुष से) प्रेम नहीं करते। किंशुक के समान पलाश की वृत्ति वाले होते हुये भी सुरभि (पलाशपक्ष में वसन्त ऋतु, राजपक्ष में मनोज्ञता) से आनन्दित नहीं होते। आमजो कि माकन्द का पर्याय है प्रमदवन की अनुकूलता को धारण करता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु वे मा + कन्द अर्थात् लक्ष्मी के समूहभूत होते हुये भी प्रमदवन—सन्तोष समूह की अनुकूलता को धारण नहीं करते। कुन्द—माघ का पुष्प भगवान् द्वारा पसन्द नहीं होता किन्तु तपः अर्थात् माघ मास द्वारा पुष्ट होता है, किन्तु वे ईश्वरों—समर्थ व्यक्तियों द्वारा पूजित न होने पर भी तपस्या से संयुक्त नहीं होते। सप्तपर्ण शरद् ऋतु में वृद्धि को प्राप्त होता है और हाथी के दानवारि के तुल्य गन्ध से युक्त रहता है, परन्तु वे जन्मवर्षों की पूर्ति वाले होते हुये भी दान अर्थात् वितरण की गन्ध से भी संयुक्त नहीं होते। परमात्मा शब्द स्पर्शरूपादि धर्मों से रहित होता है और नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला होता है, परन्तु वे धर्माचरण से रहित होते हुये भी शुद्धि से युक्त नहीं होते, क्योंकि धर्मविहिन व्यक्ति व्यवहार दशा में शुद्ध नहीं रहता। जीव अविद्या विषय वाला होता है और अविद्या छोड़ने पर तात्त्विक महान् स्वरूप को प्राप्त होता है, वे लोग मूर्खता के विषय होते हुये भी तात्त्विक ब्रह्मभाव को नहीं प्राप्त करते। सीपी में चाँदी के रूप का सद्भाव भ्रमवश-प्रातिभासिक होता है, और वह व्यवहार में धोखा देता है, परन्तु वे सज्जनवत् वाह्यरूप से प्रतिभासित होते हुये भी व्यवहार में विसंवाद अर्थात सज्जनता को नहीं दर्शाते। जैसे चित्र में लिखित सुन्दर चक्षु कोई विवेक नहीं कर सकते, वैसे वे सुन्दर चक्षु वाले होते हुये भी विवेकशील नहीं होते। सिंह बलपूर्वक झपटने वाले तथा अनेकप—द्विप अर्थात् हाथियों को भगाने की योग्यता रखते हैं, परन्तु वे बलपूर्वक कार्य करने वाले होते हुये भी अनेकों पवित्र आसनों में बैठने की योग्यता नहीं धारण करते। तोते झूठे ही प्रिय बोलते हैं और हरे पंखों वाले होते हैं, परन्तु वे व्यर्थ ही प्रिय भाषी होते हुये भी हरे बालों वाले नहीं होते। (गरुत्पक्षच्छदाः पत्रं पतत्र च तनूरुहम्—इत्यमरः) बालक पहले और बाद की बातों को जानने में असमर्थ रहता है और माता से स्नेह रखता है परन्तु वे पूर्व और पश्चात् की जानकारी करने में असमर्थ होते हुये भी मातरि—ज्ञान करने वाले में अनुराग नहीं करते। सन्ध्या (सायं) वेला लाल रंग दर्शाती है और गर्मी को हरण करती है) परन्तु वे अनुराग को दिखाते हुये भी लोगों के दुःख और कष्ट को दूर नहीं करते। तिलक कपाल-वृत्ति होता है और कपाल को विशेष बनाने वाला भी होता है, परन्तु वे असत्य व्यवहार वाले होते हुये भी विशिष्ट नहीं होते। मोतियों की हार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदय भाग को शोभित करता है और तरलभाव—हारमध्य का भूषणरत्न धारण करता है, परन्तु वे हृदय को प्रकृष्टता से सिद्ध करते हुये भी तरलभाव अर्थात् दयार्द्रता को धारण नहीं करते। खड्ग बद्धमुष्टि होता है और तलवार (सन् + असि) की पदवी को प्राप्त होता है, परन्तु वे दान के विषय में अपनी मुट्ठियों को बाँधे होते हुये भी सभा में पद-प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करते। बाण का मुख तीखा होता है, और वे सीधे चला करते हैं, टेढ़े नहीं, परन्तु वे तीखे मुख वाले होते हुये भी सरलता अथवा सिधाई को नहीं धारण करते। मधु (शहद) मधुमक्खी के सम्पर्क से होता है और उसमें कड़ुवापन नहीं होता, परन्तु वे क्षुद्र अर्थात् नीच के संग में रहते हुये भी कटुता को नहीं छोड़ते। पिप्-वस्-मस् इत्यादि प्रत्यय आख्यात्—क्रियावाचक शब्दों के अन्त में जुड़ते हैं और उत्तम पुरुष की गणना के योग्य होते हैं, परन्तु वे आख्यात—ख्याति के अन्त अर्थात् नाश में प्रवृत्ति वाले होते हुये भी उत्तम पुरुषों की गणना में नहीं गिने जाते। शंकरादि वर्ण ऊष्म और महाप्राण प्रयत्न वाले होते हैं, वे ऊष्मभाव अर्थात् तेजस्त्व को धारण करते हुये भी महाप्राण अर्थात् महाबलशाली नहीं होते। वैशेषिक दर्शन कणाद मुनि के अनुयायियों के द्वारा समर्थित होता है तथा सद्दर्शन अर्थात् आस्तिक दर्शन में गिना जाता है, परन्तु वे कर्णों के सेवन करने वाले दीन सेवकों के सहित होते हुये भी सद्दर्शनों अर्थात् सज्जनों के विचारों में नहीं गिने जाते (अच्छे लोगों में उनकी गिनती नहीं की जाती —यह तात्पर्य है।) और वैभाव का स्वभाव भी विचारणीय अथवा परीक्षणीय है, जिससे ज्ञानवान् होते हुये भी आत्मा के भीतर द्वेष, अधर्म और भारी अभिमान—ये तीनों उत्पन्न होने लगते हैं। साथ ही यौवनयुक्त स्वरूप भी विचारणीय है। उसमें तो—जिस प्रकार विशेष दशा वाले वस्त्र में लाक्षादि रंग चढ़ जाता है, वैसे ही सुन्दरी युवती मन में प्रवेश करते ही अनुराग उत्पन्न कर देती है; स्नेह के आधिक्य से युक्त मनोवृत्ति रूपी बत्ती में प्रदीप के समान अहंकार जलने लगता है; जिस प्रकार प्रारम्भावस्था के बादल के हट जाने पर सारी दिशायें स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं, वैसे ही इस यौवन में सम्पूर्ण आशायें—तृष्णायें स्पष्ट प्रकट होने लगती हैं; जैसे किसी पानी से भरे तालाब में पड़े तिनके तालाब के बाहर ही तैरते रहते हैं, भीतर नहीं डूबते, उसी प्रकार सरसता युक्त अनुराग के प्रकट होने पर गुरुओं के उपदेश व्यक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क अन्तःकरण में प्रविष्ट न होकर बाहर ही बाहर दिखाई देते हैं। स्वच्छता का प्रकाश होते हुये भी आग्रह के कारण स्वभाव से कठिन (कठोर) बने हृदय रूपी दर्पण में, प्रतिबिम्बित होने पर भी शास्त्र का चित्र भीतर प्रविष्ट होने के लिये स्थान नहीं पाता; सन्तापकारी व्याप्तिविशिष्ट के आश्रयभूत—जीवन में विषयों की अभिलाषा रूपी अग्नि के प्रकाशित होने पर, बढ़ता हुआ भारी अज्ञान रूपी धूम का समूह सद्सद् विचार रूपी विवेक की बातों को तुच्छ बना देता है। (उपमा के इस उदाहरण में यौवन पक्ष है विषयाभिलाषचित्रभानु साध्य है, महामोहधूम—समूह हेतु है और विवेक दर्शन हेत्वाभास रूप है।); द्रव्यभेदसमाश्रय अर्थात् धन के सुवर्णादि भेदों के विषयभूत चित्त में प्रतीत होने वाली एकत्वादि संख्या साक्षात्—इयत्ता के सम्बन्ध से स्थिर नहीं हो पाती। (न्यायशास्त्र की रीति से 'मन पृथिव्यादि नहीं है'—इस प्रकार से मन में प्रतीत होने वाली नवत्व सख्या साक्षात् सम्बन्ध से नियत न रहकर अपेक्षा के विचार से रहती है।) जिस प्रकार निरन्तर मद को बहाने वाले हाथी के गण्डस्थल पर काले पंखों वाले भौंरे मँडराते रहते हैं, उसी प्रकार युवक के मन को मलिन वर्ग वाले पुरुष अच्छी प्रकार व्याकुल करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त, यौवन का आविर्भाव निस्सन्देह अनेक रंग के पत्तों वाले अशोक के वृक्ष के समान काले फलों (अर्थात् काले कर्मों को जन्म देता है; जिस प्रकार बड़े मानसरोवर वाली कुबेर की (उत्तर) दिशा सुमेरु पर्वत को अपने भीतर समा लेती है, उसी प्रकार बड़े मन वाला यौवनोदय सुमेरु को भी आत्मसात् करने की चेष्टा करता है, अन्य की तो बात ही क्या है। माँस से भरे मोटे कन्धों वाले विशाल हाथी के समान मन्दता—आलस्य और जड़ता को उत्पन्न करता है कामदेव के सहायक बसन्त ऋतु के समान जातिप्रतिकूल (वसन्त पक्ष में मालती के प्रतिकूल, यौवनपक्ष में अपनी जाति के प्रतिकूल) आचरण करने लगता है। अच्छी प्रकार वर्णित आर्य मत को छोड़ देना विषयतृष्णा को ऐसे ही उत्पन्न करता और बढ़ाता है, जैसे कि ग्रीष्म ऋतु का दिन प्यास को उत्पन्न करता और बढ़ाता है। जिस प्रकार वात-पित्त-कफ के दोष अत्यन्त भ्रम को उत्पन्न करते है, वैसे ही यौवनोदय विवेक को व्याकुल करा देता है। क्रोध बहुत जल्दी दिखाने वाले दुर्वासा मुनि के समान यह यौवनोदय देवों के स्वामी को भी तिरस्कृत कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देता है। क्षमामृत अर्थात् विन्ध्याचल को स्तम्भित करने वाले अगस्त्य मुनि ने जैसे सरस्वती नदी की अनुकूलता अर्थात् तटनिवास नहीं किया था (क्योंकि ये गोदावरी तट पर निवास करते थे) उसी प्रकार क्षमामृत् अर्थात् राजाओं का अवरोध करने वाला यौवनोदय सरस्वती अर्थात् वाणी के अनुरूप आचरण नहीं करता। महान् दण्ड को चलाने वाले कुनृप की भाँति लोगों को उद्विग्न करता है; गम्भीरता को प्राप्त हुये गर्जने वाले मेघों के समान चपला (विद्युत्—मेघ पक्ष में, चंचलता—यौवन पक्ष में) के उल्लास अर्थात् प्रकाश या दर्प को चमकाता है। सम्पूर्ण कलाओं वाले चन्द्रमा के समान भीतर की ओर (अन्तःकरण में, यौवनपक्ष में) मलिनता को उद्भूत करता है। फैलाये हुये नेत्र वाले (जवनिका पक्ष में—बन्धन रस्सी वाले) पर्दे की व्यवस्थापना के समान नेत्र अथवा बुद्धि पर पर्दा डालता है। जिस प्रकार बाहु शब्द में गोत्रापत्य में इञ् प्रत्यय (बाह्वादिभ्यश्च) से करने पर बाहविः शब्द अन्तोदात्त निष्पन्न होता है, उसी प्रकार यौवनोदय भी स्वान्त—मन को उदात्त उन्नत बना देता है।

लक्ष्मी का ही विचार किया जाये; यह तो दुर्वासा के द्वारा दिये गये शापाग्नि से ग्रसित हुई सी जड़ों में ही पैर रखती है (जड़ का अर्थ श्लेषालंकार द्वारा जल और मूर्ख दोनों यहाँ पर लिया जा सकता है, विष्णु के वक्षःस्थल में निवास करने वाली, विष्णु के ही कण्ठस्थित सरस्वती के सामने भृगु द्वारा मारी गई लात को अनुभव करने के कारण तिरस्कृत हुई सी उनसे लज्जित होकर दूर से ही विद्वान् का परित्याग कर देती है। कमल के वनों में निवास करने के अभ्यास वश मानो कीचड़ अथवा पाप का संसर्ग नहीं छोड़ती। कुशेशय अर्थात् शतपत्र के पराग से दूषित आँख वाली सी मनुष्यों के गुणों और दोषों को नहीं गिनती है। बड़े वीरों की कृपाणों के चलने के संस्कार से मानो मुट्ठी बँधे हुये कृपाणों में अत्यधिक प्रसन्न रहती है। हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल में विश्राम करते समय नृसिंह के नाखून रूपी अंकुशों के द्वारा फाड़ी गई सी मानो द्वेष से श्रेष्ठ पुरुषों में स्थिर नहीं रहती। वनमाला वह माला जो गले में पहनकर पैर तक लटकती हो के साथ रहने के कारण बहुत परिचय को पायी हुई सी भौंरों में चिपकी रहती है। सीता के रूप में जन्म के काल में बिना कारण ही परित्याग अथवा अनादर से क्रुद्ध हुई सी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रदूषण को नष्ट करने वाले राम में, अथवा निर्दोष मनुष्य में आदरभाव नहीं रखती। रुक्मिणी के रूप में उत्पन्न होने की अवस्था में ईर्ष्या और रिभाव से युक्त हुई सी श्रुतश्रवोम्—शिशुपाल में, अथवा पण्डित के पुत्र में विद्यमान नहीं रहती। पिता समुद्र के पक्ष को अंगीकार करने वाली होते ए अगस्त्य के विलास को जानने वाली सी सबको सहने वाले अधर—विध्याचल पर्वत का निरोध करने वाले तथा राजा के विरोध करने वाले को कुछ नहीं गिनती। राज्य के छत्र की छाया का आश्रय लेने वाली निरन्तर रूप से परिचय न होने के कारण तेजस्वी—प्रतापशाली व्यक्ति के साथ संगत नहीं होती। चामर की वायु के चलने के व्यसन से सम्पन्न चपलतारूप परिचय के स्वभाव वाली सी दृढ़ धैर्यशाली पुरुषों में थोड़ा भी नहीं टिकती। विष्णु के मन में निवास करने के शौक से, तुच्छों में अवस्थित होने के नियम को सी प्राप्त हुई महामानी—उदारचित्त वाले पुरुषों में पैर तक नहीं रहती, अवस्थिति की तो कथा ही क्या है। समुद्र में एक साथ उत्पन्न होने रूप सामान्याधिकरण्य से मानो ऐरावत (इन्द्र के हस्ती) से मद, पारिजात—कल्पवृक्ष से जड़ता, उच्चैःश्रवा नामक इन्द्र के हाथी से सदा आवेग—चंचलता को उत्पन्न करने का भाव, चन्द्रमा से कलङ्क (कालिमा अथवा पाप), विष से मृत्यु, वारुणी से असम्बद्धप्रलाप, अप्सराओं (रम्भादि) से अनुचित पुरुष से प्रेम करने का भाव, कौस्तुभमणि से नियमों अथवा तागों का जाल, मैनाकपर्वत से पंखों का सेवन (लक्ष्मीपक्ष में, पक्ष का आश्रय), दानवों से माया, मगरों से क्रूरता, समुद्राग्नि से अत्यधिक दाहकता, सर्पों से कुटिल आचरण, शंखो से भीतर से कुटिलता, सीपियों से पृष्ठभाग की अस्वच्छता, नदियों से नीच की ओर चलना, मूंगों से अतिराग (अत्यधिक अनुराग होना), और मोतियों से स्वच्छता लिए हुए कठोरत्व को लेकर अपने आश्रय—पुरुष में प्रकट करती है। (अर्थात् इन सब ऐरावत आदि के समुद्र से उत्पन्न होने के कारण जो-जो विशेषता पृथकतः ऐरावतादि की है, वही साहचर्यवशात् लक्ष्मी की भी समष्टितया है।) इसके अतिरिक्त वह लक्ष्मी डरपोक होने के कारण ही सदा सुजनता को स्वीकार नहीं करती। स्त्रीत्व-जातिविशिष्ट होने के कारण ही उदार पुरुषों के सम्पर्क में नहीं आती, कमलालया (कमल हैं आलय जिसके वह—यह शब्द लक्ष्मी का पर्याय भी है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने के कारण ही चन्द्रमा में (पक्षान्तर—में कलाओं के मर्मज्ञ पुरुष मे) प्रीति नहीं रखती, (क्योंकि कमल सूर्योदय में खिलते हैं और चन्द्रोदय में संकुचित हो जाते हैं।) सामान्य होने के कारण ही जाति (ब्राह्मणत्वादि जाति भेदों को नहीं गिनती। चन्द्रमा के साथ उत्पन्न होने के कारण (समुन्द्रमन्थन के अनन्तर) ही कमलों के समूह में (पक्षान्तर में, न+अलीकेषु—सत्यवादियों में) अनुरक्त नहीं होती। झूठ बोलना पसन्द होने से ही न्याय—सत्य जानने वालों का अनुसरण नहीं करती (पक्ष में, मिथ्यावाद - शांकरवेदान्त विचार धारा जिसके अनुसार जगत् को मिथ्या माना जाता है, प्रिय होने से न्यायविदः=न्यायशास्त्रज्ञों का अनुसरण नहीं करती)। असज्जनों के संसर्ग से ही (पक्ष में अपाधु—अपशब्दों के संसर्ग के कारण) व्याकरणशास्त्रज्ञों को परित्यक्त कर देती है, बुद्धितत्त्व की विरोधिनी होने के कारण ही सांख्यशास्त्रज्ञों का आश्रय नहीं लेती (सांख्य में बुद्धि अर्थात् महत्तत्व को प्रकृति की विकृति के रूप में प्रतिपादित किया गया है।) विशेष (विशेषिकों के प्रसिद्ध पञ्चमपदार्थ) से अनभिज्ञ होने के कारण ही वैशेषिकशास्त्रज्ञों को छोड़ देती है। संज्ञा—नाम के अपहरण के कारण ही मीमांसकों से घृणा करती है (मीमांसक देवता को अविग्रहवती और मंत्रमयी मानते हैं, लक्ष्मी देवी विग्रहवती है, अतः उसका मीमांसकों से विरोध तर्कसंगत है।) स्वात्मा दोषयुक्त होने से ही वेदान्तियों को त्याग देती है (वेदान्ती आत्मा को निर्दोष मानते हैं, जबकि लक्ष्मी को अनेक दोषों का आश्रय माना गया है अतः सदोष का निर्दोष से द्वेष करना स्वाभाविक है।) हृदयहीन होने के कारण ही काव्यों में आसक्त सहृदय लोगों को त्याग देती है। इतना ही नहीं यह लक्ष्मी बुद्धिरूपी कमलिनियों के लिये पाले या हिम की वर्षा है (अर्थात् जैसे पाले से कमलिनी नष्ट हो जाती है, वैसे ही लक्ष्मी के होने पर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।) कटु-वचन रूपी विषों को उगलने वाली सर्पिणी है कुटिलता की अथवा कौटिल्य नामक चन्द्रगुप्त मौर्य के कुल की विद्या है कठोर वचनों की आयुर्वर्धक इष्टि (यज्ञ) है; कामदेव की वसन्तऋतु है; क्रोध की दुर्वासा के मन रूपी भूमि है; लोभ की सौभाग्य सिद्धि है; मोह की अन्धकार (अज्ञान) रूप परिणति है; मद (अभिमान) के आविर्भाव की हार्थ की गण्डस्थली है; मत्सरता (ईर्ष्या) का वात्सल्य व्यवहार है; पुरुष के गुणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को स्वीकार न करने की सांख्यपद्धति है (जिस प्रकार साँख्यशास्त्र में पुरुष (जीवात्मा) में सत्त्व, (ज:, तम: ये गुणा स्वीकार नहीं किये जाते, उसी प्रकार लक्ष्मी भी मनुष्यों में गुणों की अपेक्षा नहीं करती।); प्रत्यय विकारों की शब्दविद्या (व्याकरण शास्त्र) है (जिस प्रकार व्याकरण में प्रत्ययों तथा वर्ण विकारों का विधान होता है, उसी प्रकार लक्ष्मी प्रत्ययों अर्थात् विश्वासों के विकारों विनाशों की साधिका है।); अहंकार रूपी राक्षसों की लंका नगरी है; विवेक रूपी सूर्य की रात्रि है (लक्ष्मी के होने पर विवेक का वैसे ही अन्त हो जाता है, जैसे रात्रि के उदय पर सूर्य)। विनयरूपी चन्द्रमा की अमावास्या है; दुःशासन (दुर्योधन का अन्यतम भ्राता) के हर्ष की दुर्योधन सम्बन्धी समृद्धि है (अर्थात् जिस प्रकार दुर्योधन की समृद्धि से दुःशासन को हर्ष होता है, उसी प्रकार लक्ष्मी की समृद्धि होने पर दुष्ट शासन का उल्लास होता है।); तीक्ष्ण स्वभाव की कृपाण की धारा है (अर्थात् कृपाण की धारा के समान तीक्ष्ण लक्ष्मी का स्वभाव होता है।), तथापि यह लक्ष्मी ताड़का नामक राक्षसी के समान, मृगतृष्णा के दर्शन के उत्पत्ति योग्य होते हुए भी सुन्दरता के लिए उचित चरित्र वाली नहीं होती (ताटका मृगों के भक्षण की तृष्णा लिये हुये थी, किन्तु पति सुन्द के मारे जाने पर सुन्द के साथ सम्भोग के लिये उचित चरित्र वाली (विधवा होने के कारण) नहीं होती।) सूर्पणखा के समान सीता को अति भय देने वाली होते हुये भी खरदूषण के विनाश होने पर खिन्न नहीं होती (सूर्पणखा तो खरदूषण के वध पर दुःखी हुई, किन्तु लक्ष्मी जनकात्मजा—पिता तथा पुत्र के अति भय का हेतु होते हुये भी तीव्र दोष के नष्ट होने पर दुःखी नहीं होती।) हिडिम्बा के समान स्वतंत्र प्रवृति वाली होते हुये भी बकासुर की वृत्ति का विरोध करने वाले में अनुरक्त नहीं होती (हिडिम्बा नाम की राक्षसी बकासुर की वृत्ति का विरोध करने वाले भीम में अनुरक्त थी, किन्तु लक्ष्मी बगुले के समान स्वार्थवृत्ति के विरोध करने वाले सज्जन में अनुरक्त नहीं होती।); विद्युत के समान क्षणभर के लिये चमकने वाली होते हुये भी घनों के साथ आसक्त नहीं होती (विद्युत तो आकाश में क्षणभर के लिये चमकती है और मेघों में मिली रहती है, परन्तु लक्ष्मी अल्पकाल के लिये चमक दमक दिखाती हुई भी घन—दृढ़ पुरुष में आसक्त नहीं होती।) तालाब के समान भीतर से कीचड़ की बहुलता (लक्ष्मी पक्ष में,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाप या दोषों की बहुलता) होते हुये भी जीवन (जलाशयपक्ष में—जल; लक्ष्मी पक्ष में—प्राणधारण) चाहने वालों के द्वारा स्वच्छन्द रूप से आलोडित नहीं की जाती। उपनिषद् के समान मिथ्याभाव बहुल होते हुये भी तत्त्वज्ञान के लिये नहीं होती (उपनिषदों में ब्रह्म की सत्यता और कार्यजगत् की अनित्यता प्रतिपादित की गई है, जिसके कारण अतिवादी ब्रह्मातिरिक्त अन्य सबको मिथ्या कहते हैं, किन्तु उनमें तत्त्वज्ञान विद्यमान रहता है; इसके विपरीत लक्ष्मी मिथ्याचार को फैलाती है और तत्त्वज्ञान के लिये सहायक नहीं होती :); आकाश के समान वसु भीतर रहते हुये भी अन्य लोकों के द्वारा उपभोग योग्य नहीं होती (द्युलोक में वसु नामक देवता निवास करते हैं और वह पृथ्वीस्थ पुण्यात्मा मनुष्यों के भी जन्मान्तर में उपभोग योग्य होता है, किन्तु लक्ष्मी धनयुक्त होते हुये भी अन्य लक्ष्मीरहितों के द्वारा उपभोग योग्य नहीं होती।); कमलिनी के समान लाल पुरुष को धारण करती हुई (लक्ष्मीपक्ष में—सज्जनों के लिये नीरसता को धारण करती हुई) भी शूरमात्र से विकास को नहीं प्राप्त होती (कमलिनी सूर्यमात्र के उदय से खिलती है, परन्तु लक्ष्मी शूर अर्थात् वीर पुरुष मात्र से अप्रसन्न रहती है।); व्याप्ति (अर्थात् साहचर्यनियम) जैसे अनुमान से उपजीवित रहती है, वैसे ही यह लक्ष्मी अनुमनन वा अनुसरण से जीवित रहने के योग्य होते हुये भी अपनी प्राप्ति के विषय में अनेकान्तिकता अर्थात् व्यभिचार (—अनियम) का परित्याग नहीं करती ॥६२॥

राजयञ्च महदकूपारसमानमालक्ष्यताम्, तथाहि—केचिन्निगूढं कृततपस्विजनापकाराः कालकेया इवाकलयन्ति, अपरे विजयमात्रसाध्या निवातकवचा इव प्रविशन्ति, अपरेऽधिष्ठितहिरण्यपुराः पौलोमकालकेयगणा इवाकुलयन्ति, केचितपक्षानुरागिणोऽसंख्यशिखरजालशालिनो महीधरा इवानुबध्नन्ति, केचन गूढचरणो विषदृष्टयो भुजंगमा इव सङ्गं कुर्वन्ति, अन्ये स्वजातीयभोजिनोऽनेकयोजनावच्छिन्नमितयस्तिमिङ्गिला इव सङ्गच्छन्ते, इतरेऽनुपहतमोहशक्तयः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालकूटावयवा इव समाश्रयन्ते; अपरे प्रकृष्टप्रकाशा अपि चैतन्यहीना मणय इव प्रणयं नावगणयन्ति; केचिदास्वादितसर्वतोमुखकाठिन्यसम्पादका मुक्तास्फोटा इव स्फुरन्ति; अपरेऽतिक्षुद्रा अन्तश्छिद्रमालिन्यभाजो वराटका इव रटन्ति; अपरे बहिरवदाता अपि अन्तरनृजुसन्निवेशाः कम्बव इव संवसन्ति; अन्ये बहुमाधुर्यविद्रुमाख्याः प्रवाला इव विस्फुरन्ति; केचन भुवनापचयहेतवोऽन्तर्लग्ना वडवानला इव ज्वलन्ति; केचित् स्वसम्बन्धिनामधोगतिहेतवो भ्रमप्राया आवर्ता इव परिवर्त्तन्ते; इतरे बहुतरोद्गमनपूर्वक निपातशीला भङ्गुरास्तरङ्गा इवांगीकुर्वन्ति; परे दारुणोपहितारम्भा लाभार्थिजनमात्रसहायाः सदाशाः पोता इव लंघितुमीहन्ते; केचित् सदाविहितनीतिलोपामुद्राशालिनो महामहसो विबुधविभावितोद्योगाः कुम्भसम्भववद्विपक्षक्षमाभृतः: पातुमेवेच्छन्ति; अन्ये सततं न—भोगतयाभिमुखीभूताः कमलार्थिनो घना इवोपघ्नान्ति; अपरे सारमादित्समाना गोत्रसहाया विपक्षैरपि सम्भूय त्रिदशा इव मथ्नन्ति; केचिदमज्जदचलसहकारिणो रामवदन्यत्रगमनार्थिनोऽतिक्रामन्ति, तदेवंविधे परस्परनैरपेक्ष्येणाप्यनर्थहेतूनां वयोवैभवविद्यादीनां समवाये यथा विविधभ्रमकारिण्यो मदिरा इव वामलोचना नोन्मादयन्ति, आभिमानिकसुखहेतवोऽक्षमा मृगयासंगा न हृदयमंगारयन्ति, आपातचमत्कारजनकाः कननाभासा इव दम्भवृत्तयो न विप्रलम्भं संभावयन्ति, दर्शनमात्रसाराः शालभञ्जिका इव वारवनिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न नितान्तमपहरन्ति; दृष्टिदूषका मण्डूकवसाञ्जनसदृशाः खलाः सद्वंशेऽपि न भुजंगभ्रमं विभावयन्ति, सहजसंतापसमर्थाः पित्तवद्धूर्ता न मधुरे तिक्तत्वमुद्भासयन्ति, अन्यथास्वरूपं दर्शयन्तो नटा इव व्यवहारार्थिनो न विसंवादयन्ति; अनिर्वचनीयमज्ञानमिव भावभूतं मनो नात्मनि मिथ्याप्रपञ्चं प्रकाशयति; विषयग्रहणाभिमुखो विपक्ष इव बाह्येन्द्रियगणो नाभिभवति; वस्तुस्वरूपतिरोधायकोऽन्धकार इवा विवेको नान्धयति; मुखविकारजनको जरागम इव क्रोधो न स्वाधीनयति; अयथा स्थानपात्यपराधः शर इव न लोभः परेहास्यतां नयति; विपर्ययप्रचुरो दुष्टामात्या इव मोहो न मोहयति; च्यवन हेतुरभिचारागम इव मदो नावस्कन्दति; सकलगुणविरोधी पिशुन इव मत्सरो न कुत्सयति; मार्गणाक्रमणद्वेषी भीरुभाव इव कृपणभावो न स्पृशति; सद्रागापहारी तेजः संयोग इव गुणाऽनादरो नावसादयति; परपरिभवपर्यवसायी द्रविणाभाव इव नाहङ्कारः कलङ्कयति; अत्युन्नतो वेणुरिव गुणगणो नाकस्मादधः पातयति; अदृश्यावेशकारी पिशाच इव गर्वो न गृह्णाति; सर्वात्मना कुत्राप्यदत्तपदा वेश्येव विद्या न नर्त्तयति; अनर्थहेतुरुत्पात इव मान्यावमानो नानुमन्यते; आकास्मिकोपनिपातो दुरदृष्टविभाग विपाक इव प्रमादो नावसादयति; प्रकृतिविपर्ययकारी वातावेश इव मूर्खपरिग्रहो न परिभवति; यत्किञ्चन कारयन्नुन्माद इव कुलाभिमानो ना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुलयति; नयनमिलनकरी दुर्नीतिरिव निद्रा नाभिद्रवति; मलीमसग्राहिणी पिशाची वालसता नाभिक्रामति; चित्त-संकोचकरी सुषुप्तिरिव भीतिर्न वशयति; स्वापकर्षसम्पा-दकं सौहार्दमिव मार्दवं नार्दयति; जन्यस्वरूपप्रच्यावको भीरुभाव इव दीर्घसूत्रभावो नोपहासयति; तप्तसिकता-क्रमणहेतुः पातकमिव मृगयासक्तिर्नात्मानं व्यनक्ति; कलि-निवासस्थानं बिभीतकमिवाक्षा न स्वात्मनि विश्रामयन्ति; संज्ञापचयहेतुनिशाचरीव मदिरा न विसदृशयति; प्रकाश-प्रत्यक्षविरुद्धो मोह इव दिवास्वापो न स्वापो भवति; गाम्भीर्यविपर्ययात्मोत्तानभाव इव परिवादो नावतरति; अङ्गहारबहुलं विपक्षबलमिव नृत्यं न कवलयति; धृतराष्ट्रो-दयापहारक गन्धर्वसैन्यमिव गान्धर्वं नान्धयति; अनेकतत-सुषिरं जालमिव वाद्यं न बध्नाति; फलाननुबन्धिनी बन्ध्यवीरुदिव वृथा चेष्टा न कदर्थयति; विरसपरिपाकं पन-सफलमिव पैशुन्यं न प्रसरति; विचाराननुगुणं मान्द्यमिव न साहसं प्रवहति; बहुच्छलः खल इव द्रोहो न मोहयति; गुणक्षमाविरुद्धा द्रव्योत्पत्तिवेलेवेर्ष्या नाकर्षति; दोषानु-सारिणी तिमिरलेखेवासूया न प्रसरति; नास्तिक्यपर्यवसन्नं योगाचारदर्शनमिवार्थदूषणं नोन्मिषति; जनश्रवणोद्वेजकं कर्णशूलमिव वाक्पारुष्यं न पुष्यति; महापरागोत्थापनसमर्थ-मुत्पातवात्याचक्रमिव दण्डपारुष्य नोन्मिषति; यथा च—निदाघसमयेनेव दुर्जनेन विश्रामदायिन्यो यामिन्य इव प्रजा न क्षीयन्ते, गम्भीरा शयानि सरांसीव मित्राणि न शुष्यन्ति;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तापहेतवो दिवसा इव दुर्जना न बर्धन्ते; रागबहलाः पाटलप्रसवा इव विटा नोल्लसन्ति; गोत्रदाहका दावदहना इव दुर्जना न ज्वलन्ति; तृषार्ताश्चातका इवार्थिनो न कदर्थ्यन्ते; अतिदुःसहस्पर्शा यवबुसा इव दुर्वृत्ता न विलसन्ति, विषप्राया अजगरनिश्वासा इव महासाहसिका न प्रसरन्ति, निशान्तभेदिन आतपा इव तस्करा न प्रतपन्ति—तथा यतेथाः। अपि च भुवनव्यापिभिः स्वकीर्तिराजहंसैः समुन्मूलय परेषाञ्चामरमृणालजालकं, तमः स्वरूपेण कृपाणराहुणा कवलय परेषां सितात्पन्नसुधाकरमण्डलं दिगन्तरतिरोधायिभिर्बाणवर्षैर्निर्वापय दीप्यमानं परेषां प्रतापतनूनपातं, स्वतेजोमहोष्मस्वेदैर्निराकुरु तेषां जाड्यनिबन्धनानि शिरोगौरवाणि, सरासनंशिञ्जिनीकूजितसिद्धमन्त्रैः स्तम्भय वैरिणामाज्ञावचनानि, अप्रतिहतप्रयत्नशतकोटिभिर्महेन्द्र इव क्षपय विपक्षक्षमाभृतान् पक्षान्, स्वचरणनखररोहिणीरमणकिरणपरम्पराभिः परिभव तदीयवदनारविन्दानि, सुविहितप्रतिबन्धैः प्रतिहेतुभिरिव हेतिनिवहैः प्रतिजहि समरसीमनि सामर्षं तत् साधनानि, धनुर्मध्यनिबद्धदृढतरमुष्टिदृश्यप्रकोष्ठपद्मरागाभरणदीधितिधारामयैः सिद्धौषधीपल्लवैः सम्मार्जय तेषां महान्तमहङ्कारहालाहलम्, दुर्वारप्रवृत्तिरपवाद इव समुत्सारयान्तरङ्गबहिरङ्गप्रचारकक्षां, दुरवगाहतमेष्वष्टादशस्वेव द्वीपेष्विव तीर्थेषु विजयस्तम्भानिव समारोपयाचलान् चारानिति समभिधाय व्यरमत् ॥६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और राज्य को बड़े समुद्र के समान समझना चाहिये; जैसे कि- कुछ लोग जिन्होंने तपस्वी लोगों का अपकार किया हो राज्य को छिपे हुये ही कालका के पुत्रों (—असुरों) के समान व्याकुलित करते हैं; दूसरे लोग हैं जो, अर्जुन ने जैसे निवातकवच नाम के असुरों को वशीभूत किया था, वैसे केवल जीतने से वश में आने वाले वायु को रोकने वाले कवचों के समान राज्य में प्रवेश करते हैं; अन्य लोग हिरण्यपुर में रहने वाले पौलोम और कालकेय नामक असुरगणों के समान राज्य को आकुलित करते हैं। कुछ पक्ष (वर्ग या पंख) से प्रेम करने वाले अगणित शिखरों के जाल वाले (राज-पक्ष में—शिरोभूषण वाले तथा पर्वत पक्ष में चोटियों वाले) महीधरों (राजाओं या पर्वतों) के समान राज्य से सम्बन्धित होते हैं। कुछ छिपे हुये परों वाले, विष्टदृष्टि वाले सर्पों के समान संग करते हैं, (दुर्जन पक्ष में—छिपे हुये गुप्तचरों वाले तथा वैर दृष्टि वाले यह अर्थ क्रमशः गूढ़चरणाः विषदृष्टयः—इन शब्दों का लिया जा सकता है)। दूसरे, अपनी जाति के व्यक्ति को ही खा जाने वाले, अनेक योजन परिमाण वाले तिमिंगिल नामक मछलियों के समान राज्य में सगति करते हैं। अन्य अक्षीण मोह शक्ति वाले विष के अवयवों के समान राज्य का आश्रय लेते हैं। दूसरे, उत्तम प्रकाश वाले होते हुये भी चेतना रहित मणियों के समान कोई प्रेम नहीं दर्शाते। कुछ लोग सर्वतो मुख अर्थात् जल के आस्वादन से कठिनता (ठोस भाव) को पैदा करने वाले मोतियों के टूटे टुकड़ों के समान हरकत करते हैं। अन्य लोग, बहुत छोटे और भीतर की ओर छेद वाले तथा कालेपन को लिये हुये कौड़ियों की तरह बजा करते हैं अर्थात् व्यर्थ की बकवाद करते हैं। दूसरे, बाहर से स्वच्छ होते हुये भी भीतर से टेढ़ापन लिये हुये शंखों की तरह मिलकर रहते हैं। अन्य लोग, अति सुन्दर मूँगों की भाँति बाहर से सुन्दर दिखाई देने वाले, तथा भीतर की ओर कठिनता धारण करने वाले, चमका करते हैं। कोई पृथिवी को क्षीण करने के हेतुभूत, भीतर से लगे वाडवाग्नि के समान जलते हैं। कोई अपने सम्बन्धियों की अधोगति के हेतुभूत प्रायः घूमने वाले भँवरों के समान चारों ओर घूमते रहते हैं, अथवा प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। दूसरे कोई, अत्य-धिक ऊंचे उठने वाले और नीचे गिरने वाले भंगशील तरंगों के समान राज्य को स्वीकार करते हैं। दूसरे, लकड़ी से आरम्भ करने वाले अथवा भयकर कर्म को आरम्भ करने वाले, लाभ को चाहने वाले लोगों के सहायक बने,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच्छी शुभ दिशाओं में चलने वाले जहाजों के समान, राज्य को लाँघना चाहते हैं। कुछ लोग, जैसे सदा नीति के अनुसार चलने वाली लोपामुद्रा नामक पत्नी वाले समुद्र के पानकर्त्ता अगस्त्य मुनि थे, वैसे सदा नीति का लोप करने वाले, रुपये वाले, बड़े तेजस्वी विद्वानों के द्वारा उपदिष्ट उद्यम वाले होते हुये शत्रुपक्ष के राजा राज्य को निगल ही जाना चाहते हैं। अन्य लोग निरन्तर नभोगतया—आकाश में रहने वाले जलार्थियों के प्रति अभिमुख होने होने वाले मेघों के समान न भोगतया—बुभुक्षा के कारण धनार्थियों का आश्रय लेते हैं। अन्य कोई सार को लेने की इच्छा वाले वंश की सहायता वाले (असुर पक्ष में, मन्दराचल की सहायता वाले) विपक्षों—शत्रुओं (असुरों—पक्षान्तर में) के साथ मिलकर देवों की भाँति राज्य का मन्थन करते हैं (जैसे कि देवासुर संग्राम में देवों ने असुरों के साथ समुद्र का मन्थन किया था।)। कोई न डूबने वाले पर्वतों—प्रस्तरों की सहायता से राम जैसे लंका नगरी में गये थे और उन्होंने समुद्र को लांघा था वैसे अन्य राज्य में जाने की इच्छा वाले स्थिर साथियों की सहायता से राज्य को अतिक्रान्त कर डालते हैं अर्थात् राज्य को आत्माधीन कर डालते हैं। (इस से आगे इस प्रकार अनर्थ के कारणों के समवाय में जैसे वर्णन किये जा रहे अनर्थ न होने पावें वैसा यत्न करना'—इस प्रकार के अन्वय युक्त वाक्य को दर्शाया गया है।)—तो इस प्रकार के, परस्पर की अपेक्षा के बिना अनर्थ के हेतुभूत आयु, ऐश्वर्य तथा विद्या इत्यादि के समवाय में, जैसे अनेक प्रकार के भ्रम को उत्पन्न करने वाली मदिराओं के समान सुन्दर नेत्र वाली स्त्रियाँ पागल बनावें; अभिमानिक (—झूठे अभिमान वाले) सुख के निमित्त क्षमा (—दया) से रहित शिकार खेलने की संगतें न हृदय को तपावें; दर्शनमात्र से चमत्कार से प्रतीत होने वाले, सुवर्णाभास के समान दम्भात्मक वृत्तियाँ (प्रवञ्चना की वृत्तियाँ) न धोखे की सम्भावना करें; दर्शनमात्र की सारता वाली कठपुतलियों के समान वेश्यायें न सर्वथा अपहरण करें; दृष्टि को दूषित करने वाले मेंढक की चर्बी के अंजन के समान दुष्ट अच्छे वंश में भी न सर्प के भ्रम को बतलाने लगें; स्वाभाविक रूप से दुःख या ऊष्मा प्रदान करने में समर्थ, पित्त नामक शारीरिक दोष के समान धूर्त्त लोग न मीठे में कड़ुवापन दिखलाने की चेष्टा करें; अवास्तविक—भिन्न स्वरूप को दिखाने वाले नटों के समान व्यवहार के इच्छुक लोग न ठग सकें; निर्वचन के आयोग्य अज्ञान के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान वास्तविक सत्ता वाला मन आत्मा में झूठा प्रपञ्च न प्रकाशित करे; विषयों— देशों को ग्रहण करने के लिये अभिमुख शत्रु के समान बाह्य चक्षुः आदि इन्द्रियों का समूह न दबावे; वस्तु के स्वरूप को छिपा देने वाले अन्धकार के समान अविवेक अन्धा न बना डाले; मुख में बाल पकने आदि विकार को उत्पन्न करने वाले बुढ़ापा के आगमन के समान क्रोध अपने अधीन न कर डाले; ठीक स्थान पर न गिरने वाले गलत बाण के समान लोभ परिहास का कारण न बने; बहुत विरोध करने वाले दुष्ट मंत्री के समान मोह न मोहित करे; पतन के हेतुभूत अभिचारागम (जादू टोने के उपाय) के समान अभिमान न आच्छादित करे; समस्त गुणों के विरोधी चुगलखोर के समान मत्सर (ईर्ष्या दोष) न निन्दित करे; बाणों के आक्रमण से डरने वाले भीरुता के भाव के समान याचकों के आगमन पर खिन्न होने वाले कृपण का भाव न स्पृष्ट करे; विद्यमान रंग को अपहृत करने वाले अग्नि के संयोग के समान गुणों के प्रति अनादर भाव दुःखित न करे; दूसरे से पराजय को कराने में समर्थ धनाभाव के समान अहंकार न कलंकित करे, बहुत ऊँचे बाँस के समान श्रेष्ठ गुणों का समूह अकस्मात् नीचे न गिरा दे; अदृश्य आवेश को पैदा करने वाले पिशाच के समान अभिमान न ग्रस ले; पूर्णतया कहीं पर भी पैर न रखने वाली वेश्या के समान विद्या न नाचने लगे अर्थात् अस्थिरता को न अपनावे; अनर्थ का कारण उत्पात के समान माननीय लोगों का तिरस्कार न स्वीकृत हो जावे; अकस्मात् आ पड़े दुर्भाग्य रूप कर्मफल के समान प्रमाद दुर्बल न बना दे; प्रकृति को उलट देने वाले वायु के आवेश के समान मूर्ख की संगति न अपमानित करे; जो मन में आवे उसको कराने वाले उन्माद के समान अपने कुल का अभिमान व्याकुलित न करे; आँखों (ज्ञान रूपी नेत्रों) को बन्द कर देने वाली दुर्नीति के समान नींद न सतावे; मलिनता को ग्रहण करने वाली पिशाची के समान अलसता आक्रमण न करे, चित्त को संकुचित बनाने वाली सुषुप्ति के समान भयान्वितता वशीभूत न कर दे; अपनी अवनति करने वाला सौहार्द्र के समान मार्दव (कोमलता अथवा मधुरता) पीड़ित न करे; उत्पन्न किये जाने वाले स्वरूप को क्षीण करने वाले डरपोकपन के समान हर कार्य में देर लगाने की प्रकृति उपहास न करावे; तपे हुये बालू के ऊपर नग्न पैर से चलने के हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाप के समान शिकार खेलने का शौक अपने को न प्रकट करे; कलियुग के निवास स्थान बिभीतक नामक कलिवृक्ष के समान जुये के पाशे अथवा कलियुग के फल अपनी आत्मा में विश्राम न करें; चेतना को क्षीण करने के हेतु राक्षसी के समान मदिरा विपरीत् रूप वाली न बना दे; प्रकाश और प्रत्यक्ष के विरुद्ध रहने वाले मोह (—अज्ञान) के समान दिन का सोना सुलभ न होवे; गम्भीरता के विरोधी अपने सरलभाव के समान निन्दा का भाव न उतरे; अग (सेना) को बहुत मात्रा में हरण करने वाले शत्रुबल (—शत्रु सेना) के समान नृत्य ग्रास न बनावे; धृतराष्ट्र के उदय को नष्ट करने वाले चित्ररथ नामक गन्धर्व की सेना के समान संगीत अन्धा न बना दे; अनेक रूप से फैले हुये छिद्रों वाले जाल के समान वाजे न बाँधे; फलों को न उगाने वाले—बाँझ वनस्पति के समान व्यर्थ की चेष्टा दुःखी न करे; रसहीन अथवा विरुद्ध रस के रूप में फलित होने वाले पनस (कंटकि) फल के समान पिशुनता (चुगली) न फैले; विचारों के प्रतिकूल रहने वाली मन्दता के समान साहस न फैले; बहुत छल-कपट वाले दुष्ट के समान द्रोह न मोहित करे; गुण और क्षमा के विरुद्ध द्रव्य की उत्पत्ति की वेला के समान (द्रव्य उत्पन्न होते ही प्रथम क्षण में गुणरहित उत्पन्न होता है, दूसरे क्षण में उसमें गुणों का सन्निवेश होता है—ऐसा न्यायमत है) ईर्ष्या आकृष्ट न करे; रात्रि का अनुसरण करने वाली अन्धकार की रेखा के समान असूया न फैले (दूसरे के गुणों को न सहना ईर्ष्या तथा गुणों में दोषों को ढूंढना और निकालना असूया कहलाती है।); नास्तिकता में समाप्त होने वाले बौद्धों के योगाचार नामक दार्शनिक सम्प्रदाय के समान बाह्यार्थ को असत् समझना रूप अर्थ दूषण न आँख खोले; लोगों के कान में पीड़ा पहुंचाने वाले कर्णशूल के समान कठोर वचन न पुष्ट होवे; बड़े भारी पराग को उड़ाने में समर्थ आँधी के समान कठोर दण्ड न उद्घाटित होवे; वैसा प्रयत्न करना, और जैसे कि ग्रीष्मऋतु के समान दुर्जन के द्वारा विश्राम प्रदान करने वाली रात्रियों के समान प्रजायें न क्षीण होवें; (ग्रीष्म रात्रियों का क्षय करता है और दुर्जन प्रजाओं का); गम्भीर आशय वाले तालाबों के समान मित्र न सूखें; ताप (=दुःख) के हेतु दिनों के समान दुर्जन न बढ़ें; अधिक राग (अनुराग) वाले पाटल के फूलों के समान विटा (लम्पटादि दुर्जन) न बढ़ें;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोत्र (पर्वत अथवा कुल) को जलाने वाले दावाग्नियों के समान दुर्जन जलें; प्यासे चातक पक्षियों के समान याचक तिरस्कृत न होवें; अत्यन्त दुःखदस्पर्श वाले जौ के बुस (छिलके तथा नोक) के समान दुर्वत्ता (दुष्टाचरण तथा दुष्टाचरण वाले व्यक्ति) न खिलने पावें; विषबहुल अजगर के निःश्वासों के समान बड़े साहस करने वाले न फैलने पावें; घर को भेदन करने वाले आतपों के समान चोर न सतावें—वैसा यत्न करना। तथा च भुवन को व्याप्त करने वाले अपनी कीर्तिरूपी राजहंसों से शत्रुओं के चामररूपी मृणाल-सूमूह को उखाड़ फेंको; तमोगुणा अथवा अन्धकार के स्वरूप वाले कृपाणरूपी राहु से शत्रुओं के श्वेत छत्र रूपी चन्द्रमण्डल को ग्रस डालो; सम्पूर्ण दिशाओं में लुप्त हो जाने वाले बाणों की वर्षा से शत्रुओं के चमकते हुये प्रताप रूपी अग्नि को बुझा डालो; अपने तेज के अत्यन्त ऊष्म पसीने की बूंदों से उनके शीत तथा मूर्खता के निमित्तभूत शिर के गौरवों (मुकुटादि) को निकाल फेंको; धनुष की डोरी के शब्दों से सिद्ध मंत्रों (मंत्रणाओं) से शत्रुओं के आज्ञा सम्बन्धी वचनों को स्तम्भित कर दो; सैकड़ों और करोड़ों सफल प्रयत्नों द्वारा इन्द्र के समान शत्रुराजाओं के स्ववर्गों और स्वपक्षों को नष्ट कर डालो; अपने पैरों के नखरूपी चन्द्र की किरणों की श्रेणियों से उनके मुखकमलों को म्लान कर दो; अच्छी प्रकार से बनाये गये अवरोधों से प्रतिद्वन्द्वी सत्प्रतिप्रक्षों के समान आयुधसमूहों से युद्ध-भूमि में, क्रोधयुक्त होकर उनके साधनों को नष्ट कर दो; धनुष के मध्य में बँधी हुई मजबूत मुट्ठी से दृश्य हो रहे कुहनी में भूषित पद्मरागादि आभरणों के प्रकाश की धाराओं से जो सिद्ध ओषधि के पत्रों के तुल्य हैं, उनके महान् अहंकार रूपी विष को पोंछ डालो; जिसकी प्रवृत्ति रोकी नही जा सकती ऐसे अपवाद शास्त्र (द्रष्टव्यम्-पूर्वापरनित्यारंगापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः—व्याकरण-परिभाषा) के समान शत्रुओं के भीतरी और बाह्य अधिकारियों के प्रचार की श्रेणी को दूर करो; दुर्गम अट्ठारह द्वीपों के समान तीर्थों में स्थिर गुप्तचरों को विजय-स्तम्भों के समान गाढ़ो—" ऐसा कहकर चुप हो गया ॥६३॥

इति उपेत्याख्य – डाक्टर जयदत्त शास्त्रिणा व्याकरणदर्शनाचार्येत्पाधि-भाजा विहितो मन्दारमञ्जर्या राष्ट्रभाषानुवादः पूर्तिमगात्। पौष् कृष्णा ८, संम्वत् २०३८ वि)

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

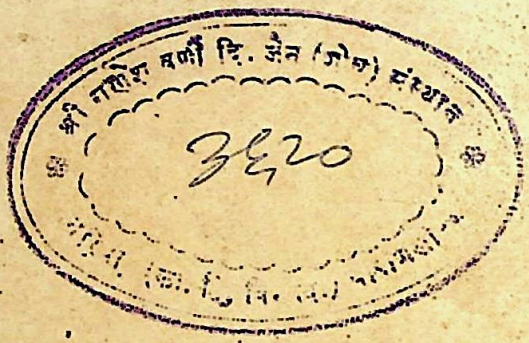

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi